सामंतवाद : विभिन्न पहलू, उत्पत्ति, विकास एवं पतन के कारण

1. प्रस्तावना

सामंतवाद मध्यकालीन इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में भूमि उत्पादन, राजनीतिक शक्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा प्रशासनिक अधिकारों का प्रमुख आधार थी। भूमि पर अधिकार रखने वाले शासक, सामंत, जागीरदार, बड़े भू-स्वामी और स्थानीय प्रभु समाज में प्रभावशाली स्थान रखते थे। दूसरी ओर, कृषि उत्पादन करने वाले किसान, कृषिदास और श्रमिक प्रायः इन भू-स्वामियों पर आर्थिक तथा सामाजिक रूप से निर्भर रहते थे। इस प्रकार सामंतवाद केवल भूमि के स्वामित्व की व्यवस्था नहीं था, बल्कि यह राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण, सामाजिक असमानता, कृषि आधारित अर्थव्यवस्था और व्यक्तिगत निष्ठा पर आधारित संबंधों का एक व्यापक तंत्र था।

इतिहास में सामंतवाद की अवधारणा का प्रयोग मुख्यतः मध्यकालीन यूरोप की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को समझने के लिए किया जाता है। यूरोप में रोमन साम्राज्य के विघटन के पश्चात् राजनीतिक अस्थिरता, स्थानीय सुरक्षा की आवश्यकता, कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था और भूमि के बदले सैन्य सेवा देने की परंपरा ने सामंती संबंधों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लगभग नौवीं से पंद्रहवीं शताब्दी के बीच यूरोप के अनेक क्षेत्रों में सामंती संस्थाएँ प्रभावशाली रहीं, यद्यपि उनका स्वरूप सभी क्षेत्रों में समान नहीं था।

भारत में भी प्राचीन काल के उत्तरार्द्ध और मध्यकाल में भूमि-अनुदान, सामंतों, अधीनस्थ शासकों, स्थानीय भू-स्वामियों तथा कृषकों के बीच अनेक प्रकार के संबंध विकसित हुए। विशेष रूप से गुप्तोत्तर काल से प्रारंभिक मध्यकाल तक भूमि-अनुदानों और स्थानीय सत्ता के विकास ने भारतीय राजनीतिक तथा आर्थिक संरचना को प्रभावित किया। हालांकि भारतीय सामंतवाद और यूरोपीय सामंतवाद की संस्थाएँ, अधिकार-संबंध और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ अलग-अलग थीं। इसलिए दोनों को एक ही व्यवस्था का हूबहू रूप मानना उचित नहीं है।

सामंतवाद का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे मध्यकालीन समाज में सत्ता के वितरण, भूमि संबंधों, कृषि उत्पादन, श्रम व्यवस्था, सामाजिक वर्गीकरण, धर्म, सैन्य संगठन और आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त सामंतवाद के पतन का अध्ययन आधुनिक राज्य, केंद्रीकृत राजसत्ता, नगरों के विकास, व्यापार-वाणिज्य के विस्तार और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करता है।

2. सामंतवाद का अर्थ एवं परिभाषा

सामंतवाद शब्द का संबंध सामान्यतः ऐसे सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे से है, जिसमें भूमि पर अधिकार के आधार पर शक्ति, प्रतिष्ठा और आर्थिक संसाधनों का वितरण होता है। यूरोपीय संदर्भ में अंग्रेजी शब्द *Feudalism* का संबंध मध्यकालीन यूरोप में विकसित जागीर, सामंती निष्ठा, सैन्य सेवा तथा प्रभु-अधीनस्थ संबंधों से है। इस व्यवस्था में राजा या उच्च प्रभु किसी अधीनस्थ को भूमि अथवा उससे प्राप्त

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

होने वाले राजस्व के अधिकार प्रदान कर सकता था। बदले में अधीनस्थ से सैन्य सहायता, राजनीतिक निष्ठा अथवा अन्य सेवाओं की अपेक्षा की जाती थी।

सामंतवाद की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि राजनीतिक अधिकार केवल राजा के हाथों में केंद्रित नहीं रहते थे। स्थानीय सामंत अपने क्षेत्रों में न्याय, कर-संग्रह, सैन्य संगठन और प्रशासन से संबंधित अनेक अधिकारों का प्रयोग कर सकते थे। इस कारण राज्य की सत्ता अनेक स्तरों में विभाजित हो जाती थी।

आर्थिक दृष्टि से सामंतवाद का संबंध कृषि उत्पादन और भूमि से प्राप्त अधिशेष पर नियंत्रण से था। किसान भूमि पर खेती करते थे और उत्पादन का एक भाग लगान, कर, बेगार अथवा अन्य सेवाओं के रूप में भू-स्वामी या प्रभु को देते थे। यूरोप के अनेक क्षेत्रों में कृषिदासों की स्थिति ऐसी थी कि वे भूमि से बँधे रहते थे और स्वतंत्र रूप से स्थान परिवर्तन करने में सक्षम नहीं थे। हालांकि सभी किसान कृषिदास नहीं थे और उनकी स्थिति क्षेत्र, काल तथा स्थानीय कानूनों के अनुसार अलग-अलग थी।

सामंतवाद को केवल राजनीतिक व्यवस्था मानना पर्याप्त नहीं है। यह एक ऐसी ऐतिहासिक संरचना थी, जिसमें भूमि पर अधिकार, श्रम पर नियंत्रण, सैन्य सेवा, सामाजिक प्रतिष्ठा और स्थानीय प्रशासन एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। इन सभी संबंधों की प्रकृति समय के साथ बदलती रही।

3. सामंतवाद की प्रमुख विशेषताएँ

3.1 भूमि पर आधारित अर्थव्यवस्था

सामंतवादी व्यवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता भूमि का आर्थिक महत्त्व था। मध्यकालीन समाज की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी और कृषि आजीविका का मुख्य साधन थी। कृषि से प्राप्त उत्पादन ही समाज की आर्थिक संरचना का आधार बनता था। भूमि से मिलने वाला अनाज, पशुधन, वन-संसाधन और अन्य उत्पाद सामंतों की आय तथा राजनीतिक शक्ति के प्रमुख स्रोत थे।

भूमि का स्वामित्व अथवा उस पर नियंत्रण रखने वाला वर्ग आर्थिक रूप से प्रभावशाली होता था। सामंत भूमि से प्राप्त लगान और अन्य देयताओं के माध्यम से अपने सैन्य दल, प्रशासनिक कर्मचारियों तथा दरबार का खर्च वहन करते थे। दूसरी ओर, किसान अपनी आजीविका के लिए भूमि पर निर्भर रहते थे। इस प्रकार भूमि ने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अधिकार और निर्भरता के संबंध निर्मित किए।

3.2 राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण

सामंतवाद में राजनीतिक शक्ति अनेक स्तरों पर विभाजित रहती थी। राजा सर्वोच्च शासक हो सकता था, लेकिन अनेक क्षेत्रों में स्थानीय सामंतों का प्रभाव इतना अधिक होता था कि वे अपने अधीन क्षेत्रों में स्वतंत्र शासकों की तरह कार्य करते थे। वे सैनिकों की व्यवस्था करते, स्थानीय विवादों का निपटारा करते और अपने अधिकार क्षेत्र में कर या लगान वसूलते थे।

राजा की शक्ति प्रायः सामंतों के सहयोग पर निर्भर रहती थी। युद्ध के समय सामंत अपने सैनिकों को राजा की सहायता के लिए भेजते थे। इसके बदले वे भूमि, अधिकार, उपाधियाँ और विशेषाधिकार प्राप्त कर सकते

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

थे। जब सामंत शक्तिशाली हो जाते थे, तो वे केंद्रीय सत्ता की अवहेलना भी करने लगते थे। इससे राजनीतिक विखंडन को बढ़ावा मिलता था।

3.3 प्रभु और अधीनस्थ के संबंध

यूरोपीय सामंतवाद में प्रभु और अधीनस्थ के संबंधों को विशेष महत्त्व प्राप्त था। भूमि या उससे संबंधित अधिकार प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने प्रभु के प्रति निष्ठा और सेवा का दायित्व स्वीकार करता था। इस संबंध में पारस्परिक दायित्वों का विचार निहित था, हालांकि व्यवहार में दोनों पक्षों की शक्ति समान नहीं होती थी।

प्रभु अपने अधीनस्थ को संरक्षण, भूमि अथवा आय का स्रोत प्रदान कर सकता था। बदले में अधीनस्थ सैन्य सेवा, सलाह, आर्थिक सहायता और राजनीतिक समर्थन देता था। ऐसे संबंधों ने मध्यकालीन यूरोप में सैन्य तथा प्रशासनिक संगठन को प्रभावित किया।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रत्येक भूमि-धारण संबंध एक समान नहीं था। भूमि पर अधिकार, उत्तराधिकार, सेवा की शर्तें और न्यायिक अधिकार विभिन्न क्षेत्रों तथा कालखंडों में अलग-अलग हो सकते थे।

3.4 कृषक वर्ग की अधीनस्थ स्थिति

सामंतवादी समाज में कृषक वर्ग उत्पादन का प्रमुख आधार था। किसान खेतों में श्रम करते थे, फसल उगाते थे और अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे। इसके साथ ही उन्हें भू-स्वामी या प्रभु को लगान अथवा अन्य देयताएँ देनी पड़ती थीं।

यूरोप के कई भागों में कृषिदासों को भूमि से जुड़े दायित्वों का पालन करना पड़ता था। वे अपने श्रम का एक भाग सामंत की भूमि पर लगाते थे और कुछ परिस्थितियों में विवाह, स्थान परिवर्तन या अन्य गतिविधियों के लिए प्रभु की अनुमति के अधीन होते थे। हालांकि सभी क्षेत्रों में कृषिदासता की प्रकृति समान नहीं थी और स्वतंत्र किसानों की भी पर्याप्त उपस्थिति थी।

कृषकों पर विभिन्न प्रकार के आर्थिक दायित्व होने से उनकी आय सीमित रहती थी। खराब फसल, युद्ध, अकाल और अत्यधिक लगान जैसी परिस्थितियाँ उनके जीवन को और कठिन बना देती थीं। यही परिस्थितियाँ कई क्षेत्रों में कृषक असंतोष और विद्रोह का कारण बनीं।

3.5 सामाजिक असमानता और वर्ग विभाजन

सामंतवादी समाज में जन्म, भूमि, सैन्य शक्ति, धार्मिक प्रतिष्ठा और आर्थिक संसाधनों के आधार पर सामाजिक स्थिति निर्धारित होती थी। यूरोप के अनेक क्षेत्रों में सामंत, पादरी और कृषक प्रमुख सामाजिक समूहों के रूप में देखे जाते हैं, हालांकि वास्तविक सामाजिक संरचना इससे अधिक जटिल थी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

सामंत वर्ग के पास भूमि, राजनीतिक अधिकार और सैन्य संसाधन होते थे। चर्च के उच्च पदाधिकारी धार्मिक प्रभाव के साथ-साथ बड़ी संपत्तियों पर भी नियंत्रण रख सकते थे। कृषक वर्ग उत्पादन करता था, लेकिन उसे राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकार सीमित रूप में प्राप्त होते थे।

इस सामाजिक संरचना में असमानता केवल आय तक सीमित नहीं थी। न्याय, शिक्षा, सैन्य सेवा, प्रशासन और धार्मिक संस्थाओं तक पहुँच में भी वर्गों के बीच अंतर पाया जाता था। फिर भी सामंती समाज पूर्णतः स्थिर नहीं था। नगरों के विकास, व्यापार और राजकीय सेवा के विस्तार से कुछ लोगों को सामाजिक उन्नति के अवसर भी मिले।

3.6 सैन्य सेवा का महत्त्व

सामंतवाद के विकास में सैन्य सेवा की प्रमुख भूमिका थी। मध्यकालीन यूरोप में स्थायी राष्ट्रीय सेनाओं का विकास सीमित था। इसलिए राजा और बड़े प्रभु युद्ध के समय अपने अधीनस्थ सामंतों से सैनिक सहायता प्राप्त करते थे।

भूमि या आय के अधिकार के बदले सैन्य सेवा देना सामंती संबंधों का एक प्रमुख आधार बन सकता था। सामंत अपने संसाधनों के अनुसार घुड़सवार सैनिक, हथियार और अन्य सैन्य सहायता उपलब्ध कराते थे। इससे सैन्य शक्ति का संगठन स्थानीय भू-स्वामियों के हाथों में भी रहता था।

हालाँकि समय के साथ सैन्य तकनीक, पैदल सेना, धनुर्धारियों, भाड़े के सैनिकों और बारूद आधारित हथियारों के विकास ने इस व्यवस्था को बदलना शुरू किया। इससे राजा के लिए सामंतों पर निर्भर हुए बिना सेना संगठित करने की संभावनाएँ बढ़ीं।

3.7 स्थानीय न्याय और प्रशासन

सामंतों को अनेक क्षेत्रों में स्थानीय प्रशासन और न्याय से जुड़े अधिकार प्राप्त थे। वे भूमि विवादों, लगान, श्रम संबंधों और स्थानीय अपराधों से जुड़े मामलों का निपटारा कर सकते थे। कुछ स्थानों पर न्यायिक अधिकार भी भूमि अथवा राजनीतिक पद के साथ जुड़े होते थे।

इस व्यवस्था में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कानून और प्रथाओं का प्रभाव रहता था। केंद्रीय राजसत्ता की सीमित पहुँच के कारण सामंत स्थानीय समाज के लिए प्रशासनिक प्राधिकार बन जाते थे। परंतु इससे न्याय की समानता प्रभावित हो सकती थी, क्योंकि शक्तिशाली सामंत अपने हितों के अनुसार निर्णय लेने की स्थिति में होते थे।

3.8 धार्मिक संस्थाओं की भूमिका

मध्यकालीन यूरोप में चर्च एक प्रभावशाली धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक संस्था थी। चर्च के पास भूमि, आय के स्रोत, शिक्षा संस्थान और व्यापक सामाजिक प्रभाव था। धार्मिक मान्यताओं के माध्यम से सामाजिक पदानुक्रम और शासकीय अधिकारों को वैधता प्रदान करने के प्रयास भी किए जाते थे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

मठों और चर्चों की कृषि, शिक्षा, पांडुलिपि संरक्षण तथा दान संबंधी गतिविधियों का भी महत्व था। दूसरी ओर, धार्मिक संस्थाओं की विशाल संपत्ति और राजनीतिक हस्तक्षेप को लेकर राजाओं तथा अन्य शक्तियों के साथ संघर्ष भी हुए। इस प्रकार चर्च सामंती व्यवस्था को समर्थन देने के साथ-साथ कभी-कभी उसकी राजनीतिक संरचना में प्रतिस्पर्धी शक्ति के रूप में भी सामने आया।

भारत में मंदिरों, मठों और अन्य धार्मिक संस्थाओं को भूमि-अनुदान मिलने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इन संस्थाओं ने धार्मिक गतिविधियों के अतिरिक्त शिक्षा, स्थानीय अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक संरक्षण और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया। हालांकि भारतीय धार्मिक संस्थाओं की भूमिका को यूरोपीय चर्च की भूमिका के समान नहीं माना जा सकता।

4. सामंतवाद की उत्पत्ति के कारण

सामंतवाद किसी एक घटना या एक शासक की नीति से अचानक उत्पन्न नहीं हुआ। इसका विकास अनेक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सैन्य परिस्थितियों के परिणामस्वरूप हुआ। यूरोप तथा भारत में इसके विकास की ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ अलग थीं। इसलिए सामंतवाद की उत्पत्ति के कारणों को समझने के लिए संबंधित क्षेत्रों की परिस्थितियों का अलग-अलग अध्ययन आवश्यक है।

4.1 राजनीतिक अस्थिरता और केंद्रीय सत्ता का कमजोर होना

सामंतवाद के विकास का एक प्रमुख कारण केंद्रीय सत्ता की कमजोरी था। जब कोई विशाल राज्य अपने दूरस्थ क्षेत्रों पर प्रभावी नियंत्रण बनाए रखने में असमर्थ होता है, तो स्थानीय शासक, सैन्य अधिकारी और भू-स्वामी अधिक शक्तिशाली हो सकते हैं। वे सुरक्षा, न्याय, कर-संग्रह और प्रशासन की जिम्मेदारियाँ अपने हाथों में लेने लगते हैं।

पश्चिमी रोमन साम्राज्य के पतन के बाद पश्चिमी यूरोप में राजनीतिक सत्ता अनेक राज्यों और स्थानीय शक्तियों में विभाजित हो गई। लगातार होने वाले युद्धों तथा राजनीतिक अस्थिरता ने लोगों को स्थानीय शक्तिशाली व्यक्तियों के संरक्षण पर निर्भर होने के लिए प्रेरित किया। इस परिस्थिति ने सामंती संबंधों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया।

4.2 विदेशी आक्रमण और सुरक्षा की आवश्यकता

मध्यकालीन यूरोप में विभिन्न क्षेत्रों पर होने वाले आक्रमणों ने सुरक्षा की समस्या को गंभीर बनाया। वाइकिंग, मग्यार और अन्य आक्रमणकारी समूहों के हमलों से अनेक बस्तियों, कृषि क्षेत्रों और व्यापारिक मार्गों को खतरा उत्पन्न हुआ। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय दुर्गों, सशस्त्र समूहों और क्षेत्रीय प्रभुओं का महत्व बढ़ा।

किसानों तथा छोटे भू-स्वामियों को सुरक्षा के लिए शक्तिशाली प्रभुओं का सहारा लेना पड़ता था। इसके बदले उन्हें भूमि, श्रम या उपज का कुछ भाग देना पड़ सकता था। सुरक्षा और आर्थिक निर्भरता के इस संबंध ने सामंती संरचना को मजबूत करने में योगदान दिया।

Dr. RAkesh Mohan NaUtiyaL

4.3 कृषि आधारित अर्थव्यवस्था

सामंतवाद की उत्पत्ति में कृषि अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान था। जब समाज की अधिकांश संपत्ति भूमि और कृषि उत्पादन पर आधारित हो, तो भूमि पर नियंत्रण रखने वाले वर्ग की शक्ति स्वाभाविक रूप से बढ़ती है।

मध्यकालीन यूरोप में अनेक क्षेत्रों में नगरों और दूरगामी व्यापार का महत्त्व सीमित था। स्थानीय कृषि उत्पादन पर आधारित अर्थव्यवस्था ने बड़े भू-स्वामियों को आर्थिक शक्ति प्रदान की। वे कृषि अधिशेष के माध्यम से सैनिकों और आश्रितों का पालन-पोषण कर सकते थे।

कृषि अधिशेष पर नियंत्रण ने सामंतों को राजनीतिक शक्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्रदान की। इस प्रकार आर्थिक शक्ति और राजनीतिक अधिकार एक-दूसरे को मजबूत करते गए।

4.4 भूमि के बदले सेवा देने की परंपरा

सामंतवाद के विकास में भूमि या भूमि से प्राप्त आय के बदले सेवा देने की परंपरा का विशेष महत्त्व था। शासक अपने सहयोगियों, सैनिक अधिकारियों और अधीनस्थों को भूमि या राजस्व संबंधी अधिकार प्रदान कर सकते थे। बदले में उनसे सैन्य सेवा, प्रशासनिक सहयोग और राजनीतिक निष्ठा की अपेक्षा की जाती थी।

यूरोप में इस प्रकार के संबंधों का विकास विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुआ। कैरोलिंजियन शासन के दौरान सैन्य सेवा और भूमि से प्राप्त संसाधनों के बीच संबंधों ने महत्त्व प्राप्त किया। बाद के समय में अनेक क्षेत्रों में ये संबंध वंशानुगत अधिकारों तथा स्थानीय विशेषाधिकारों से जुड़ गए।

यह प्रक्रिया सभी क्षेत्रों में एक समान नहीं थी। भूमि पर अधिकार, सैन्य दायित्व और उत्तराधिकार के नियमों में पर्याप्त विविधता थी।

4.5 मुद्रा अर्थव्यवस्था का सीमित विकास

प्रारंभिक मध्यकालीन यूरोप के अनेक क्षेत्रों में मुद्रा आधारित लेन-देन और दूरगामी व्यापार का महत्त्व पहले की तुलना में सीमित हो गया था। ऐसी परिस्थितियों में भूमि, कृषि उपज और श्रम का महत्त्व बढ़ गया। सैनिकों तथा अधिकारियों को नकद वेतन देने के बजाय भूमि अथवा उससे प्राप्त आय के अधिकार देना व्यावहारिक विकल्प बन सकता था।

हालाँकि यह कहना उचित नहीं होगा कि पूरे यूरोप में मुद्रा का प्रयोग समाप्त हो गया था। विभिन्न क्षेत्रों में सिक्कों, बाजारों और व्यापार का अस्तित्व बना रहा। सामंतवाद का विकास केवल मुद्रा की कमी से नहीं, बल्कि भूमि आधारित संपत्ति, सैन्य सेवा और राजनीतिक विकेंद्रीकरण के संयुक्त प्रभाव से हुआ।

4.6 रोमन संस्थाओं और जर्मनिक परंपराओं का प्रभाव

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

यूरोपीय सामंतवाद के विकास में रोमन साम्राज्य की कुछ संस्थाओं और जर्मनिक समाजों की व्यक्तिगत निष्ठा तथा सैन्य सहयोग से जुड़ी परंपराओं का प्रभाव माना जाता है। रोमन समाज में बड़े भू-स्वामियों और कृषकों के बीच निर्भरता के संबंध पहले से मौजूद थे। दूसरी ओर, जर्मनिक राजनीतिक परंपराओं में शासक और योद्धाओं के बीच निष्ठा तथा सेवा के संबंध महत्त्वपूर्ण थे।

पश्चिमी रोमन साम्राज्य के विघटन के बाद इन विभिन्न परंपराओं का परस्पर संपर्क हुआ। बदलती राजनीतिक परिस्थितियों में भूमि, संरक्षण, सैन्य सेवा और व्यक्तिगत निष्ठा से संबंधित संस्थाओं ने नया स्वरूप ग्रहण किया। इन प्रक्रियाओं ने यूरोपीय सामंती संबंधों के विकास में योगदान दिया।

4.7 बड़े भू-स्वामियों का उदय

भूमि पर अधिक नियंत्रण रखने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं का उदय सामंतवाद के विकास का एक अन्य कारण था। बड़े भू-स्वामी कृषि उत्पादन से अधिशेष प्राप्त करते थे और उसके आधार पर अपने आश्रितों, सैनिकों तथा प्रशासनिक कर्मचारियों का पालन-पोषण करते थे।

जब केंद्रीय शासन कमजोर हुआ, तो इन भू-स्वामियों की स्थानीय शक्ति बढ़ने लगी। वे अपने अधिकार क्षेत्र में सुरक्षा और न्याय प्रदान करने के साथ-साथ किसानों से लगान वसूल सकते थे। इससे ग्रामीण समाज में उनकी स्थिति अधिक प्रभावशाली हो गई।

4.8 संरक्षण और आश्रय की आवश्यकता

राजनीतिक अस्थिरता तथा आर्थिक संकट की स्थिति में छोटे किसान और कमजोर व्यक्ति शक्तिशाली व्यक्तियों के संरक्षण की तलाश करते थे। वे भूमि, सुरक्षा और आजीविका के बदले अपने श्रम अथवा उत्पादन का एक हिस्सा देने को तैयार हो सकते थे।

इस प्रकार संरक्षण की आवश्यकता ने सामाजिक निर्भरता के संबंधों को मजबूत किया। हालांकि ऐसे संबंधों में पारस्परिक सहयोग के साथ असमानता और शोषण की संभावना भी मौजूद रहती थी।

4.9 उत्तराधिकार और वंशानुगत अधिकार

समय के साथ कई क्षेत्रों में भूमि तथा सामंती पदों से जुड़े अधिकार वंशानुगत होने लगे। इससे शक्तिशाली परिवारों का प्रभाव स्थायी हुआ। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी भूमि, राजनीतिक विशेषाधिकार और स्थानीय प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहे।

वंशानुगत अधिकारों के विकास ने स्थानीय सामंतों को केंद्रीय सत्ता से अपेक्षाकृत स्वतंत्र होने का अवसर दिया। इससे सामंती व्यवस्था की स्थिरता बढ़ी, लेकिन अनेक क्षेत्रों में राजनीतिक विखंडन भी मजबूत हुआ।

4.10 स्थानीय स्वावलंबन और ग्रामीण आत्मनिर्भरता

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

प्रारंभिक मध्यकालीन यूरोप के कई क्षेत्रों में बड़े ग्रामीण भू-क्षेत्र या मैनर स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति का महत्त्वपूर्ण आधार थे। इन क्षेत्रों में कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प और अन्य गतिविधियों के माध्यम से अनेक दैनिक आवश्यकताएँ पूरी की जाती थीं।

इस प्रकार की ग्रामीण आत्मनिर्भरता ने स्थानीय भू-स्वामियों की भूमिका को बढ़ाया। जब आर्थिक जीवन स्थानीय स्तर पर संगठित होता है, तो भूमि और ग्रामीण श्रम पर नियंत्रण रखने वाले व्यक्तियों का प्रभाव भी बढ़ सकता है।

फिर भी मध्यकालीन यूरोप पूर्णतः आत्मनिर्भर नहीं था। बाजार, मेले, शहरी केंद्र और क्षेत्रीय व्यापार विभिन्न रूपों में मौजूद थे। सामंती अर्थव्यवस्था और बाजार अर्थव्यवस्था के बीच संबंध समय तथा क्षेत्र के अनुसार बदलते रहे।

5. भारतीय संदर्भ में सामंतवाद का विकास

भारत में सामंतवाद के स्वरूप को समझने के लिए भूमि-अनुदानों, राजनीतिक अधीनता, कृषि संबंधों, स्थानीय शक्तियों और ग्रामीण समाज की संरचना का अध्ययन आवश्यक है। भारतीय इतिहासकारों के बीच भारतीय सामंतवाद की अवधारणा, उसकी समय-सीमा और विशेषताओं को लेकर मतभेद रहे हैं। कुछ इतिहासकार भूमि-अनुदानों और कृषकों पर बढ़ते नियंत्रण को सामंतवाद के विकास का प्रमुख आधार मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान भारतीय क्षेत्रीय विविधता और स्थानीय संस्थाओं की स्वतंत्र प्रकृति पर बल देते हैं।

5.1 गुप्तोत्तर काल और राजनीतिक विकेंद्रीकरण

गुप्त साम्राज्य के विघटन के बाद उत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों में राजनीतिक सत्ता का पुनर्गठन हुआ। विभिन्न क्षेत्रीय राजवंशों, स्थानीय शासकों और अधीनस्थ शक्तियों का उदय हुआ। इस प्रक्रिया में कुछ क्षेत्रों में केंद्रीय सत्ता की तुलना में स्थानीय शक्तियों का महत्त्व बढ़ा।

हालांकि गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद पूरे भारत में एक जैसी राजनीतिक स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। दक्षिण भारत, पूर्वी भारत, पश्चिमी भारत और दक्कन में अलग-अलग राजनीतिक तथा आर्थिक प्रक्रियाएँ सक्रिय थीं। इसलिए भारतीय सामंतवाद के विकास को क्षेत्रीय संदर्भों में समझना आवश्यक है।

5.2 भूमि-अनुदानों की परंपरा

प्राचीन भारत में धार्मिक संस्थाओं, ब्राह्मणों, अधिकारियों तथा अन्य व्यक्तियों को भूमि या उससे संबंधित अधिकार प्रदान करने की परंपरा विभिन्न कालों में विकसित हुई। गुप्तोत्तर और प्रारंभिक मध्यकाल में अनेक क्षेत्रों में भूमि-अनुदानों के अभिलेख मिलते हैं।

इन अनुदानों में कभी-कभी भूमि से प्राप्त राजस्व, करों और स्थानीय प्रशासन से जुड़े अधिकार भी सम्मिलित होते थे। इससे कुछ अनुदानग्राहियों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति मजबूत हुई। जब भूमि के साथ राजस्व-संग्रह और स्थानीय अधिकार भी प्रदान किए गए, तब स्थानीय सत्ता के विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को बल मिल सकता था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

हालांकि सभी भूमि-अनुदान समान नहीं थे। कुछ अनुदान धार्मिक या शैक्षिक उद्देश्यों के लिए थे, जबकि अन्य में राजस्व अथवा प्रशासनिक अधिकार भी शामिल हो सकते थे। इसलिए भूमि-अनुदान को सीधे सामंतवाद का पर्याय नहीं माना जा सकता।

5.3 सामंत और अधीनस्थ शासक

प्रारंभिक मध्यकालीन भारतीय अभिलेखों में सामंत, महासामंत और अन्य अधीनस्थ पदों का उल्लेख मिलता है। ये पद अनेक परिस्थितियों में क्षेत्रीय शासकों, सैन्य सहयोगियों या राजकीय अधीनस्थों की स्थिति को व्यक्त करते थे।

कुछ सामंत अपने अधिपति के प्रति निष्ठा रखते थे, युद्ध के समय सैनिक सहायता प्रदान करते थे और राजनीतिक अवसरों पर राजकीय समर्थन देते थे। बदले में उन्हें भूमि, पद, उपाधियाँ अथवा अन्य विशेषाधिकार प्राप्त हो सकते थे।

समय के साथ कुछ अधीनस्थ शक्तियाँ स्वतंत्र राजवंशों के रूप में भी उभरीं। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय सामंती संबंध स्थिर नहीं थे, बल्कि राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते थे।

5.4 कृषकों और ग्रामीण समाज की स्थिति

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में किसान उत्पादन का प्रमुख आधार थे। भूमि पर खेती करने वाले कृषकों को विभिन्न प्रकार के कर, लगान और अन्य देयताओं का भुगतान करना पड़ता था। इन देयताओं का स्वरूप राज्य, स्थानीय भू-स्वामियों और क्षेत्रीय परंपराओं के अनुसार भिन्न हो सकता था।

कुछ क्षेत्रों में स्थानीय प्रभुओं और भू-स्वामियों का किसानों पर नियंत्रण बढ़ा। इससे कृषकों की आर्थिक स्वतंत्रता प्रभावित हो सकती थी। दूसरी ओर, सभी किसान एक समान स्थिति में नहीं थे। भूमि के अधिकार, जाति, स्थानीय प्रथाएँ, सिंचाई सुविधाएँ और बाजार तक पहुँच उनकी स्थिति को प्रभावित करते थे।

इसलिए भारतीय ग्रामीण समाज को केवल कृषिदासता के यूरोपीय मॉडल के आधार पर समझना उचित नहीं है।

5.5 मंदिर, मठ और धार्मिक संस्थाएँ

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत में अनेक मंदिरों और धार्मिक संस्थाओं को भूमि-अनुदान प्राप्त हुए। विशेष रूप से दक्षिण भारत में मंदिर आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण केंद्र बने। कुछ मंदिर भूमि, श्रम, सिंचाई, दान और स्थानीय विनिमय से जुड़े व्यापक नेटवर्क का हिस्सा थे।

इन संस्थाओं ने धार्मिक जीवन के अतिरिक्त शिक्षा, कला, स्थापत्य, संगीत और सामाजिक गतिविधियों को भी प्रभावित किया। कई स्थानों पर मंदिरों के आसपास बाजार और बस्तियाँ विकसित हुईं।

Dr. RAKSH Mohan Nautiyal

हालांकि मंदिरों की भूमिका सभी क्षेत्रों में एक समान नहीं थी। कुछ मंदिरों के पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन थे, जबकि अन्य की भूमिका मुख्यतः स्थानीय धार्मिक जीवन तक सीमित थी। अतः मंदिरों को भारतीय सामंतवाद की एक महत्त्वपूर्ण संस्था मानते हुए भी उनकी विविधता को ध्यान में रखना चाहिए।

5.6 भारतीय सामंतवाद की अवधारणा पर इतिहासलेखन

भारतीय सामंतवाद पर इतिहासकारों के बीच व्यापक बहस हुई है। डी. डी. कोसांबी ने भारतीय समाज की ऐतिहासिक संरचना, उत्पादन संबंधों और सामाजिक परिवर्तन को समझने में भौतिक परिस्थितियों पर बल दिया। आर. एस. शर्मा ने विशेष रूप से प्रारंभिक मध्यकाल में भूमि-अनुदानों, राजस्व अधिकारों, कृषकों की स्थिति और राजनीतिक विकेंद्रीकरण के आधार पर भारतीय सामंतवाद की अवधारणा का विश्लेषण किया।

दूसरी ओर, कुछ इतिहासकारों ने यह प्रश्न उठाया कि क्या भारतीय समाज में विकसित भूमि संबंधों को यूरोपीय सामंतवाद की अवधारणा के अंतर्गत पूरी तरह समझा जा सकता है। क्षेत्रीय विविधता, व्यापार, नगरीकरण, जाति-व्यवस्था, धार्मिक संस्थाओं और राजनीतिक परंपराओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय सामंतवाद का स्वतंत्र विश्लेषण आवश्यक माना गया है।

इस बहस से स्पष्ट होता है कि सामंतवाद कोई ऐसा सार्वभौमिक ढाँचा नहीं है, जो प्रत्येक समाज में बिल्कुल समान रूप में विकसित हुआ हो। इसका अध्ययन ऐतिहासिक साक्ष्यों और क्षेत्रीय परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

6. सामंतवाद के विभिन्न पहलू

सामंतवाद का व्यापक अध्ययन करने के लिए उसके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सैन्य, धार्मिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक पहलुओं का विश्लेषण आवश्यक है। इन पहलुओं के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामंतवाद केवल भूमि से संबंधित व्यवस्था नहीं था, बल्कि मध्यकालीन जीवन के अनेक क्षेत्रों को प्रभावित करता था।

6.1 राजनीतिक पहलू

राजनीतिक दृष्टि से सामंतवाद का प्रमुख आधार सत्ता का विकेंद्रीकरण था। राजा के अधीन अनेक सामंत और स्थानीय प्रभु होते थे, जो अपने क्षेत्रों में प्रशासनिक अधिकारों का प्रयोग कर सकते थे। राजा की शक्ति सामंतों के सहयोग, सैन्य सहायता और राजनीतिक निष्ठा पर निर्भर रहती थी।

इस व्यवस्था का एक लाभ यह था कि स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन और सुरक्षा की व्यवस्था की जा सकती थी। लेकिन इसकी सीमा यह थी कि शक्तिशाली सामंत केंद्रीय सत्ता को चुनौती दे सकते थे। इससे राजकीय एकता कमजोर होती और उत्तराधिकार के संघर्षों अथवा सामंतों के विद्रोह की संभावना बढ़ जाती थी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

राजनीतिक विकेंद्रीकरण के कारण अनेक स्थानीय राज्यों और क्षेत्रीय शक्तियों का विकास हुआ। हालांकि यह प्रक्रिया केवल सामंतवाद की देन नहीं थी; भौगोलिक परिस्थितियाँ, क्षेत्रीय पहचान, व्यापारिक मार्ग और स्थानीय सैन्य संसाधन भी इसके महत्त्वपूर्ण कारण थे।

6.2 आर्थिक पहलू

आर्थिक दृष्टि से सामंतवाद कृषि उत्पादन और अधिशेष के वितरण पर आधारित था। किसान उत्पादन करते थे और उसका एक हिस्सा कर, लगान या अन्य देयताओं के रूप में शासक अथवा भू-स्वामी को देते थे।

सामंत इस अधिशेष का उपयोग सैन्य दलों, प्रशासनिक कर्मचारियों, धार्मिक संस्थाओं और अपने दरबार के खर्च के लिए करते थे। इस प्रकार ग्रामीण उत्पादन पर नियंत्रण आर्थिक शक्ति का प्रमुख आधार था।

कई क्षेत्रों में स्थानीय कृषि उत्पादन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान की। लेकिन अत्यधिक लगान, बेगार और किसानों पर लगाए गए अन्य दायित्व उनकी आर्थिक स्थिति को कमजोर कर सकते थे। कृषि उत्पादन पर प्राकृतिक परिस्थितियों का प्रभाव भी अधिक था। अकाल, बाढ़, सूखा और युद्ध से उत्पादन घटने पर कृषक परिवारों की कठिनाइयाँ बढ़ जाती थीं।

6.3 सामाजिक पहलू

सामंतवादी समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा और अधिकारों का वितरण असमान था। भूमि पर नियंत्रण रखने वाले सामंतों तथा उच्च धार्मिक पदाधिकारियों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त हो सकते थे। कृषक और श्रमिक वर्ग उत्पादन का प्रमुख भार वहन करते थे, लेकिन उनके अधिकार सीमित रहते थे।

सामाजिक पदानुक्रम ने शिक्षा, न्याय, राजनीतिक भागीदारी और संसाधनों तक पहुँच को प्रभावित किया। कई क्षेत्रों में जन्म और वंश के आधार पर प्रतिष्ठा निर्धारित होती थी। सामंती परिवार अपनी सामाजिक स्थिति को बनाए रखने के लिए विवाह संबंधों, सैन्य सेवा और राजनीतिक गठबंधनों का उपयोग करते थे।

इसके बावजूद सामाजिक संरचना पूरी तरह अपरिवर्तनीय नहीं थी। नगरों के विकास, व्यापार, प्रशासनिक सेवा, धार्मिक आंदोलनों और सैन्य गतिविधियों से कुछ व्यक्तियों तथा समूहों को नए अवसर प्राप्त हुए।

6.4 सैन्य पहलू

सामंतवाद में सैन्य संगठन स्थानीय प्रभुओं और उनके अधीनस्थों से जुड़ा था। राजा को युद्ध के समय सामंतों की सैनिक सहायता की आवश्यकता होती थी। सामंत अपने क्षेत्र से सैनिक उपलब्ध कराते थे और बदले में भूमि, पद अथवा अन्य लाभ प्राप्त कर सकते थे।

इस व्यवस्था में सैन्य शक्ति का विकेंद्रीकरण था। राजा के पास हमेशा इतनी स्थायी सेना नहीं होती थी कि वह सभी क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से सैन्य कार्रवाई कर सके। परिणामस्वरूप सामंतों का सहयोग राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

लेकिन यही व्यवस्था केंद्रीय राजसत्ता की कमजोरी का कारण भी बन सकती थी। यदि सामंतों के हित राजा से अलग हो जाते, तो वे सैनिक सहायता देने से इनकार कर सकते थे या विद्रोह कर सकते थे।

6.5 धार्मिक पहलू

धर्म ने सामंती समाज की वैचारिक संरचना को प्रभावित किया। यूरोप में चर्च ने सामाजिक जीवन, शिक्षा, नैतिकता और राजनीतिक वैधता के क्षेत्र में प्रभावशाली भूमिका निभाई। धार्मिक संस्थाओं के पास भूमि और आर्थिक संसाधन होने के कारण वे सामंती समाज की आर्थिक संरचना का हिस्सा भी बन गईं।

भारत में मंदिरों, मठों, ब्राह्मणों और अन्य धार्मिक संस्थाओं को प्राप्त भूमि-अनुदानों ने कुछ क्षेत्रों में धार्मिक तथा आर्थिक शक्ति के संबंधों को प्रभावित किया। धार्मिक संस्थाओं ने ज्ञान, साहित्य, स्थापत्य और सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण में योगदान दिया।

हालांकि धर्म की भूमिका केवल सामंतवाद के समर्थन तक सीमित नहीं थी। धार्मिक और नैतिक विचारों के आधार पर शासकों की आलोचना, दान, लोककल्याण तथा सामाजिक सुधार के प्रयास भी किए जाते थे।

6.6 प्रशासनिक पहलू

सामंतवाद में प्रशासन का बड़ा भाग स्थानीय स्तर पर संचालित होता था। स्थानीय प्रभु राजस्व-संग्रह, न्याय, सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था से जुड़े कार्यों में भूमिका निभा सकते थे। इससे दूरस्थ क्षेत्रों में प्रशासन चलाने में सुविधा होती थी।

लेकिन प्रशासनिक अधिकारों के विभाजन से एकरूप कानूनों और समान कर-व्यवस्था का विकास कठिन हो सकता था। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग नियम और विशेषाधिकार लागू रहते थे। इससे व्यापार, यात्रा और राजकीय नियंत्रण प्रभावित हो सकता था।

केंद्रीकृत राज्य के विकास के साथ प्रशासनिक अधिकार धीरे-धीरे अधिक संगठित संस्थाओं में स्थानांतरित होने लगे। यही परिवर्तन आगे चलकर सामंतवाद के क्षरण का एक महत्त्वपूर्ण आधार बना।

6.7 सांस्कृतिक पहलू

सामंतवादी समाज में संस्कृति का विकास राजदरबारों, धार्मिक संस्थाओं, दुर्गों, मंदिरों, मठों और स्थानीय समुदायों के माध्यम से हुआ। सामंतों और राजाओं द्वारा संरक्षण दिए जाने से साहित्य, संगीत, स्थापत्य, चित्रकला और धार्मिक कला को प्रोत्साहन मिला।

यूरोप में किलों, गिरजाघरों और मठों का निर्माण मध्यकालीन सांस्कृतिक जीवन की प्रमुख विशेषता थी। भारत में मंदिर स्थापत्य, क्षेत्रीय भाषाओं का विकास, धार्मिक साहित्य और शिल्प परंपराएँ विभिन्न राजवंशों तथा संस्थाओं के संरक्षण में विकसित हुईं।

हालांकि सांस्कृतिक उपलब्धियों के बावजूद समाज में संसाधनों और शिक्षा का वितरण असमान था। सांस्कृतिक संरक्षण का लाभ सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँचता था।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

6.8 न्यायिक पहलू

सामंती व्यवस्था में स्थानीय न्यायिक अधिकारों का विशेष महत्त्व था। अनेक क्षेत्रों में भू-स्वामी या स्थानीय प्रभु विवादों का निपटारा करते थे। भूमि, लगान, श्रम और स्थानीय अधिकारों से संबंधित मामलों में उनकी भूमिका प्रभावशाली थी।

इस व्यवस्था से स्थानीय प्रथाओं के आधार पर विवादों का समाधान संभव था। परंतु शक्तिशाली भू-स्वामियों के हित न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते थे। कृषकों और निर्बल समूहों के लिए समान न्याय प्राप्त करना कठिन हो सकता था।

केंद्रीय राजसत्ता के मजबूत होने पर न्यायिक अधिकारों का पुनर्गठन हुआ और अनेक क्षेत्रों में राजकीय न्यायालयों तथा लिखित कानूनों का महत्त्व बढ़ा।

6.9 तकनीकी और कृषि संबंधी पहलू

सामंतवादी अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर थी, इसलिए कृषि तकनीक, सिंचाई, पशुपालन और भूमि उपयोग की पद्धतियों का विशेष महत्त्व था। यूरोप के कुछ क्षेत्रों में भारी हल, घोड़े की जुताई, फसल चक्र और अन्य तकनीकी सुधारों ने कृषि उत्पादन को प्रभावित किया।

भारत में सिंचाई, तालाबों, कुओं, नहरों, कृषि उपकरणों और स्थानीय कृषि ज्ञान ने विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन को प्रभावित किया। इन साधनों के विकास से कृषि अधिशेष और स्थानीय अर्थव्यवस्था के विस्तार की संभावनाएँ बढ़ीं।

हालांकि तकनीकी परिवर्तन सभी क्षेत्रों में समान गति से नहीं हुए। पर्यावरण, श्रम की उपलब्धता, राज्य की नीतियाँ और स्थानीय संसाधन कृषि विकास को प्रभावित करते थे।

6.10 स्त्रियों की स्थिति

सामंतवादी समाज में महिलाओं की स्थिति वर्ग, क्षेत्र, परिवार, संपत्ति के अधिकार और स्थानीय परंपराओं के अनुसार अलग-अलग थी। उच्च वर्ग की कुछ महिलाओं को भूमि, उत्तराधिकार और राजनीतिक गठबंधनों में भूमिका मिल सकती थी, जबकि सामान्य कृषक महिलाओं को घरेलू कार्यों के साथ कृषि श्रम में भी योगदान देना पड़ता था।

यूरोप के कुछ क्षेत्रों में सामंती परिवारों की महिलाएँ पति की अनुपस्थिति में संपत्ति और प्रशासन की देखरेख करती थीं। फिर भी उत्तराधिकार और राजनीतिक अधिकारों पर पुरुषों का प्रभाव प्रायः अधिक था।

भारत में भी महिलाओं की स्थिति विभिन्न सामाजिक समूहों और कालखंडों में भिन्न थी। कुछ शाही और सामंती परिवारों की महिलाएँ धार्मिक दान, भूमि-अनुदान तथा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेती थीं। दूसरी ओर, अनेक महिलाओं को संपत्ति, शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में सीमाओं का सामना करना पड़ता था।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

इसलिए सामंतवादी समाज में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन किसी एक सामान्य निष्कर्ष के बजाय क्षेत्रीय और सामाजिक विविधताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

7. सामंतवाद का विकास और उसका विस्तार

सामंतवाद का विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। यूरोप में इसका निर्माण पश्चिमी रोमन साम्राज्य के विघटन, स्थानीय सुरक्षा की आवश्यकता, भूमि आधारित अर्थव्यवस्था और सैन्य सेवा से जुड़े संबंधों के बीच हुआ। प्रारंभिक मध्यकाल में ये संबंध अलग-अलग रूपों में विकसित हुए और बाद में अनेक क्षेत्रों में अधिक व्यवस्थित संस्थाओं का रूप लेने लगे।

लगभग दसवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच यूरोप के कई भागों में सामंती संबंधों और मैनर आधारित कृषि व्यवस्था का प्रभाव बढ़ा। स्थानीय प्रभुओं के पास भूमि, दुर्ग, सैनिक और न्यायिक अधिकारों का नियंत्रण हो सकता था। कृषकों से लगान और श्रम प्राप्त कर सामंत अपने संसाधनों को बनाए रखते थे।

इसी अवधि में कृषि उत्पादन, जनसंख्या, व्यापार और नगरों का भी विस्तार हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि सामंती व्यवस्था और आर्थिक विकास एक-दूसरे के विरोधी नहीं थे। कुछ क्षेत्रों में सामंती संस्थाएँ व्यापार तथा बाजारों के साथ सह-अस्तित्व में रहीं।

भारत में प्रारंभिक मध्यकाल के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रीय राज्यों, भूमि-अनुदानों और स्थानीय प्रभुओं का विकास हुआ। कुछ स्थानों पर राजनीतिक अधिकारों के विकेंद्रीकरण तथा कृषि अधिशेष पर नियंत्रण ने सामंती संबंधों को मजबूत किया। परंतु भारत के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापार, शहरीकरण और राज्य निर्माण की प्रक्रियाएँ अलग-अलग थीं।

इस प्रकार सामंतवाद का विकास न तो पूरी दुनिया में एक ही समय पर हुआ और न ही उसका स्वरूप सर्वत्र समान था। उसकी प्रकृति को समझने के लिए राजनीतिक संस्थाओं, आर्थिक संबंधों और सामाजिक संरचना के परस्पर प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है।

8. सामंतवाद के पतन का अर्थ

सामंतवाद का पतन उस ऐतिहासिक प्रक्रिया को कहा जाता है, जिसमें भूमि पर आधारित सामंती अधिकारों, कृषकों पर पारंपरिक नियंत्रण, स्थानीय प्रभुओं की राजनीतिक शक्ति तथा सैन्य सेवा पर आधारित संबंधों का महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा। इसके स्थान पर अधिक केंद्रीकृत राजसत्ता, नकद कर-व्यवस्था, वेतनभोगी सेना, बाजार आधारित अर्थव्यवस्था और अपेक्षाकृत स्वतंत्र श्रम संबंधों का विकास हुआ।

सामंतवाद का पतन किसी एक घटना से नहीं हुआ। यह अनेक शताब्दियों तक चलने वाली प्रक्रिया थी। यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में इसके परिवर्तन की गति और स्वरूप अलग-अलग थे। पश्चिमी यूरोप के कुछ भागों में मध्यकाल के उत्तरार्द्ध से सामंती संस्थाएँ कमजोर होने लगीं, जबकि पूर्वी यूरोप के कुछ क्षेत्रों में कृषकों पर नियंत्रण और बंधुआ श्रम की व्यवस्थाएँ लंबे समय तक बनी रहीं।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इसी प्रकार भारतीय संदर्भ में भी सामंती संबंधों के क्षरण को एक निश्चित वर्ष या एक घटना से जोड़ना कठिन है। क्षेत्रीय राज्यों, राजस्व व्यवस्थाओं, औपनिवेशिक शासन, भूमि संबंधों और आधुनिक प्रशासन के विकास ने अलग-अलग कालखंडों में स्थानीय प्रभुओं की शक्ति को प्रभावित किया।

सामंतवाद के पतन को समझने के लिए उसके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सैन्य और वैचारिक आधारों में हुए परिवर्तन का अध्ययन करना आवश्यक है।

9. यूरोप में सामंतवाद के पतन के प्रमुख कारण

यूरोप में सामंतवाद का पतन मध्यकालीन इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकारी प्रक्रियाओं में से एक था। इस प्रक्रिया ने यूरोपीय समाज की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना को बदल दिया। सामंतवाद के पतन के परिणामस्वरूप स्थानीय सामंतों की शक्ति में कमी आई, राजसत्ता अधिक केंद्रीकृत हुई, नगरों और व्यापार का विकास हुआ तथा आधुनिक राज्य के निर्माण की परिस्थितियाँ तैयार हुईं।

सामंतवाद के पतन का कोई एक कारण नहीं था। इसके पीछे कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, व्यापार का विस्तार, नगरों का विकास, मुद्रा का बढ़ता प्रयोग, कृषक विद्रोह, महामारी, सैन्य तकनीक में परिवर्तन, राजसत्ता का सुदृढ़ीकरण, धार्मिक संस्थाओं की शक्ति में परिवर्तन और पुनर्जागरण जैसी अनेक प्रक्रियाएँ सक्रिय थीं। इन कारणों ने अलग-अलग समय पर तथा अलग-अलग क्षेत्रों में सामंती व्यवस्था को प्रभावित किया।

9.1 व्यापार एवं वाणिज्य का विकास

सामंतवाद के पतन का एक प्रमुख कारण व्यापार और वाणिज्य का विस्तार था। प्रारंभिक मध्यकालीन यूरोप के अनेक क्षेत्रों में स्थानीय कृषि उत्पादन का विशेष महत्त्व था, लेकिन बाद के मध्यकाल में क्षेत्रीय तथा दूरगामी व्यापार का विस्तार होने लगा। भूमध्यसागरीय व्यापार, इतालवी नगरों की गतिविधियों और यूरोप के अन्य व्यापारिक मार्गों ने आर्थिक जीवन को नई दिशा प्रदान की।

व्यापार के विस्तार से वस्तुओं का उत्पादन और विनिमय बढ़ा। कपड़ा, धातु, मसाले, शराब, नमक तथा अन्य वस्तुओं के व्यापार ने नए आर्थिक अवसर उत्पन्न किए। व्यापारियों ने भूमि से स्वतंत्र धन और संपत्ति अर्जित करना प्रारंभ किया। इससे आर्थिक शक्ति के पारंपरिक आधार में परिवर्तन आया।

सामंती व्यवस्था में भूमि और कृषि अधिशेष आर्थिक शक्ति के प्रमुख स्रोत थे, जबकि व्यापारिक अर्थव्यवस्था में धन, पूँजी, बाजार और व्यावसायिक कौशल का महत्त्व बढ़ने लगा। व्यापारियों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने से वे स्थानीय सामंतों के पूर्ण नियंत्रण से बाहर निकलने में सक्षम हुए।

व्यापार के विस्तार ने सामंतवाद को तत्काल समाप्त नहीं किया। अनेक सामंत स्वयं व्यापार, ऋण और शहरी आय से लाभ प्राप्त करने लगे। फिर भी व्यापारिक अर्थव्यवस्था के विकास ने भूमि पर आधारित पारंपरिक शक्ति के एकाधिकार को कमजोर किया और नए सामाजिक वर्गों के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।

9.2 नगरों का विकास

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

नगरों का विकास सामंतवाद के पतन की प्रक्रिया में अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में यूरोप के अनेक क्षेत्रों में बाजारों, व्यापारिक केंद्रों, बंदरगाहों और शिल्प उत्पादन से जुड़े नगरों का विस्तार हुआ। नगरों में व्यापारियों, कारीगरों, साहूकारों और अन्य व्यवसायों से जुड़े लोगों की संख्या बढ़ने लगी।

नगरों की आर्थिक व्यवस्था गाँवों से अलग थी। यहाँ धन, व्यापार, श्रम, शिल्प और बाजार का विशेष महत्त्व था। नगरों में रहने वाले लोगों के हित सामंती ग्रामीण व्यवस्था से कई मामलों में भिन्न थे। इसलिए अनेक नगरों ने सामंतों के पारंपरिक अधिकारों से स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयास किया।

यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में नगरों को विशेषाधिकार, स्वशासन, बाजार लगाने के अधिकार और अपने प्रशासन के संचालन की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। नगरों की यह स्वायत्तता स्थानीय सामंतों की शक्ति को चुनौती देती थी।

नगरों में रहने वाले लोगों ने आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से अपनी स्थिति मजबूत की। कुछ नगरों में व्यापारी संगठनों और कारीगर संघों का विकास हुआ। इन संस्थाओं ने उत्पादन, व्यापार और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया।

इस प्रकार नगरों का विकास एक ऐसी नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के उदय का प्रतीक था, जिसमें व्यक्ति की स्थिति केवल भूमि, जन्म और सामंती निष्ठा से निर्धारित नहीं होती थी।

9.3 मुद्रा अर्थव्यवस्था का विस्तार

सामंतवाद के पतन में मुद्रा अर्थव्यवस्था के विकास की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। जैसे-जैसे व्यापार, बाजार और शहरी गतिविधियाँ बढ़ीं, नकद लेन-देन का महत्त्व भी बढ़ने लगा। इससे भूमि और वस्तुओं पर आधारित पारंपरिक आर्थिक संबंधों में परिवर्तन आया।

सामंती व्यवस्था में अनेक प्रकार के दायित्व श्रम अथवा कृषि उपज के रूप में पूरे किए जाते थे। लेकिन धीरे-धीरे कुछ क्षेत्रों में कृषकों से श्रम सेवा लेने के स्थान पर नकद लगान प्राप्त करने की प्रवृत्ति बढ़ी। इससे सामंती आर्थिक संबंधों का स्वरूप बदलने लगा।

नकद लगान की व्यवस्था से किसानों को बाजार के साथ अधिक जुड़ना पड़ा। उन्हें अपनी उपज बेचकर नकदी प्राप्त करनी होती थी, जिससे कृषि उत्पादन पर बाजार की माँग का प्रभाव बढ़ा। साथ ही, सामंतों को अपनी आय प्राप्त करने के लिए कृषि उत्पादन और बाजार की परिस्थितियों पर अधिक निर्भर होना पड़ा।

मुद्रा अर्थव्यवस्था के विस्तार ने व्यापारियों और साहूकारों की भूमिका भी बढ़ाई। ऋण, बैंकिंग और वित्तीय लेन-देन के विकास से आर्थिक शक्ति के नए स्रोत उत्पन्न हुए। इससे भूमि पर आधारित सामंती व्यवस्था का महत्त्व कुछ क्षेत्रों में कम होने लगा।

हालांकि नकद लगान का प्रसार हमेशा किसानों के लिए लाभकारी नहीं था। बाजार की कीमतों में गिरावट, ऋणग्रस्तता और करों के दबाव से उनकी स्थिति कठिन भी हो सकती थी। इसलिए मुद्रा अर्थव्यवस्था का विकास सामंतवाद के पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण तो था, लेकिन इसका प्रभाव सभी वर्गों पर समान नहीं पड़ा।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

9.4 मध्यकालीन कृषि में परिवर्तन

कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा कृषि पद्धतियों में परिवर्तन ने सामंती अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। यूरोप के कुछ क्षेत्रों में बेहतर कृषि उपकरणों, फसल चक्र, पशु शक्ति के उपयोग और भूमि के अधिक व्यवस्थित उपयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई।

कृषि उत्पादन बढ़ने से जनसंख्या में वृद्धि, बाजारों के विस्तार और शहरी केंद्रों के विकास की संभावनाएँ बढ़ीं। ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन का कुछ भाग स्थानीय उपभोग से आगे बढ़कर बाजार में जाने लगा। इससे कृषि और व्यापार के बीच संबंध मजबूत हुए।

कृषि में परिवर्तन ने सामंतों की आय को भी प्रभावित किया। कुछ सामंत बढ़ते उत्पादन से लाभान्वित हुए, जबकि अन्य को श्रम की लागत, बाजार की परिस्थितियों और बदलते सामाजिक संबंधों के अनुसार अपनी व्यवस्था में परिवर्तन करना पड़ा।

समय के साथ कृषि उत्पादन में बाजार की भूमिका बढ़ने से पारंपरिक सामंती दायित्वों का आर्थिक आधार कमजोर होने लगा। फिर भी कृषि परिवर्तन का प्रभाव क्षेत्रीय था और कई क्षेत्रों में सामंती भूमि संबंध लंबे समय तक बने रहे।

9.5 सामंतों के आपसी संघर्ष और युद्ध

सामंतों के बीच संघर्ष सामंती व्यवस्था की कमजोरी का एक महत्त्वपूर्ण कारण था। मध्यकालीन यूरोप में भूमि, उत्तराधिकार, राजनीतिक प्रतिष्ठा और क्षेत्रीय अधिकारों को लेकर अनेक संघर्ष होते थे। इन युद्धों से कृषि भूमि, गाँवों, व्यापारिक मार्गों और स्थानीय अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचता था।

सामंतों के बीच संघर्षों में संसाधनों का बड़ा भाग खर्च हो जाता था। युद्ध के लिए सैनिकों, हथियारों, दुर्गों और अन्य सैन्य साधनों की आवश्यकता होती थी। इन खर्चों को पूरा करने के लिए कभी-कभी किसानों पर अधिक कर और लगान लगाए जाते थे।

दीर्घकालीन युद्धों ने अनेक सामंतों को आर्थिक रूप से कमजोर किया। कुछ को ऋण लेना पड़ा, कुछ ने अपनी भूमि या अधिकार बेच दिए और कुछ की राजनीतिक स्थिति कमजोर हो गई। इस प्रक्रिया से केंद्रीय राजसत्ता को अपनी शक्ति बढ़ाने के अवसर प्राप्त हुए।

हालाँकि युद्धों का प्रभाव हमेशा सामंतों के विरुद्ध नहीं था। कुछ सामंत युद्धों के माध्यम से अपने क्षेत्र का विस्तार भी करते थे। लेकिन जब युद्धों ने पारंपरिक सामंती सैन्य संगठन की सीमाएँ उजागर कीं, तब अधिक संगठित राजकीय सेनाओं और प्रशासनिक संस्थाओं के विकास की आवश्यकता बढ़ी।

9.6 शक्तिशाली केंद्रीकृत राजतंत्र का उदय

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

सामंतवाद के पतन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारण केंद्रीकृत राजतंत्र का विकास था। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में यूरोप के अनेक क्षेत्रों में राजाओं ने स्थानीय सामंतों की स्वतंत्र शक्ति को सीमित करने का प्रयास किया। उन्होंने कर-संग्रह, न्याय, प्रशासन और सैन्य संगठन को अपने नियंत्रण में लाने की दिशा में कदम उठाए।

केंद्रीकृत राजतंत्र के विकास से राजा को सामंतों पर निर्भरता कम करने का अवसर मिला। राजाओं ने राजस्व के नियमित स्रोत विकसित किए, प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की और न्यायिक अधिकारों को अधिक व्यवस्थित किया।

राजकीय न्यायालयों और लिखित प्रशासनिक प्रक्रियाओं के विस्तार से स्थानीय सामंतों के स्वतंत्र न्यायिक अधिकारों पर अंकुश लगाया जा सकता था। इसी प्रकार राजा द्वारा सीधे कर वसूलने की क्षमता बढ़ने से सामंतों की आर्थिक शक्ति प्रभावित हुई।

फ्रांस और इंग्लैंड जैसे क्षेत्रों में राजसत्ता ने विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों में अपनी स्थिति मजबूत की। फिर भी केंद्रीकरण की प्रक्रिया एक समान नहीं थी। कुछ क्षेत्रों में सामंत लंबे समय तक शक्तिशाली बने रहे और अनेक राजाओं को उनके साथ समझौते करने पड़े।

9.7 स्थायी सेना का विकास

सामंती सैन्य व्यवस्था में राजा युद्ध के समय सामंतों की सैनिक सहायता पर निर्भर रहता था। सामंत अपने अधीनस्थ सैनिकों को निर्धारित अवधि तक सैन्य सेवा के लिए भेज सकते थे। लेकिन लंबे युद्धों और बदलती सैन्य आवश्यकताओं के कारण यह व्यवस्था कई बार अपर्याप्त सिद्ध हुई।

केंद्रीय राजसत्ता ने धीरे-धीरे वेतनभोगी सैनिकों और अधिक नियमित सैन्य संगठनों के विकास की दिशा में कदम उठाए। इससे राजा को युद्ध के समय सामंतों के व्यक्तिगत सहयोग पर पूरी तरह निर्भर नहीं रहना पड़ता था।

स्थायी अथवा नियमित सेना के विकास के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। इसके परिणामस्वरूप राजाओं ने कर-व्यवस्था को मजबूत किया और प्रशासनिक संस्थाओं का विस्तार किया। इस प्रक्रिया ने केंद्रीय सत्ता को और सुदृढ़ किया।

स्थायी सेना का विकास सामंतवाद के सैन्य आधार को कमजोर करने वाला कारक था। जब राजा स्वतंत्र रूप से सेना संगठित करने में सक्षम हुआ, तो सामंतों की सैनिक शक्ति पर उसकी निर्भरता कम होने लगी।

9.8 बारूद और सैन्य तकनीक का विकास

बारूद के उपयोग तथा तोपों और आग्नेयास्त्रों के विकास ने यूरोप की सैन्य व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। मध्यकालीन सामंतों की शक्ति का एक आधार उनके दुर्ग और सशस्त्र घुड़सवार सैनिक थे। लेकिन शक्तिशाली तोपों के विकास से अनेक पारंपरिक दुर्गों की सैन्य उपयोगिता प्रभावित हुई।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

नई सैन्य तकनीकों के उपयोग के लिए अधिक धन, प्रशिक्षित सैनिकों और संगठित प्रशासन की आवश्यकता थी। यह व्यवस्था प्रायः केंद्रीकृत राजसत्ता के लिए अधिक अनुकूल थी, क्योंकि उसके पास व्यापक कर-संग्रह और संसाधनों को संगठित करने की बेहतर क्षमता हो सकती थी।

सैन्य तकनीक में परिवर्तन से सामंतों की स्वतंत्र सैन्य शक्ति का महत्त्व कम होने लगा। राजाओं को ऐसे साधन प्राप्त हुए जिनके माध्यम से वे विद्रोही सामंतों के दुर्गों और सैन्य ठिकानों को चुनौती दे सकते थे।

फिर भी बारूद और तोपों के विकास को सामंतवाद के पतन का अकेला कारण नहीं माना जा सकता। इसका प्रभाव व्यापार, राजस्व, राज्य निर्माण और सैन्य संगठन में हो रहे व्यापक परिवर्तनों के साथ मिलकर सामने आया।

9.9 भाड़े के सैनिकों और पैदल सेना का महत्त्व

मध्यकालीन यूरोप में सैन्य संगठन केवल सामंती घुड़सवारों पर आधारित नहीं रहा। समय के साथ पैदल सेना, धनुर्धारियों और भाड़े के सैनिकों की भूमिका बढ़ी। कुछ क्षेत्रों में संगठित पैदल सेना ने युद्ध के परिणामों को प्रभावित किया।

भाड़े के सैनिकों को भुगतान करके नियुक्त किया जा सकता था। इससे राजा या शक्तिशाली शासक को सामंतों की पारंपरिक सैन्य सेवा से अलग सैन्य शक्ति प्राप्त करने का अवसर मिला।

सैन्य संगठन में इन परिवर्तनों से सामंतों की विशिष्ट सैन्य भूमिका कमजोर हो सकती थी। साथ ही, नियमित भुगतान और सैनिकों की भर्ती के लिए अधिक विकसित वित्तीय व्यवस्था की आवश्यकता बढ़ी। इससे राजस्व और प्रशासन का केंद्रीकरण प्रोत्साहित हुआ।

9.10 सामंतों की आर्थिक कमजोरी और ऋणग्रस्तता

सामंतों की आर्थिक स्थिति अनेक कारणों से कमजोर होने लगी। युद्धों पर होने वाला खर्च, विलासितापूर्ण जीवन, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, ऋण और बदलती बाजार परिस्थितियों ने कुछ सामंती परिवारों को आर्थिक संकट में डाल दिया।

कुछ सामंत अपनी आय बढ़ाने के लिए किसानों पर अधिक लगान लगाने लगे। इससे कृषक असंतोष बढ़ सकता था। दूसरी ओर, व्यापार और मुद्रा अर्थव्यवस्था के विस्तार से कुछ भू-स्वामियों को अपनी पारंपरिक आय के अतिरिक्त नए स्रोतों की तलाश करनी पड़ी।

आर्थिक संकट से जूझ रहे कुछ सामंतों ने अपनी भूमि या अधिकारों को बेच दिया अथवा उन्हें अन्य शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथों में सौंप दिया। इससे स्थानीय शक्ति-संतुलन में परिवर्तन आया।

हालांकि सभी सामंत आर्थिक रूप से कमजोर नहीं हुए। कुछ सामंती परिवारों ने बाजार, व्यापार और राजकीय सेवा से लाभ प्राप्त किया। इसलिए आर्थिक कमजोरी को व्यापक परिवर्तन का एक घटक माना जाना चाहिए, न कि सभी सामंतों की समान स्थिति।

Dr. RAkesh Mohan NaitiyaL

9.11 सामंतवाद के विरुद्ध कृषक असंतोष

किसानों पर लगान, बेगार, श्रम सेवा और अन्य आर्थिक दायित्वों का दबाव सामंती व्यवस्था की एक प्रमुख समस्या थी। जब ये दायित्व अत्यधिक हो जाते थे या किसानों की आजीविका संकट में पड़ती थी, तो असंतोष बढ़ता था।

कृषकों का असंतोष कभी-कभी सामूहिक विरोध, करों का भुगतान न करने, श्रम सेवा से इनकार करने या विद्रोह के रूप में सामने आता था। ऐसे आंदोलनों ने स्थानीय सामंतों और शासकों को अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य किया।

किसानों के विद्रोहों का उद्देश्य हमेशा सामंतवाद को पूरी तरह समाप्त करना नहीं था। अनेक आंदोलनों में करों में कमी, बेगार से मुक्ति, स्थानीय अधिकारों की रक्षा या बेहतर जीवन स्थितियों की माँग की जाती थी।

फिर भी कृषक असंतोष ने सामंती प्रभुओं की सत्ता की सीमाओं को उजागर किया। जहाँ किसानों को वैकल्पिक आजीविका, नगरों में रोजगार या बेहतर कानूनी संरक्षण प्राप्त हुआ, वहाँ पारंपरिक सामंती निर्भरता को चुनौती देने की संभावनाएँ बढ़ीं।

9.12 1381 का इंग्लैंड का कृषक विद्रोह

इंग्लैंड का 1381 का कृषक विद्रोह मध्यकालीन यूरोप में कृषक असंतोष का एक प्रसिद्ध उदाहरण है। इस विद्रोह के पीछे करों का दबाव, श्रम संबंधी प्रतिबंध और सामाजिक-आर्थिक असंतोष जैसे अनेक कारण थे। विशेष रूप से कर-संग्रह और श्रम व्यवस्था से संबंधित समस्याओं ने ग्रामीण समाज में असंतोष को बढ़ाया।

विद्रोह में विभिन्न ग्रामीण समूहों ने भाग लिया। आंदोलन के दौरान विद्रोहियों ने करों और पारंपरिक दायित्वों के विरुद्ध अपनी माँगें प्रस्तुत कीं। यद्यपि विद्रोह को अंततः दबा दिया गया, लेकिन इसने इंग्लैंड की सामंती सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त तनाव को उजागर किया।

इस विद्रोह को सामंतवाद के तत्काल अंत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसका महत्त्व इस बात में था कि किसानों ने संगठित होकर अपने अधिकारों और आर्थिक स्थिति से संबंधित प्रश्नों को राजनीतिक मुद्दा बनाया।

9.13 फ्रांस में कृषक विद्रोह और जैकरी आंदोलन

फ्रांस में 1358 का जैकरी आंदोलन सामंती व्यवस्था के विरुद्ध कृषक असंतोष का एक प्रमुख उदाहरण है। उस समय फ्रांस सौ वर्षीय युद्ध के कारण राजनीतिक अस्थिरता, सैन्य संकट और आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहा था।

युद्ध के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में असुरक्षा बढ़ी और किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा। सामंतों की सैन्य विफलताओं तथा ग्रामीण समाज पर पड़ने वाले दबाव ने असंतोष को बढ़ाया। इसी पृष्ठभूमि में अनेक किसानों ने विद्रोह किया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

जैकरी आंदोलन को अंततः दबा दिया गया, लेकिन इसने सामंती प्रभुओं और कृषक समाज के बीच तनाव को स्पष्ट कर दिया। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि युद्ध, आर्थिक संकट और सामाजिक असमानता मिलकर सामंती व्यवस्था को किस प्रकार चुनौती दे सकते थे।

9.14 ब्लैक डेथ अर्थात् काली मृत्यु की महामारी

चौदहवीं शताब्दी में यूरोप में फैली ब्लैक डेथ महामारी ने सामंती अर्थव्यवस्था और समाज को गहराई से प्रभावित किया। लगभग 1347 से 1352 के बीच महामारी के कारण यूरोप की बड़ी जनसंख्या की मृत्यु हुई। विभिन्न क्षेत्रों में मृत्यु-दर अलग-अलग थी, लेकिन इसके सामाजिक और आर्थिक परिणाम व्यापक थे।

महामारी से कृषि श्रमिकों और कारीगरों की संख्या में कमी आई। अनेक गाँव उजड़ गए और कई कृषि क्षेत्रों में श्रम की उपलब्धता घट गई। इससे श्रमिकों की माँग और मजदूरी पर प्रभाव पड़ा।

जहाँ श्रमिकों की कमी हुई, वहाँ बचे हुए किसानों और मजदूरों को बेहतर मजदूरी या अधिक अनुकूल शर्तों की माँग करने का अवसर मिल सकता था। कुछ किसानों ने बेहतर अवसरों की तलाश में स्थान परिवर्तन किया। इससे भू-स्वामियों के लिए पुराने श्रम संबंधों को बनाए रखना कठिन हो सकता था।

कई शासकों और भू-स्वामियों ने मजदूरी तथा श्रम पर नियंत्रण रखने के प्रयास किए। इन प्रयासों के विरुद्ध भी असंतोष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार महामारी ने जनसंख्या, श्रम बाजार और कृषि अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन किए, जिनका प्रभाव सामंती व्यवस्था पर पड़ा।

हालाँकि ब्लैक डेथ ने पूरे यूरोप में सामंतवाद को एक ही समय पर समाप्त नहीं किया। कुछ क्षेत्रों में कृषकों की स्वतंत्रता बढ़ी, जबकि अन्य क्षेत्रों में भू-स्वामियों ने श्रम पर अपना नियंत्रण बनाए रखा या उसे और कठोर किया।

9.15 जनसंख्या में परिवर्तन

जनसंख्या में परिवर्तन भी सामंती व्यवस्था के विकास और पतन से जुड़ा था। तेरहवीं शताब्दी तक यूरोप के अनेक क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि ने कृषि भूमि और संसाधनों पर दबाव बढ़ाया। चौदहवीं शताब्दी में महामारी, अकाल और युद्धों ने जनसंख्या को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

जनसंख्या में गिरावट से कई क्षेत्रों में श्रमिकों की कमी उत्पन्न हुई। इससे किसानों और मजदूरों की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया। जहाँ श्रम की माँग अधिक और श्रमिक कम थे, वहाँ श्रमिक बेहतर शर्तें प्राप्त करने का प्रयास कर सकते थे।

इसके विपरीत, जनसंख्या वृद्धि की परिस्थितियों में भूमि पर दबाव बढ़ सकता था और किसानों की स्थिति कमजोर हो सकती थी। इसलिए जनसंख्या का प्रभाव हमेशा एक जैसा नहीं था।

जनसंख्या में परिवर्तन ने भूमि, श्रम, मजदूरी और उत्पादन के बीच संबंधों को बदल दिया। इससे सामंती अर्थव्यवस्था की पारंपरिक संरचना पर प्रभाव पड़ा।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

9.16 अकाल और आर्थिक संकट

मध्यकालीन यूरोप में कृषि उत्पादन प्राकृतिक परिस्थितियों पर बहुत निर्भर था। सूखा, अत्यधिक वर्षा, फसल की विफलता और अन्य प्राकृतिक संकट अकाल का कारण बन सकते थे। अकाल से कृषि उत्पादन कम होता, खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़तीं और किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती थी।

किसानों के पास पर्याप्त अनाज नहीं रहने पर भी लगान और अन्य दायित्वों का दबाव बना रह सकता था। इससे ऋणग्रस्तता, भूमि छोड़ने और सामाजिक असंतोष की संभावना बढ़ती थी।

अकाल और महामारी कई बार एक-दूसरे को बढ़ाते थे। कुपोषण से लोग बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकते थे, जबकि महामारी से श्रम की उपलब्धता और उत्पादन दोनों प्रभावित होते थे।

इन परिस्थितियों ने सामंती अर्थव्यवस्था की कमजोरियों को उजागर किया। फिर भी अकाल सामंतवाद के पतन का अकेला कारण नहीं था; इसका प्रभाव युद्धों, श्रम संबंधों, बाजारों और राजकीय नीतियों के साथ मिलकर सामने आया।

9.17 चर्च की शक्ति में परिवर्तन

मध्यकालीन यूरोप में चर्च एक प्रभावशाली धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्था था। उसके पास भूमि और अन्य संसाधन थे तथा वह शिक्षा और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता था। लेकिन समय के साथ चर्च की राजनीतिक शक्ति को विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

राजाओं और चर्च के बीच नियुक्तियों, करों, संपत्ति तथा अधिकारों को लेकर संघर्ष होते रहे। कई शासकों ने धार्मिक संस्थाओं पर अपना नियंत्रण बढ़ाने का प्रयास किया। इससे चर्च की स्वतंत्र राजनीतिक भूमिका प्रभावित हुई।

चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियों में चर्च की प्रतिष्ठा को विभिन्न संकटों और आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। बाद में सोलहवीं शताब्दी का धर्म-सुधार आंदोलन पश्चिमी यूरोप के धार्मिक तथा राजनीतिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आया।

हालाँकि चर्च की शक्ति में परिवर्तन को सीधे सामंतवाद के अंत के बराबर नहीं माना जा सकता। अनेक धार्मिक संस्थाएँ लंबे समय तक भूमि और संपत्ति पर अधिकार बनाए रहीं। फिर भी धार्मिक अधिकारों और राजकीय सत्ता के बीच बदलते संबंधों ने मध्यकालीन यूरोपीय व्यवस्था के पुनर्गठन में योगदान दिया।

9.18 पुनर्जागरण का प्रभाव

पुनर्जागरण यूरोप में बौद्धिक, साहित्यिक, कलात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तन की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया थी। इसका प्रारंभ विशेष रूप से इतालवी नगरों में हुआ और बाद में यह यूरोप के अन्य क्षेत्रों में फैला।

पुनर्जागरण ने प्राचीन यूनानी और रोमन ज्ञान के अध्ययन, मानव क्षमता, साहित्य, कला और बौद्धिक जिज्ञासा को प्रोत्साहित किया। इससे शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक जीवन में नए दृष्टिकोण विकसित हुए।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

व्यापारिक नगरों, धनी व्यापारियों और शहरी अभिजात वर्ग ने पुनर्जागरण की गतिविधियों को संरक्षण दिया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सांस्कृतिक संरक्षण केवल सामंती भू-स्वामियों तक सीमित नहीं रहा।

फिर भी पुनर्जागरण को सामंतवाद के पतन का प्रत्यक्ष और अकेला कारण मानना उचित नहीं है। इसका प्रभाव मुख्यतः बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा, जबकि सामंती संबंधों में परिवर्तन के लिए आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रियाएँ भी आवश्यक थीं।

9.19 मानवतावाद और नए बौद्धिक दृष्टिकोण

पुनर्जागरण से जुड़े मानवतावादी विचारों ने मानव क्षमता, शिक्षा, नैतिकता और बौद्धिक स्वतंत्रता के प्रश्नों को नई दिशा दी। इससे यूरोप के कुछ शहरी और शिक्षित समूहों में सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को समझने के नए तरीके विकसित हुए।

मध्यकालीन समाज में परंपरा और धार्मिक अधिकार का महत्त्व बना रहा, लेकिन नए बौद्धिक दृष्टिकोणों ने ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में विविधता को बढ़ावा दिया। इससे शहरी संस्कृति और राजकीय प्रशासन में नए प्रकार के शिक्षित लोगों की भूमिका बढ़ सकती थी।

मानवतावाद ने सीधे सामंती संस्थाओं को समाप्त नहीं किया, लेकिन इसने उस व्यापक सांस्कृतिक परिवर्तन में योगदान दिया जिसके भीतर आधुनिक राज्य, नई शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता का विकास हुआ।

9.20 भौगोलिक खोजें और समुद्री व्यापार

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में यूरोपीय समुद्री यात्राओं और भौगोलिक खोजों ने विश्व व्यापार की संरचना को बदलना शुरू किया। अटलांटिक व्यापार, नए समुद्री मार्गों और औपनिवेशिक विस्तार ने कुछ यूरोपीय राज्यों तथा व्यापारिक समूहों की आर्थिक शक्ति बढ़ाई।

व्यापार का विस्तार होने से समुद्री व्यापारियों, वित्तीय संस्थाओं और व्यापारिक कंपनियों का महत्त्व बढ़ा। धन तथा व्यापार से अर्जित संपत्ति आर्थिक शक्ति का एक प्रमुख स्रोत बनने लगी।

इससे भूमि पर आधारित सामंती संपत्ति के साथ-साथ व्यापारिक पूँजी का महत्त्व भी बढ़ा। कुछ क्षेत्रों में राजाओं ने विदेशी व्यापार और औपनिवेशिक गतिविधियों से प्राप्त संसाधनों का उपयोग अपनी सैन्य तथा प्रशासनिक शक्ति बढ़ाने में किया।

फिर भी भौगोलिक खोजें सामंतवाद के पतन की प्रारंभिक वजह नहीं थीं। वे मुख्यतः उस व्यापक परिवर्तन को गति देने वाली प्रक्रिया थीं, जिसमें व्यापारिक पूँजी, केंद्रीकृत राजसत्ता और विश्व बाजारों का विस्तार हुआ।

9.21 राष्ट्रीय भावना और आधुनिक राज्य का विकास

मध्यकालीन यूरोप में राजनीतिक निष्ठा अनेक बार स्थानीय प्रभुओं, राजवंशों, नगरों और धार्मिक संस्थाओं से जुड़ी होती थी। लेकिन समय के साथ कुछ क्षेत्रों में केंद्रीकृत प्रशासन, साझा कानून, राजकीय संस्थाओं और क्षेत्रीय राजनीतिक पहचान का विकास हुआ।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

राजाओं ने अपने क्षेत्रों में अधिक नियमित कर-व्यवस्था, प्रशासनिक अधिकारियों और सैन्य संगठनों को विकसित किया। इससे स्थानीय सामंतों की स्वतंत्रता सीमित होने लगी।

आधुनिक राज्य का विकास एक लंबी प्रक्रिया थी। इसे केवल राष्ट्रीय भावना के उदय से नहीं समझा जा सकता, क्योंकि राजस्व, युद्ध, प्रशासन, कानून और राजवंशीय राजनीति की भूमिका भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी।

फिर भी केंद्रीकृत राज्य की स्थापना ने सामंतवाद के राजनीतिक ढाँचे को चुनौती दी। जब राज्य ने न्याय, कर-संग्रह और सैन्य शक्ति पर अधिक नियंत्रण स्थापित किया, तो स्थानीय प्रभुओं की स्वतंत्र सत्ता का महत्त्व कम होने लगा।

9.22 सामंती विशेषाधिकारों के विरुद्ध सामाजिक परिवर्तन

सामंती व्यवस्था में अनेक अधिकार जन्म, वंश, भूमि और परंपरा पर आधारित थे। समय के साथ नगरों, व्यापार और शिक्षा के विस्तार से ऐसे समूहों का महत्त्व बढ़ा जिनकी आर्थिक स्थिति केवल भूमि पर निर्भर नहीं थी।

व्यापारी, कारीगर, साहूकार और प्रशासनिक अधिकारी नए सामाजिक समूहों के रूप में उभरे। इन समूहों ने आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में अधिक भागीदारी की संभावनाएँ प्राप्त कीं।

सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में पुराने विशेषाधिकारों पर प्रश्न उठने लगे। हालांकि आधुनिक समानता और नागरिक अधिकारों की अवधारणाएँ बहुत बाद में विकसित हुईं, फिर भी मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में सामाजिक गतिशीलता ने पारंपरिक सामंती ढाँचे को प्रभावित किया।

इस प्रकार सामंतवाद का पतन केवल आर्थिक या सैन्य परिवर्तन नहीं था। यह समाज में शक्ति, प्रतिष्ठा और अधिकारों के वितरण में होने वाले व्यापक बदलावों से भी जुड़ा हुआ था।

10. सामंतवाद के पतन में व्यापारिक वर्ग और पूँजीवाद की भूमिका

सामंतवाद के पतन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू व्यापारिक वर्ग का उदय और पूँजीवादी संबंधों का क्रमिक विकास था। सामंती व्यवस्था में भूमि से प्राप्त आय आर्थिक शक्ति का प्रमुख आधार थी, जबकि विकसित होती व्यापारिक अर्थव्यवस्था में पूँजी, बाजार, ऋण और लाभ का महत्त्व बढ़ने लगा।

10.1 व्यापारिक वर्ग का उदय

व्यापार के विस्तार से यूरोप में ऐसे लोगों का वर्ग विकसित हुआ जिनकी संपत्ति भूमि के बजाय व्यापार, वित्त और शिल्प से प्राप्त होती थी। इस वर्ग को सामान्यतः बुर्जुआ वर्ग कहा जाता है, यद्यपि इसकी संरचना समय और क्षेत्र के अनुसार बदलती रही।

व्यापारियों और साहूकारों ने आर्थिक संसाधनों को संगठित करने, ऋण उपलब्ध कराने और बाजारों के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कुछ व्यापारियों ने राजाओं को भी वित्तीय सहायता प्रदान की। इससे राजसत्ता को सामंतों से स्वतंत्र संसाधन जुटाने में सहायता मिली।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

10.2 उत्पादन और श्रम संबंधों में परिवर्तन

व्यापारिक माँग बढ़ने से वस्तुओं का उत्पादन अधिक संगठित होने लगा। कुछ क्षेत्रों में घरेलू उद्योग, कारीगर उत्पादन और व्यापारी-नियंत्रित उत्पादन पद्धतियों का विस्तार हुआ।

इससे उत्पादन के नए संबंध विकसित हुए, जिनमें श्रम और पूँजी की भूमिका बढ़ती गई। हालांकि इन परिवर्तनों के बावजूद कृषि और सामंती भूमि संबंध लंबे समय तक बने रहे।

10.3 पूँजीवादी संबंधों का क्रमिक विकास

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन, निवेश, बाजार और लाभ का विशेष महत्व होता है। यूरोप में इन संबंधों का विकास मध्यकाल के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ होकर प्रारंभिक आधुनिक काल में अधिक स्पष्ट हुआ।

सामंतवाद और पूँजीवाद के बीच परिवर्तन अचानक नहीं हुआ। कई क्षेत्रों में सामंती भू-स्वामी स्वयं व्यापारिक गतिविधियों में शामिल हुए, जबकि कुछ व्यापारियों ने भूमि खरीदी और स्थानीय अभिजात वर्ग का हिस्सा बन गए।

इसलिए सामंतवाद के पतन को पूँजीवाद की ओर एक सरल और सीधी यात्रा के रूप में नहीं देखना चाहिए। यह अनेक आर्थिक व्यवस्थाओं, सामाजिक समूहों और राजनीतिक संस्थाओं के बीच संघर्ष तथा समायोजन की प्रक्रिया थी।

11. सामंतवाद के पतन में राजनीतिक और प्रशासनिक परिवर्तनों की भूमिका

राजनीतिक तथा प्रशासनिक परिवर्तन सामंतवाद के क्षरण का प्रमुख आधार बने। केंद्रीकृत राज्य के विकास से राजा को राजस्व, न्याय और सेना पर अधिक नियंत्रण प्राप्त हुआ। इससे स्थानीय प्रभुओं के पारंपरिक अधिकारों का दायरा सीमित हो सकता था।

11.1 नियमित कर-व्यवस्था

राजाओं को स्थायी सेना, प्रशासन और युद्धों के लिए नियमित आय की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में कर-संग्रह की व्यवस्था को अधिक संगठित करने का प्रयास किया।

नियमित राजस्व से राजाओं को सामंतों पर निर्भरता कम करने का अवसर मिला। इससे केंद्रीय प्रशासन की क्षमता बढ़ी और राजनीतिक शक्ति का पुनर्वितरण हुआ।

11.2 राजकीय अधिकारियों का विस्तार

राजकीय प्रशासन के विस्तार से स्थानीय सामंतों के स्थान पर नियुक्त अधिकारियों की भूमिका बढ़ सकती थी। ये अधिकारी कर-संग्रह, न्याय, भूमि संबंधी अभिलेख और प्रशासनिक कार्यों को संचालित करते थे।

इससे प्रशासनिक निर्णयों पर केंद्रीय शासन का प्रभाव बढ़ा। हालाँकि अनेक क्षेत्रों में स्थानीय अभिजात वर्ग ने प्रशासन में अपनी भूमिका बनाए रखी और राज्य के साथ सहयोग भी किया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

11.3 न्यायिक अधिकारों का केंद्रीकरण

राजाओं ने कई क्षेत्रों में न्यायिक अधिकारों को अपने नियंत्रण में लाने का प्रयास किया। राजकीय न्यायालयों और लिखित नियमों के विस्तार से सामंतों की स्वतंत्र न्यायिक शक्ति सीमित हो सकती थी।

इस परिवर्तन से प्रशासनिक एकरूपता बढ़ाने और राजकीय सत्ता को मजबूत करने में सहायता मिली। फिर भी स्थानीय कानून, प्रथाएँ और सामंती विशेषाधिकार अनेक क्षेत्रों में लंबे समय तक बने रहे।

11.4 राजवंशीय युद्ध और राज्य निर्माण

यूरोप में विभिन्न राजवंशों के बीच हुए युद्धों ने राजनीतिक मानचित्र को बदल दिया। कुछ सामंत शक्तिशाली राजाओं के अधीन आए, जबकि कुछ के क्षेत्र केंद्रीय राज्यों में सम्मिलित कर लिए गए।

दीर्घकालीन युद्धों ने राज्य निर्माण की प्रक्रिया को तेज किया। युद्धों के लिए अधिक राजस्व, नियमित सेना और संगठित प्रशासन की आवश्यकता ने केंद्रीकरण को प्रोत्साहित किया।

इस प्रकार राजनीतिक तथा प्रशासनिक परिवर्तन सामंतवाद के पतन के केवल परिणाम नहीं थे, बल्कि उसकी शक्ति को कमजोर करने वाले सक्रिय कारण भी थे।

12. सामंतवाद के पतन में सामाजिक और वैचारिक परिवर्तन

सामंतवाद का पतन सामाजिक संरचना और विचारों में आए परिवर्तनों से भी जुड़ा था। जैसे-जैसे नगरों, व्यापार, शिक्षा और राजकीय संस्थाओं का विकास हुआ, वैसे-वैसे समाज में नए वर्गों और नई आकांक्षाओं का उदय हुआ।

12.1 सामाजिक गतिशीलता

सामंती समाज में सामाजिक स्थिति का निर्धारण प्रायः जन्म, भूमि और वंश से होता था। लेकिन व्यापार, शिल्प, राजकीय सेवा और शिक्षा के विस्तार से कुछ व्यक्तियों को सामाजिक उन्नति के नए अवसर प्राप्त हुए।

इससे सामाजिक प्रतिष्ठा के पारंपरिक आधारों में परिवर्तन आया। आर्थिक सफलता और प्रशासनिक पद भी सामाजिक प्रभाव के स्रोत बनने लगे।

12.2 शिक्षा का विस्तार

मध्यकालीन यूरोप में विश्वविद्यालयों और शैक्षिक संस्थाओं के विकास ने शिक्षित व्यक्तियों के नए समूह तैयार किए। कानून, प्रशासन, चिकित्सा, धर्मशास्त्र और अन्य विषयों के अध्ययन ने समाज में विद्वानों और प्रशिक्षित अधिकारियों की भूमिका बढ़ाई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

राजकीय प्रशासन को ऐसे लोगों की आवश्यकता थी जो अभिलेख, कर-व्यवस्था और न्यायिक कार्यों का संचालन कर सकें। इससे स्थानीय सामंतों के पारंपरिक प्रशासनिक अधिकारों के समानांतर नई संस्थाओं का विकास हुआ।

12.3 विचारों में परिवर्तन

सामंतवाद के पतन को किसी एक वैचारिक आंदोलन से नहीं जोड़ा जा सकता। फिर भी पुनर्जागरण, मानवतावाद, धार्मिक सुधार और बाद में विकसित राजनीतिक विचारों ने यूरोपीय समाज की मानसिकता को प्रभावित किया।

इन परिवर्तनों ने ज्ञान, सत्ता, धार्मिक अधिकार और सामाजिक संगठन के बारे में नए प्रश्न उठाए। आधुनिक नागरिकता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और समानता के विचार बाद के काल में अधिक स्पष्ट हुए।

इस प्रकार बौद्धिक और सांस्कृतिक परिवर्तन ने सामंतवाद के पतन की व्यापक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार करने में योगदान दिया।

13. भारत में सामंती संबंधों के परिवर्तन और पतन के कारण

भारत में सामंती संबंधों के परिवर्तन का इतिहास यूरोप से अलग था। भारतीय समाज में भूमि-अनुदान, क्षेत्रीय शासक, स्थानीय भू-स्वामी, राजस्व-संग्रहकर्ता और कृषकों के बीच संबंध विभिन्न कालखंडों में विकसित हुए। इन संबंधों का स्वरूप उत्तर भारत, दक्षिण भारत, पूर्वी भारत, पश्चिमी भारत और दक्कन में एक जैसा नहीं था।

भारत में सामंती संबंधों के क्षरण को समझने के लिए प्राचीन सामंतों और प्रारंभिक मध्यकालीन अधीनस्थ शासकों की स्थिति के साथ-साथ दिल्ली सल्तनत, मुगल साम्राज्य, क्षेत्रीय राज्यों तथा औपनिवेशिक शासन की भूमि और राजस्व संबंधी नीतियों का अध्ययन करना आवश्यक है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मध्यकालीन भारत में स्थानीय भू-स्वामियों की शक्ति का कमजोर होना और आधुनिक अर्थ में सामंतवाद का अंत दो अलग-अलग प्रक्रियाएँ हो सकती हैं।

13.1 प्रारंभिक मध्यकालीन राज्यों का पुनर्गठन

प्रारंभिक मध्यकाल में भारत के अनेक क्षेत्रों में क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। इन राज्यों में शासकों, सामंतों और स्थानीय शक्तियों के बीच संबंध राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते थे।

कुछ सामंत अपने अधिपति के प्रति निष्ठा रखते थे, लेकिन समय आने पर वे स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयास भी करते थे। जब किसी शक्तिशाली राजवंश का पतन होता था, तो उसके अधीनस्थ शासक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर सकते थे।

इस प्रक्रिया ने राजनीतिक सत्ता के निरंतर पुनर्गठन को जन्म दिया। परिणामस्वरूप सामंती संबंधों का स्वरूप एक स्थिर व्यवस्था के बजाय बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता रहा।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

13.2 दिल्ली सल्तनत की स्थापना और राजनीतिक परिवर्तन

तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने उत्तर भारत के राजनीतिक ढाँचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। सल्तनत के शासकों ने अपने नियंत्रण वाले क्षेत्रों में राजस्व-संग्रह, सैन्य संगठन और प्रशासनिक व्यवस्था को विकसित करने का प्रयास किया।

सल्तनत के अंतर्गत इक्ता व्यवस्था का विशेष महत्त्व था। इक्ता के माध्यम से अधिकारियों को निर्धारित क्षेत्रों से राजस्व प्राप्त करने और प्रशासनिक या सैन्य दायित्व निभाने की व्यवस्था की जाती थी। इक्तादारों की स्थिति और अधिकार समय, क्षेत्र तथा शासक की नीतियों के अनुसार बदलते थे।

इक्ता व्यवस्था को यूरोपीय सामंती जागीर व्यवस्था के समान मानना उचित नहीं है। दोनों में भूमि या राजस्व से प्राप्त आय का संबंध राजनीतिक और सैन्य दायित्वों से हो सकता था, लेकिन उनके कानूनी आधार, प्रशासनिक संरचना और ऐतिहासिक विकास में महत्त्वपूर्ण अंतर थे।

सल्तनत के शासकों ने स्थानीय शक्तियों को कभी पराजित किया, कभी अपने प्रशासन में सम्मिलित किया और कभी उनसे समझौते किए। इस प्रक्रिया ने उत्तर भारत में राजनीतिक अधिकारों के पुनर्वितरण को प्रभावित किया।

13.3 मुगल साम्राज्य और मनसबदारी व्यवस्था

मुगल साम्राज्य के अंतर्गत मनसबदारी और जागीरदारी व्यवस्थाओं ने प्रशासनिक तथा सैन्य संगठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मनसबदारों को उनकी पदस्थिति के अनुसार प्रशासनिक और सैन्य दायित्व दिए जाते थे। अनेक मनसबदारों को वेतन के बदले किसी क्षेत्र के राजस्व से आय प्राप्त करने का अधिकार दिया जाता था।

मुगल जागीर सामान्यतः राजस्व प्राप्त करने का अधिकार थी; उसे हर स्थिति में भूमि का निजी स्वामित्व नहीं माना जा सकता। जागीरदारों के अधिकार और दायित्व राजकीय प्रशासन तथा शाही आदेशों से निर्धारित होते थे।

मुगल व्यवस्था में जागीरों का स्थानांतरण और अधिकारियों पर शाही नियंत्रण बनाए रखने के प्रयास केंद्रीय सत्ता के महत्त्व को दर्शाते हैं। हालांकि व्यवहार में स्थानीय शक्तियों, जमींदारों और क्षेत्रीय परिस्थितियों का प्रभाव भी बना रहता था।

इस प्रकार मुगल प्रशासन ने अनेक क्षेत्रों में राजस्व और सैन्य दायित्वों को संगठित किया। इसे यूरोपीय सामंतवाद की हूबहू प्रतिकृति नहीं कहा जा सकता, लेकिन इसने भारत में भूमि, राजस्व और राजनीतिक अधिकारों के संबंधों को गहराई से प्रभावित किया।

13.4 मुगल साम्राज्य का विघटन और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य की केंद्रीय शक्ति कमजोर होने लगी। इस दौरान मराठों, सिखों, जाटों, अवध, बंगाल, हैदराबाद और अन्य क्षेत्रीय शक्तियों का प्रभाव बढ़ा। विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय भू-स्वामियों तथा राजस्व-संग्रहकर्ताओं की भूमिका भी बदलती रही।

केंद्रीय सत्ता के कमजोर होने से कुछ स्थानीय शक्तियों को अधिक स्वतंत्रता मिली। कई क्षेत्रों में नए राजनीतिक संगठन विकसित हुए, जबकि अन्य क्षेत्रों में पुराने अभिजात वर्ग ने अपनी स्थिति बनाए रखी।

इसलिए मुगल साम्राज्य के पतन को भारतीय सामंतवाद का अंत नहीं कहा जा सकता। वास्तव में इस अवधि में भूमि और राजस्व पर नियंत्रण रखने वाले अनेक स्थानीय समूह शक्तिशाली बने रहे। बाद में औपनिवेशिक शासन ने इन संबंधों को अपने प्रशासनिक तथा आर्थिक हितों के अनुसार पुनर्गठित किया।

13.5 औपनिवेशिक शासन की स्थापना

अठारहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी की राजनीतिक शक्ति बढ़ने के साथ भारतीय भूमि और राजस्व व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन शुरू हुए। कंपनी ने राजस्व प्राप्ति को अपने शासन की आर्थिक नींव बनाया।

औपनिवेशिक सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में भूमि-राजस्व वसूलने की अलग-अलग व्यवस्थाएँ लागू कीं। इन व्यवस्थाओं का उद्देश्य राजस्व को अधिक नियमित और प्रशासनिक रूप से नियंत्रित करना था। लेकिन इनका प्रभाव कृषकों, भू-स्वामियों और स्थानीय समाज पर व्यापक पड़ा।

औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भूमि संबंधों को नए कानूनी तथा प्रशासनिक रूपों में परिभाषित किया गया। कुछ पारंपरिक अधिकारों को मान्यता मिली, कुछ का पुनर्गठन हुआ और कुछ स्थानीय संस्थाओं की शक्ति कम हुई। इससे ग्रामीण समाज में नए प्रकार की असमानताएँ और निर्भरताएँ भी विकसित हुईं।

13.6 स्थायी बंदोबस्त

1793 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में लागू स्थायी बंदोबस्त औपनिवेशिक भूमि-राजस्व व्यवस्था का महत्वपूर्ण उदाहरण था। इस व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारों से सरकार को दिए जाने वाले भू-राजस्व की राशि स्थायी रूप से निर्धारित की गई।

इस व्यवस्था में जमींदारों को राजस्व-संग्रह के महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हुए, लेकिन निर्धारित राजस्व का भुगतान न कर पाने पर उनकी संपत्ति नीलाम भी की जा सकती थी। इससे भूमि, राजस्व और संपत्ति के अधिकारों का नया ढाँचा विकसित हुआ।

स्थायी बंदोबस्त ने पारंपरिक ग्रामीण संबंधों को कई क्षेत्रों में प्रभावित किया। कुछ जमींदार शक्तिशाली भू-स्वामी के रूप में उभरे, जबकि कुछ अपनी संपत्ति खो बैठे। किसानों पर लगान का दबाव बना रह सकता था और उनके अधिकारों की स्थिति स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग रही।

इस व्यवस्था को सामंतवाद के पूर्ण अंत के रूप में नहीं देखा जा सकता। बल्कि इसने कुछ पुराने भू-स्वामित्व संबंधों को नए औपनिवेशिक कानूनों और बाजार की परिस्थितियों के साथ जोड़ दिया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

13.7 रैयतवाड़ी व्यवस्था

रैयतवाड़ी व्यवस्था मुख्यतः मद्रास और बंबई प्रेसिडेंसी के अनेक क्षेत्रों में विकसित हुई। इसमें सरकार ने अपेक्षाकृत सीधे कृषक या रैयत से भू-राजस्व निर्धारित करने और प्राप्त करने का प्रयास किया।

इस व्यवस्था में जमींदार जैसे मध्यस्थों की भूमिका कुछ क्षेत्रों में कम की गई, लेकिन इससे किसानों पर राजस्व का दबाव समाप्त नहीं हुआ। कृषकों को भूमि पर खेती करने के लिए राजस्व का भुगतान करना पड़ता था और कई परिस्थितियों में ऋणग्रस्तता तथा आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था।

रैयतवाड़ी व्यवस्था ने राजस्व-संग्रह में राज्य की प्रत्यक्ष भूमिका बढ़ाई। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि ग्रामीण समाज में सभी प्रकार के स्थानीय प्रभुत्व समाप्त हो गए। अनेक क्षेत्रों में बड़े कृषक, साहूकार और स्थानीय प्रभावशाली समूह ग्रामीण जीवन को प्रभावित करते रहे।

13.8 महालवाड़ी व्यवस्था

महालवाड़ी व्यवस्था उत्तर-पश्चिमी भारत के अनेक क्षेत्रों में विकसित हुई। इसमें राजस्व निर्धारण के लिए गाँव अथवा महाल को एक महत्त्वपूर्ण इकाई माना गया। राजस्व की जिम्मेदारी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार गाँव के समुदाय, प्रमुखों या संबंधित भू-धारकों पर डाली जा सकती थी।

इस व्यवस्था ने ग्रामीण समुदायों और स्थानीय अभिजात वर्ग की भूमिका को बनाए रखा, लेकिन उन्हें औपनिवेशिक राजस्व प्रशासन के अंतर्गत संगठित किया गया।

इससे स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक शासन ने भारत के सभी क्षेत्रों में एक जैसी भूमि-राजस्व व्यवस्था लागू नहीं की। विभिन्न क्षेत्रों में अलग प्रणालियों के माध्यम से राजस्व प्राप्त किया गया, जिनके परिणाम भी अलग-अलग थे।

13.9 भूमि के अधिकारों का कानूनी पुनर्गठन

औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भूमि और राजस्व से संबंधित अधिकारों को नए कानूनों, अभिलेखों और न्यायिक प्रक्रियाओं के माध्यम से परिभाषित किया गया। इससे भूमि विवादों, लगान, उत्तराधिकार और संपत्ति के अधिकारों से जुड़े मामलों में परिवर्तन आया।

कुछ क्षेत्रों में भूमि के अधिकार अधिक स्पष्ट रूप से दर्ज किए गए, लेकिन इस प्रक्रिया से पारंपरिक सामुदायिक अधिकारों और स्थानीय प्रथाओं को नुकसान भी पहुँचा। जिन समूहों के पास कानूनी दस्तावेज या न्यायालय तक पहुँच नहीं थी, उन्हें अपनी भूमि और संसाधनों की रक्षा करने में कठिनाई हो सकती थी।

इस प्रकार औपनिवेशिक कानूनों ने ग्रामीण समाज में पुराने अधिकार-संबंधों को पूरी तरह समाप्त करने के बजाय कई बार उन्हें नए रूप में स्थापित किया।

13.10 कृषि का वाणिज्यीकरण

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

औपनिवेशिक काल में अनेक क्षेत्रों में कृषि उत्पादन का संबंध बाजार और अंतरराष्ट्रीय व्यापार से अधिक गहराई से जुड़ने लगा। कपास, नील, जूट, अफीम और अन्य नकदी फसलों के उत्पादन को विभिन्न क्षेत्रों में प्रोत्साहन मिला।

कृषि के वाणिज्यीकरण से किसानों को बाजार की कीमतों, ऋण और व्यापारिक माँग पर अधिक निर्भर होना पड़ा। कुछ कृषकों को नए अवसर प्राप्त हुए, जबकि अन्य को ऋणग्रस्तता और आर्थिक असुरक्षा का सामना करना पड़ा।

इस परिवर्तन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पारंपरिक स्वरूप को प्रभावित किया। फिर भी कृषि का वाणिज्यीकरण अपने आप में सामंतवाद का अंत नहीं था, क्योंकि बाजार आधारित उत्पादन के साथ पुराने भू-स्वामी और कृषक संबंध भी बने रह सकते थे।

13.11 रेलवे, संचार और बाजारों का विस्तार

उन्नीसवीं शताब्दी में रेलवे, सड़कों, डाक और तार जैसी संचार सुविधाओं के विस्तार ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों को बड़े बाजारों से जोड़ना शुरू किया। इससे कृषि उत्पादों, कच्चे माल और औद्योगिक वस्तुओं का परिवहन अधिक व्यापक स्तर पर होने लगा।

बाजारों के विस्तार से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नकद लेन-देन और व्यावसायिक संबंधों का महत्त्व बढ़ा। किसानों, व्यापारियों, साहूकारों और भू-स्वामियों के बीच नए प्रकार के आर्थिक संबंध विकसित हुए।

इन परिवर्तनों ने पारंपरिक ग्रामीण आत्मनिर्भरता को प्रभावित किया, लेकिन सामंती या अर्ध-सामंती संबंध अनेक क्षेत्रों में बने रहे। इसलिए आधुनिक परिवहन और बाजार के विकास को सामंती संरचनाओं के परिवर्तन का एक कारण माना जा सकता है, न कि उनके तत्काल अंत का प्रमाण।

13.12 आधुनिक शिक्षा और नए सामाजिक विचार

औपनिवेशिक काल में आधुनिक शिक्षा, मुद्रण, समाचार-पत्रों और सार्वजनिक बहसों के विस्तार से समाज में नए विचारों का प्रसार हुआ। स्वतंत्रता, अधिकार, सामाजिक समानता, प्रतिनिधित्व और सुधार से संबंधित विचारों ने विभिन्न सामाजिक समूहों को प्रभावित किया।

सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलन ने पारंपरिक सामाजिक असमानताओं पर प्रश्न उठाए। किसानों और मजदूरों के आंदोलनों ने भूमि, लगान, ऋण तथा श्रम संबंधों को राजनीतिक बहस का विषय बनाया।

इन परिवर्तनों ने पुराने सामाजिक विशेषाधिकारों की वैधता को चुनौती दी। हालांकि सामाजिक असमानताओं का अंत नहीं हुआ, फिर भी आधुनिक राजनीतिक चेतना ने ग्रामीण शक्ति-संबंधों में परिवर्तन की परिस्थितियाँ तैयार कीं।

13.13 किसान आंदोलनों की भूमिका

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

औपनिवेशिक भारत में किसानों ने लगान, बेदखली, ऋण, बेगार और अन्य शोषणकारी परिस्थितियों के विरुद्ध अनेक आंदोलन किए। विभिन्न क्षेत्रों में इन आंदोलनों के कारण और स्वरूप अलग-अलग थे।

किसान आंदोलनों ने स्थानीय भू-स्वामियों, साहूकारों और औपनिवेशिक प्रशासन की नीतियों को चुनौती दी। कुछ आंदोलनों ने लगान में कमी, बेदखली से सुरक्षा और बेहतर आर्थिक अधिकारों की माँग की।

इन आंदोलनों का प्रभाव क्षेत्रीय स्तर पर अलग-अलग रहा, लेकिन उन्होंने भूमि संबंधों को सार्वजनिक और राजनीतिक प्रश्न बनाया। इससे ग्रामीण समाज में पुराने प्रभुत्व को चुनौती देने की प्रक्रिया को बल मिला।

13.14 स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय गणराज्य ने ग्रामीण असमानता को कम करने और कृषि संबंधों में परिवर्तन लाने के लिए विभिन्न भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाए। जमींदारी उन्मूलन, बिचौलियों की समाप्ति, भू-सीमा कानून और कुछ क्षेत्रों में बटाईदारों के अधिकारों की सुरक्षा इस प्रक्रिया के प्रमुख अंग थे।

जमींदारी उन्मूलन के माध्यम से अनेक राज्यों में राज्य और कृषकों के बीच मध्यस्थ भू-स्वामियों की भूमिका को समाप्त या सीमित करने का प्रयास किया गया। हालांकि कानूनों का क्रियान्वयन विभिन्न राज्यों में अलग-अलग रहा।

कुछ क्षेत्रों में भूमि सुधारों से कृषकों को अधिकार प्राप्त हुए, जबकि अन्य क्षेत्रों में कानूनी कमियों, प्रशासनिक कठिनाइयों और स्थानीय शक्तिशाली समूहों के प्रभाव के कारण परिणाम सीमित रहे।

स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधारों ने पारंपरिक जमींदारी संरचनाओं को कमजोर करने में योगदान दिया, लेकिन इससे ग्रामीण असमानता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। भूमि का असमान वितरण, भूमिहीनता, जाति आधारित भेदभाव और आर्थिक निर्भरता अनेक क्षेत्रों में बनी रही।

13.15 भारतीय सामंतवाद के पतन के संबंध में सावधानी

भारतीय सामंतवाद के पतन का विश्लेषण करते समय यह समझना आवश्यक है कि भारत में यूरोप की तरह एक समान सामंती व्यवस्था और उसका एक निश्चित अंत नहीं था। यहाँ भूमि-अनुदान, राजस्व-संग्रह, स्थानीय भू-स्वामित्व, राजनीतिक अधीनता और कृषकों पर नियंत्रण के विविध रूप मौजूद थे।

दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य ने अनेक क्षेत्रों में स्थानीय शक्तियों को अपने प्रशासन में शामिल किया, जबकि औपनिवेशिक शासन ने भूमि और राजस्व संबंधों को नए कानूनी ढाँचे में पुनर्गठित किया। स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधारों ने जमींदारी जैसी संस्थाओं को कमजोर किया।

इसलिए भारतीय संदर्भ में सामंती संबंधों के पतन को कई ऐतिहासिक चरणों में समझना अधिक उपयुक्त है। इसमें मध्यकालीन राज्य निर्माण, औपनिवेशिक राजस्व नीतियों, आधुनिक बाजारों, किसान आंदोलनों, राष्ट्रीय आंदोलन और स्वतंत्रता के बाद के भूमि सुधारों की अलग-अलग भूमिका रही।

14. यूरोपीय और भारतीय सामंतवाद की तुलनात्मक समीक्षा

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

यूरोपीय और भारतीय सामंतवाद की तुलना से स्पष्ट होता है कि दोनों समाजों में भूमि, कृषि अधिशेष और स्थानीय शक्ति का महत्त्व था, लेकिन उनके ऐतिहासिक विकास, संस्थागत संरचना और राजनीतिक संबंधों में पर्याप्त अंतर था।

14.1 भूमि और आर्थिक शक्ति

यूरोप में सामंती व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण आधार भूमि पर अधिकार तथा उसके बदले सैन्य सेवा देने की परंपरा थी। अनेक क्षेत्रों में भूमि पर नियंत्रण रखने वाले प्रभु कृषकों से लगान और श्रम प्राप्त करते थे।

भारत में भी भूमि-अनुदान, राजस्व अधिकार और स्थानीय भू-स्वामित्व आर्थिक शक्ति के महत्त्वपूर्ण स्रोत थे। लेकिन भूमि के अधिकारों और राजस्व-संग्रह की संस्थाएँ विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग थीं। सभी भूमि-अनुदान निजी स्वामित्व या सामंती जागीर के समान नहीं थे।

14.2 राजनीतिक संबंध

यूरोपीय सामंतवाद में प्रभु और अधीनस्थ के व्यक्तिगत संबंध, निष्ठा तथा सैन्य सेवा का विशेष महत्त्व था। कई क्षेत्रों में स्थानीय सामंतों को पर्याप्त राजनीतिक और न्यायिक अधिकार प्राप्त थे।

भारत में भी अधीनस्थ शासकों, सामंतों और राजाओं के बीच निष्ठा तथा सैन्य सहयोग के संबंध विकसित हुए। लेकिन भारतीय राजनीतिक संरचनाओं में राजस्व प्रशासन, क्षेत्रीय परंपराओं और शाही अधिकारियों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण थी।

14.3 कृषकों की स्थिति

यूरोप के अनेक क्षेत्रों में कृषिदासता सामंती ग्रामीण व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थी। कृषिदासों पर भूमि से जुड़े दायित्व लागू होते थे, हालांकि सभी किसान कृषिदास नहीं थे।

भारत में कृषकों की स्थिति जाति, भूमि अधिकार, क्षेत्रीय कानून, लगान और स्थानीय सामाजिक संरचना के अनुसार अलग-अलग थी। कुछ क्षेत्रों में किसानों पर कठोर नियंत्रण था, लेकिन भारतीय कृषक व्यवस्था को यूरोपीय कृषिदासता के समान मानना उचित नहीं है।

14.4 धार्मिक संस्थाओं की भूमिका

यूरोप में चर्च एक व्यापक धार्मिक संस्था के रूप में भूमि, शिक्षा और राजनीति में प्रभावशाली था। भारत में मंदिरों, मठों और अन्य धार्मिक संस्थाओं ने अनेक क्षेत्रों में आर्थिक तथा सांस्कृतिक भूमिका निभाई।

दोनों समाजों में धार्मिक संस्थाओं को दान और भूमि-अनुदान प्राप्त हो सकते थे। लेकिन उनकी संगठनात्मक संरचना, राजनीतिक अधिकार और सामाजिक भूमिका में महत्त्वपूर्ण अंतर थे।

14.5 पतन की प्रक्रिया

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

यूरोप में सामंतवाद के पतन में नगरों, व्यापार, महामारी, कृषक विद्रोह, केंद्रीकृत राजतंत्र और सैन्य तकनीक के परिवर्तन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत में सामंती संबंधों के परिवर्तन पर क्षेत्रीय राज्य निर्माण, सल्तनत और मुगल प्रशासन, औपनिवेशिक भूमि-राजस्व व्यवस्थाओं, बाजार के विस्तार, किसान आंदोलनों और स्वतंत्रता के बाद के भूमि सुधारों का प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार दोनों क्षेत्रों में भूमि आधारित शक्ति-संबंधों के परिवर्तन की प्रक्रिया अलग-अलग ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित हुई।

15. सामंतवाद के पतन के प्रमुख परिणाम

सामंतवाद के पतन से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने आधुनिक राज्य और आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास की परिस्थितियाँ तैयार कीं। हालांकि इनके परिणाम सभी क्षेत्रों और सामाजिक वर्गों के लिए समान नहीं थे।

15.1 केंद्रीय राजसत्ता का सुदृढ़ीकरण

सामंती शक्ति के कमजोर होने से अनेक क्षेत्रों में राजाओं को अधिक केंद्रीकृत शासन स्थापित करने का अवसर मिला। राजस्व, न्याय, प्रशासन और सेना पर केंद्रीय नियंत्रण बढ़ने लगा।

इससे राज्य की राजनीतिक एकता मजबूत हो सकती थी। हालांकि केंद्रीकृत राजतंत्र कई बार निरंकुश भी था और उसने जनता पर करों का दबाव बढ़ाया। इसलिए केंद्रीय सत्ता का विकास अपने आप में लोकतांत्रिक शासन की स्थापना नहीं था।

15.2 आधुनिक राज्य के विकास की पृष्ठभूमि

केंद्रीकृत प्रशासन, नियमित कर-व्यवस्था, राजकीय न्यायालय और संगठित सेना के विकास ने आधुनिक राज्य के निर्माण के लिए आधार तैयार किया। बाद के काल में प्रतिनिधि संस्थाओं, नागरिक अधिकारों और संवैधानिक शासन का विकास हुआ।

आधुनिक राज्य का निर्माण एक लंबी प्रक्रिया थी, जिसमें सामंती व्यवस्था के पतन के साथ-साथ व्यापार, युद्ध, प्रशासन और राजनीतिक विचारों ने योगदान दिया।

15.3 नगरों और व्यापार का विस्तार

सामंती नियंत्रण में कमी और व्यापार के विस्तार से अनेक नगरों की आर्थिक तथा सामाजिक भूमिका बढ़ी। नगर उत्पादन, विनिमय, शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण केंद्र बने।

व्यापारियों और कारीगरों के विकास ने आर्थिक शक्ति के नए स्रोत उत्पन्न किए। इससे भूमि पर आधारित पारंपरिक अभिजात वर्ग के साथ नए सामाजिक समूह भी प्रभावशाली हुए।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

15.4 कृषकों की स्थिति में परिवर्तन

यूरोप के कुछ क्षेत्रों में सामंती श्रम दायित्वों में कमी आई और किसानों की स्वतंत्रता बढ़ी। श्रम की कमी तथा बाजार के विकास से कुछ कृषकों को बेहतर आर्थिक अवसर प्राप्त हुए।

हालाँकि सभी किसानों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ। कुछ क्षेत्रों में भूमि पर बड़े भू-स्वामियों का नियंत्रण बना रहा और किसानों को नए प्रकार के आर्थिक दबावों का सामना करना पड़ा। इसलिए सामंतवाद के पतन से कृषकों की मुक्ति एक समान या तत्काल प्रक्रिया नहीं थी।

15.5 सामाजिक वर्गों में परिवर्तन

व्यापार, शिल्प, वित्त और प्रशासन के विकास से नए सामाजिक समूहों का महत्त्व बढ़ा। आर्थिक सफलता और व्यावसायिक गतिविधियाँ सामाजिक प्रतिष्ठा के नए स्रोत बने।

इससे सामाजिक गतिशीलता की संभावनाएँ बढ़ीं, हालांकि जन्म, संपत्ति और राजनीतिक प्रभाव पर आधारित असमानताएँ बनी रहीं। आधुनिक समाज में वर्ग संरचना का विकास सामंती समाज की तुलना में अधिक जटिल आर्थिक संबंधों से जुड़ने लगा।

15.6 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास

सामंतवाद के पतन की प्रक्रिया के साथ बाजार, व्यापार, पूँजी निवेश और वेतनभोगी श्रम के संबंधों का विस्तार हुआ। यूरोप के कुछ क्षेत्रों में इन परिवर्तनों ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास को प्रोत्साहित किया।

लेकिन पूँजीवाद का विकास केवल सामंतवाद के कमजोर होने से नहीं हुआ। समुद्री व्यापार, औपनिवेशिक विस्तार, वित्तीय संस्थाओं, तकनीकी परिवर्तन और औद्योगिक क्रांति ने भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

15.7 प्रशासनिक और न्यायिक एकरूपता

केंद्रीय राजसत्ता के विस्तार से अनेक क्षेत्रों में प्रशासनिक प्रक्रियाओं और न्यायिक संस्थाओं को अधिक संगठित करने के प्रयास हुए। स्थानीय सामंतों की स्वतंत्र न्यायिक शक्ति पर नियंत्रण बढ़ा।

बाद में लिखित कानूनों, प्रशासनिक अभिलेखों और आधुनिक न्यायिक संस्थाओं का विकास हुआ। फिर भी विभिन्न देशों में इन परिवर्तनों का स्वरूप अलग-अलग था।

15.8 धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन

मध्यकाल के उत्तरार्द्ध और प्रारंभिक आधुनिक काल में यूरोप में पुनर्जागरण, धर्म-सुधार और वैज्ञानिक चिंतन के विकास ने सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। धार्मिक संस्थाओं की भूमिका में परिवर्तन आया और शिक्षा के नए केंद्र विकसित हुए।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

इन परिवर्तनों ने आधुनिक बौद्धिक जीवन के विकास में योगदान दिया, लेकिन धार्मिक विश्वासों और संस्थाओं का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ। कई धार्मिक संस्थाएँ आधुनिक काल में भी सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनी रहीं।

15.9 ग्रामीण अर्थव्यवस्था का बाजार से जुड़ाव

सामंतवाद के पतन की प्रक्रिया में ग्रामीण उत्पादन का बाजार से संबंध कई क्षेत्रों में मजबूत हुआ। कृषि उपज की बिक्री, नकद लगान और ऋण के विस्तार से ग्रामीण अर्थव्यवस्था अधिक व्यापक व्यापारिक तंत्र का हिस्सा बनने लगी।

इससे किसानों के लिए नए अवसर उत्पन्न हुए, लेकिन बाजार की अनिश्चितता और ऋणग्रस्तता का जोखिम भी बढ़ा। ग्रामीण समाज में आर्थिक निर्भरता के पुराने रूप कई बार नए रूपों में बने रहे।

15.10 भारत में भूमि संबंधों पर दीर्घकालीन प्रभाव

भारत में सामंती संबंधों के परिवर्तन ने भूमि-अधिकारों, राजस्व-संग्रह और ग्रामीण सत्ता की संरचना को प्रभावित किया। औपनिवेशिक भूमि-राजस्व नीतियों ने कई क्षेत्रों में नए भू-स्वामियों और मध्यस्थों को शक्तिशाली बनाया, जबकि स्वतंत्रता के बाद जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधारों ने कुछ पारंपरिक संस्थाओं को कमजोर किया।

इन परिवर्तनों के बावजूद भूमि का असमान वितरण, भूमिहीनता और ग्रामीण आर्थिक असमानता अनेक क्षेत्रों में बनी रही। इसलिए सामंती संबंधों के क्षरण को सामाजिक न्याय की पूर्ण स्थापना के समान नहीं माना जा सकता।

16. सामंतवाद के पतन के कारणों का समग्र विश्लेषण

सामंतवाद के पतन का समग्र विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि यह किसी एक राजनीतिक घटना, युद्ध या आर्थिक संकट का परिणाम नहीं था। इसके पीछे अनेक प्रक्रियाएँ लंबे समय तक एक-दूसरे को प्रभावित करती रहीं। यूरोप में भूमि पर आधारित आर्थिक शक्ति, स्थानीय सामंतों की राजनीतिक स्वतंत्रता, कृषकों पर नियंत्रण और सैन्य सेवा से जुड़े संबंध धीरे-धीरे परिवर्तित हुए। इन परिवर्तनों ने मध्यकालीन व्यवस्था के स्थान पर नई राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं के विकास की परिस्थितियाँ तैयार कीं।

16.1 आर्थिक कारणों का महत्त्व

आर्थिक परिवर्तन सामंतवाद के पतन का प्रमुख आधार थे। व्यापार-वाणिज्य के विस्तार, नगरों के विकास, मुद्रा के बढ़ते प्रयोग और बाजार आधारित उत्पादन ने भूमि पर आधारित पारंपरिक अर्थव्यवस्था को चुनौती दी। व्यापारियों, साहूकारों और कारीगरों की भूमिका बढ़ने से आर्थिक शक्ति के नए स्रोत विकसित हुए।

इन परिवर्तनों के कारण सामंतों का आर्थिक प्रभुत्व कई क्षेत्रों में कमजोर हुआ। हालांकि सामंतवाद और बाजार अर्थव्यवस्था के बीच संबंध हमेशा विरोधपूर्ण नहीं थे। अनेक सामंत बाजारों से लाभ प्राप्त करते रहे

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

और कुछ ने अपनी आर्थिक गतिविधियों में परिवर्तन करके नई परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित किया।

16.2 राजनीतिक कारणों का महत्त्व

केंद्रीकृत राजतंत्र का उदय सामंतवाद के पतन की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया थी। राजाओं ने कर-संग्रह, प्रशासन, न्याय और सैन्य संगठन को अधिक व्यवस्थित किया। इससे स्थानीय सामंतों के स्वतंत्र अधिकारों पर नियंत्रण बढ़ा।

राजसत्ता को नियमित आय और संगठित सेना प्राप्त होने से वह सामंतों के सहयोग पर पहले की तुलना में कम निर्भर रह सकती थी। इस प्रकार राजनीतिक शक्ति का स्थानीय प्रभुओं से केंद्रीय राज्य की ओर स्थानांतरण सामंतवाद के क्षरण का महत्त्वपूर्ण आधार बना।

16.3 सामाजिक कारणों का महत्त्व

कृषक असंतोष, श्रम की बदलती परिस्थितियाँ, महामारी और जनसंख्या में परिवर्तन ने सामंती सामाजिक संबंधों को प्रभावित किया। विशेष रूप से चौदहवीं शताब्दी में यूरोप में फैली ब्लैक डेथ महामारी के बाद अनेक क्षेत्रों में श्रम की कमी ने किसानों और मजदूरों की स्थिति को बदल दिया।

नगरों तथा व्यापार के विकास ने लोगों को कृषि आधारित जीवन के अतिरिक्त अन्य आजीविकाओं के अवसर प्रदान किए। इससे सामाजिक गतिशीलता की संभावनाएँ बढ़ीं और पारंपरिक सामंती निर्भरता को चुनौती मिली।

16.4 सैन्य कारणों का महत्त्व

सामंतों की सैन्य शक्ति सामंती व्यवस्था का एक प्रमुख आधार थी। लेकिन नियमित सेना, वेतनभोगी सैनिकों, पैदल सेना, तोपों और अन्य सैन्य तकनीकों के विकास ने इस व्यवस्था को प्रभावित किया।

जब केंद्रीय शासक स्वतंत्र रूप से सेना संगठित करने लगे, तब सामंतों की सैन्य सहायता पर उनकी निर्भरता कम होने लगी। इस परिवर्तन ने राजसत्ता को स्थानीय सामंतों पर नियंत्रण बढ़ाने का अवसर दिया।

16.5 वैचारिक और सांस्कृतिक कारणों का महत्त्व

पुनर्जागरण, मानवतावाद, धार्मिक सुधार और शिक्षा के विस्तार ने यूरोपीय समाज के बौद्धिक जीवन को प्रभावित किया। इन परिवर्तनों ने सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के बारे में नए प्रश्न उठाए।

फिर भी सामंतवाद के पतन को केवल वैचारिक परिवर्तन का परिणाम नहीं माना जा सकता। आर्थिक संसाधनों, राजनीतिक संस्थाओं, युद्धों और सामाजिक संबंधों में हुए परिवर्तन भी उतने ही महत्त्वपूर्ण थे।

16.6 महामारी और जनसंख्या परिवर्तन का महत्त्व

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

ब्लैक डेथ महामारी ने यूरोप की जनसंख्या, कृषि उत्पादन और श्रम बाजार को गहराई से प्रभावित किया। श्रमिकों की कमी के कारण कुछ क्षेत्रों में मजदूरी बढ़ी और कृषकों को अधिक अनुकूल शर्तें प्राप्त करने का अवसर मिला।

इसके बावजूद महामारी का प्रभाव पूरे यूरोप में समान नहीं था। कुछ क्षेत्रों में किसानों की स्थिति बेहतर हुई, जबकि अन्य में भू-स्वामियों ने श्रम पर नियंत्रण बनाए रखा। इसलिए महामारी को सामंतवाद के पतन का एक महत्त्वपूर्ण प्रेरक कारण माना जाना चाहिए, न कि उसका एकमात्र कारण।

16.7 भारतीय संदर्भ में ऐतिहासिक विविधता

भारत में सामंती संबंधों के परिवर्तन की प्रक्रिया अलग-अलग राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित हुई। प्रारंभिक मध्यकालीन भूमि-अनुदानों, स्थानीय सामंतों, दिल्ली सल्तनत की इक्ता व्यवस्था, मुगल मनसबदारी-जागीरदारी व्यवस्था, औपनिवेशिक भूमि-राजस्व नीतियों तथा स्वतंत्रता के बाद के भूमि सुधारों ने विभिन्न रूपों में भूमि और सत्ता के संबंधों को बदला।

भारतीय संदर्भ में किसी एक घटना को सामंतवाद के पूर्ण पतन का कारण बताना उचित नहीं है। यहाँ क्षेत्रीय विविधता, कृषि संबंधों, जाति संरचना, राजस्व व्यवस्था और स्थानीय भू-स्वामियों की भूमिका को ध्यान में रखना आवश्यक है।

17. सामंतवाद के पतन और आधुनिकता के उदय के बीच संबंध

सामंतवाद के पतन ने आधुनिक यूरोपीय समाज के निर्माण के लिए परिस्थितियाँ तैयार कीं। लेकिन आधुनिकता का उदय सामंतवाद के अंत का तत्काल और स्वतःस्फूर्त परिणाम नहीं था। इसके लिए अनेक अतिरिक्त आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक और सामाजिक परिवर्तन आवश्यक थे।

17.1 आधुनिक राज्य का विकास

सामंती विकेंद्रीकरण की तुलना में आधुनिक राज्य अधिक संगठित प्रशासन, नियमित राजस्व, निर्धारित सीमाओं और केंद्रीकृत राजनीतिक संस्थाओं पर आधारित होने लगा। समय के साथ इन संस्थाओं का विकास विभिन्न यूरोपीय राज्यों में अलग-अलग रूपों में हुआ।

आधुनिक राज्य के निर्माण में सामंतवाद का क्षरण महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि इससे स्थानीय प्रभुओं की स्वतंत्र सत्ता को चुनौती मिली। हालांकि आधुनिक राज्य के विकास में युद्ध, राजवंशीय राजनीति, कानून और प्रशासनिक सुधारों की भूमिका भी निर्णायक थी।

17.2 बाजार और पूँजी का विस्तार

सामंती संबंधों के परिवर्तन के साथ बाजार और व्यापार का विस्तार हुआ। वस्तुओं के उत्पादन, वित्तीय लेन-देन और पूँजी निवेश के महत्त्व में वृद्धि हुई। इससे आर्थिक गतिविधियों का स्वरूप अधिक जटिल हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

बाद के समय में औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन की तकनीक, श्रम संबंधों और आर्थिक संगठन को गहराई से बदल दिया। इस प्रकार सामंतवाद के पतन और औद्योगिक समाज के उदय के बीच संबंध तो था, लेकिन दोनों प्रक्रियाओं के बीच कई ऐतिहासिक चरण मौजूद थे।

17.3 आधुनिक सामाजिक संरचना

आधुनिक समाज में व्यक्ति की स्थिति केवल भूमि, जन्म और वंश से निर्धारित नहीं होती। शिक्षा, व्यवसाय, संपत्ति, राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक गतिशीलता भी महत्त्वपूर्ण हो गए।

हालाँकि आधुनिक समाज में आर्थिक असमानता समाप्त नहीं हुई। सामंती विशेषाधिकारों के स्थान पर अनेक क्षेत्रों में संपत्ति और पूँजी पर आधारित असमानताएँ विकसित हुईं। इसलिए सामंतवाद का पतन सामाजिक समानता की पूर्ण स्थापना के समान नहीं था।

17.4 आधुनिक विचारों का विकास

आधुनिक काल में नागरिक अधिकारों, कानून के समक्ष समानता, प्रतिनिधि शासन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचारों का विकास हुआ। इन विचारों ने सामंती विशेषाधिकारों को चुनौती देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

लेकिन इन विचारों का व्यापक राजनीतिक प्रभाव मुख्यतः बाद के काल में विकसित हुआ। इसलिए आधुनिक लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों को सामंतवाद के पतन के तत्काल परिणाम के बजाय एक दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा समझना चाहिए।

18. इतिहासकारों के दृष्टिकोण से सामंतवाद

सामंतवाद के अध्ययन में इतिहासकारों के दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके माध्यम से यह समझने में सहायता मिलती है कि सामंती व्यवस्था की प्रकृति, उसके विकास और पतन को किस प्रकार परिभाषित किया गया है।

18.1 कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण

कार्ल मार्क्स ने इतिहास के अध्ययन में उत्पादन संबंधों, वर्ग संघर्ष और आर्थिक संरचना के महत्त्व पर बल दिया। उनकी ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि के अनुसार किसी समाज की आर्थिक संरचना और उत्पादन संबंध उसके सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

मार्क्सवादी इतिहासलेखन में सामंतवाद को ऐसी उत्पादन व्यवस्था के रूप में समझा जाता है जिसमें कृषक प्रत्यक्ष उत्पादक होते हैं और सामंती प्रभु भूमि तथा सामाजिक अधिकारों के माध्यम से कृषि अधिशेष पर नियंत्रण रखते हैं।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

इस दृष्टिकोण में सामंतवाद के पतन को उत्पादन संबंधों में परिवर्तन, व्यापार के विस्तार, वर्ग संघर्ष और पूँजीवादी संबंधों के विकास से जोड़ा जाता है। हालांकि विभिन्न मार्क्सवादी इतिहासकारों ने इन परिवर्तनों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से की है।

18.2 मार्क ब्लॉक का योगदान

फ्रांसीसी इतिहासकार मार्क ब्लॉक की पुस्तक *Feudal Society* सामंती समाज के अध्ययन की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। उन्होंने सामंती समाज को केवल राजनीतिक संस्थाओं के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों, मानसिकताओं, भूमि, संरक्षण और निर्भरता की व्यापक संरचना के रूप में समझने का प्रयास किया।

ब्लॉक का दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि सामंतवाद को समझने के लिए केवल राजाओं और युद्धों का इतिहास पर्याप्त नहीं है। ग्रामीण समाज, सामाजिक संबंधों, आर्थिक जीवन और स्थानीय परंपराओं का अध्ययन भी आवश्यक है।

18.3 फ्रांस्वा-लुई गान्शोफ का योगदान

इतिहासकार फ्रांस्वा-लुई गान्शोफ ने यूरोपीय सामंतवाद की कानूनी और राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी पुस्तक *Feudalism* में प्रभु-अधीनस्थ संबंधों, जागीर और सामंती दायित्वों की व्याख्या की गई है।

उनका दृष्टिकोण सामंतवाद की संस्थागत संरचना को समझने में उपयोगी है। इससे स्पष्ट होता है कि यूरोपीय सामंतवाद में भूमि, निष्ठा और सैन्य सेवा से जुड़े संबंधों का विशिष्ट महत्त्व था।

18.4 डी. डी. कोसांबी का दृष्टिकोण

भारतीय इतिहासकार डी. डी. कोसांबी ने भारतीय इतिहास की व्याख्या में सामाजिक संरचना, उत्पादन संबंधों, तकनीकी परिवर्तन और भौतिक परिस्थितियों के महत्त्व पर बल दिया। उन्होंने भारतीय समाज को स्थिर और अपरिवर्तनीय मानने के बजाय ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में समझा।

कोसांबी का दृष्टिकोण भारतीय सामंतवाद के अध्ययन में उपयोगी है, क्योंकि यह भूमि, उत्पादन, सामाजिक समूहों और स्थानीय राजनीतिक संरचनाओं के बीच संबंधों का विश्लेषण करने की प्रेरणा देता है।

18.5 आर. एस. शर्मा का दृष्टिकोण

आर. एस. शर्मा भारतीय सामंतवाद की अवधारणा के प्रमुख इतिहासकारों में गिने जाते हैं। उन्होंने प्रारंभिक मध्यकालीन भारत में भूमि-अनुदानों, राजस्व अधिकारों, स्थानीय शक्तियों और कृषकों की स्थिति का विश्लेषण किया।

उनके अनुसार कुछ क्षेत्रों में भूमि-अनुदानों और प्रशासनिक अधिकारों के हस्तांतरण से राजनीतिक विकेंद्रीकरण तथा स्थानीय प्रभुत्व के विकास को बल मिला। उन्होंने इन परिवर्तनों को भारतीय सामंतवाद की बहस के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण माना।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

हालाँकि भारतीय सामंतवाद के स्वरूप और उसकी सीमा को लेकर इतिहासकारों में मतभेद हैं। इसलिए आर. एस. शर्मा के दृष्टिकोण के साथ अन्य इतिहासकारों की व्याख्याओं और क्षेत्रीय ऐतिहासिक साक्ष्यों का अध्ययन भी आवश्यक है।

19. सामंतवाद के अध्ययन में प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत

सामंतवाद के विकास, संरचना और पतन का अध्ययन करने के लिए विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग किया जाता है। इन स्रोतों की सहायता से भूमि संबंधों, राजनीतिक अधिकारों, कृषि उत्पादन और सामाजिक संरचना की जानकारी प्राप्त होती है।

19.1 अभिलेख

अभिलेख सामंतवाद के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें राजकीय आदेशों, भूमि-अनुदानों, उपाधियों, प्रशासनिक पदों और राजनीतिक संबंधों की जानकारी मिल सकती है।

भारत में ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों के माध्यम से भूमि-अनुदानों, राजस्व अधिकारों और स्थानीय अधिकारियों के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है। हालांकि किसी अभिलेख में दर्ज दावे को उसके ऐतिहासिक संदर्भ और अन्य स्रोतों के साथ मिलाकर समझना आवश्यक है।

19.2 साहित्यिक स्रोत

मध्यकालीन साहित्य, इतिहास ग्रंथ, धार्मिक रचनाएँ और प्रशासनिक विवरण सामंती समाज के अध्ययन में उपयोगी हैं। इनसे सामाजिक आदर्शों, शासकों की छवि, धार्मिक मान्यताओं और राजनीतिक संबंधों की जानकारी मिलती है।

लेकिन साहित्यिक स्रोतों में आदर्शों और वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों के बीच अंतर हो सकता है। इसलिए उनका आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

19.3 राजस्व अभिलेख

भूमि और राजस्व से संबंधित अभिलेखों के माध्यम से लगान, कर, भूमि अधिकार और कृषि उत्पादन की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। भारत में मुगलकालीन राजस्व संबंधी विवरण, औपनिवेशिक बंदोबस्त अभिलेख और भूमि सर्वेक्षण इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

इन अभिलेखों का अध्ययन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि राजस्व प्रशासन द्वारा तैयार किए गए आँकड़े प्रशासनिक उद्देश्यों से प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से उनका मिलान करना उपयोगी होता है।

19.4 पुरातात्त्विक स्रोत

दुर्गों, ग्रामीण बस्तियों, मंदिरों, मठों, कृषि उपकरणों और सिंचाई संरचनाओं के पुरातात्त्विक अध्ययन से सामंती समाज की भौतिक संरचना समझने में सहायता मिलती है।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

इन स्रोतों से यह पता लगाया जा सकता है कि स्थानीय सत्ता के केंद्र कहाँ विकसित हुए, कृषि उत्पादन के साधन कैसे थे और बस्तियों का आर्थिक जीवन किस प्रकार संगठित था।

19.5 विदेशी यात्रियों के विवरण

विदेशी यात्रियों के विवरण व्यापार, नगरों, राजदरबारों, सामाजिक जीवन और प्रशासन के अध्ययन में उपयोगी हैं। भारत के संदर्भ में विभिन्न कालों के यात्रियों के वृत्तांत ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करते हैं।

हालाँकि यात्रियों के विवरण उनकी व्यक्तिगत दृष्टि, भाषा, उद्देश्य और अनुभवों से प्रभावित होते थे। इसलिए उन्हें स्वतंत्र और अंतिम प्रमाण मानने के बजाय अन्य स्रोतों के साथ मिलाकर उपयोग करना चाहिए।

20. निष्कर्ष

सामंतवाद मध्यकालीन इतिहास की एक जटिल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था थी। इसका आधार भूमि पर नियंत्रण, कृषि अधिशेष का हस्तांतरण, स्थानीय प्रभुओं की शक्ति, सैन्य सेवा और सामाजिक निर्भरता के संबंध थे। यूरोप में सामंतवाद का विकास पश्चिमी रोमन साम्राज्य के विघटन, राजनीतिक अस्थिरता, सुरक्षा की आवश्यकता, भूमि आधारित अर्थव्यवस्था और प्रभु-अधीनस्थ संबंधों के क्रमिक विकास के परिणामस्वरूप हुआ। भारत में भूमि-अनुदानों, स्थानीय सामंतों, राजस्व अधिकारों और क्षेत्रीय राजनीतिक संरचनाओं ने कुछ क्षेत्रों में समानताएँ उत्पन्न कीं, लेकिन भारतीय सामंतवाद का ऐतिहासिक स्वरूप यूरोपीय व्यवस्था से भिन्न था।

सामंतवाद के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि यह केवल राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण तक सीमित नहीं था। इसका प्रभाव कृषि उत्पादन, सामाजिक वर्गीकरण, धार्मिक संस्थाओं, स्थानीय प्रशासन, न्याय व्यवस्था, सैन्य संगठन और सांस्कृतिक जीवन पर भी पड़ा। सामंतवादी समाज में भूमि आर्थिक शक्ति का प्रमुख आधार थी, लेकिन उसके साथ श्रम, प्रतिष्ठा, संरक्षण और राजनीतिक अधिकारों के संबंध भी जुड़े हुए थे।

सामंतवाद के पतन की प्रक्रिया अनेक शताब्दियों तक चलती रही। यूरोप में व्यापार-वाणिज्य के विस्तार, नगरों के विकास, मुद्रा अर्थव्यवस्था, कृषक विद्रोह, ब्लैक डेथ महामारी, सैन्य तकनीक में परिवर्तन और केंद्रीकृत राजतंत्र के उदय ने सामंती व्यवस्था को कमजोर किया। पुनर्जागरण, शिक्षा के विस्तार और नए बौद्धिक दृष्टिकोणों ने भी व्यापक सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार की। इन प्रक्रियाओं ने स्थानीय सामंतों के आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभुत्व को चुनौती दी और आधुनिक राज्य तथा बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के विकास की परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं।

भारत में सामंती संबंधों का परिवर्तन एक अलग ऐतिहासिक मार्ग से हुआ। दिल्ली सल्तनत की इक्ता व्यवस्था, मुगलकालीन मनसबदारी-जागीरदारी प्रणाली, औपनिवेशिक भूमि-राजस्व व्यवस्थाओं, कृषि के वाणिज्यीकरण और स्वतंत्रता के बाद के भूमि सुधारों ने विभिन्न क्षेत्रों में भूमि तथा सत्ता के संबंधों को प्रभावित किया। फिर भी इन परिवर्तनों को भारतीय सामंतवाद के एक निश्चित और सर्वव्यापी अंत के रूप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि क्षेत्रीय विविधता और स्थानीय सामाजिक संरचनाएँ लंबे समय तक प्रभावशाली बनी रहीं।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

अंततः यह कहा जा सकता है कि **सामंतवाद का पतन किसी एक घटना का परिणाम न होकर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सैन्य और वैचारिक परिवर्तनों की संयुक्त ऐतिहासिक प्रक्रिया था।** इस प्रक्रिया ने भूमि पर आधारित पारंपरिक प्रभुत्व को चुनौती दी, राजसत्ता के केंद्रीकरण को प्रोत्साहित किया और आधुनिक आर्थिक तथा सामाजिक संस्थाओं के विकास की परिस्थितियाँ तैयार कीं। फिर भी सामंतवाद के पतन का अर्थ शोषण, असमानता और सामाजिक निर्भरता का पूर्ण अंत नहीं था। अनेक पुराने संबंध नए रूपों में बने रहे और आधुनिक समाज में भी आर्थिक तथा सामाजिक असमानताएँ विद्यमान रहीं।

इस प्रकार सामंतवाद का अध्ययन न केवल मध्यकालीन समाज को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है, बल्कि आधुनिक राज्य, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, भूमि सुधार और सामाजिक परिवर्तन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए भी आवश्यक है।

सामंतवाद के पतन के प्रमुख कारण

1. व्यापार-वाणिज्य और नगरों का विकास।
2. मुद्रा अर्थव्यवस्था का विस्तार।
3. कृषि उत्पादन और श्रम संबंधों में परिवर्तन।
4. सामंतों के आपसी संघर्ष और युद्ध।
5. केंद्रीकृत राजतंत्र का उदय।
6. स्थायी सेना और नई सैन्य तकनीकों का विकास।
7. कृषक विद्रोह और सामंती शोषण के विरुद्ध असंतोष।
8. ब्लैक डेथ महामारी और जनसंख्या में परिवर्तन।
9. चर्च की राजनीतिक शक्ति में परिवर्तन।
10. पुनर्जागरण और बौद्धिक परिवर्तन।
11. व्यापारिक वर्ग तथा पूँजीवादी संबंधों का विकास।
12. आधुनिक प्रशासन और राज्य संस्थाओं का विस्तार।

महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक निष्कर्ष: यूरोपीय सामंतवाद का पतन मुख्यतः मध्यकाल के उत्तरार्द्ध से प्रारंभिक आधुनिक काल तक चलने वाली बहुआयामी प्रक्रिया थी। भारतीय सामंती संबंधों का परिवर्तन अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय पर हुआ; इसलिए दोनों के पतन को एक समान ऐतिहासिक प्रक्रिया नहीं माना जाना चाहिए।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

आधुनिक युग का आगमन : पुनर्जागरण, धर्म-सुधार आंदोलन एवं प्रति-सुधार आंदोलन

1. प्रस्तावना

यूरोपीय इतिहास में आधुनिक युग का आगमन एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन था, जिसने मध्यकालीन समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म, साहित्य, कला, विज्ञान और दर्शन को गहराई से प्रभावित किया। मध्यकालीन यूरोप में धार्मिक संस्थाओं, सामंती व्यवस्था, कृषि आधारित अर्थव्यवस्था और परंपरागत सामाजिक मान्यताओं का व्यापक प्रभाव था। व्यक्ति के जीवन, शिक्षा, ज्ञान और सामाजिक व्यवहार पर धर्म का विशेष प्रभाव दिखाई देता था। धीरे-धीरे व्यापार-वाणिज्य के विस्तार, नगरों के विकास, नए व्यापारिक वर्ग के उदय, भौगोलिक खोजों, वैज्ञानिक जिज्ञासा और बौद्धिक गतिविधियों ने यूरोपीय समाज में परिवर्तन की परिस्थितियाँ तैयार कीं।

आधुनिक युग का आगमन किसी एक घटना का परिणाम नहीं था, बल्कि यह कई शताब्दियों तक चलने वाली ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया में **पुनर्जागरण (Renaissance), धर्म-सुधार आंदोलन (Reformation) और प्रति-सुधार आंदोलन (Counter-Reformation)** ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुनर्जागरण ने मानव की बौद्धिक क्षमताओं, तर्क, कला, साहित्य और प्राचीन ज्ञान के अध्ययन को नई प्रतिष्ठा प्रदान की। धर्म-सुधार आंदोलन ने रोमन कैथोलिक चर्च की कुछ धार्मिक मान्यताओं, संस्थागत व्यवस्थाओं और प्रथाओं को चुनौती दी तथा यूरोप में प्रोटेस्टेंट ईसाई परंपराओं के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इसके प्रत्युत्तर में कैथोलिक चर्च ने अपने संगठन, शिक्षा, धार्मिक अनुशासन और प्रचार व्यवस्था में सुधार किए, जिन्हें प्रति-सुधार आंदोलन के अंतर्गत समझा जाता है।

इन तीनों आंदोलनों का स्वरूप एक-दूसरे से अलग था, लेकिन इनके बीच ऐतिहासिक संबंध भी थे। पुनर्जागरण ने आलोचनात्मक अध्ययन और बौद्धिक जिज्ञासा को प्रोत्साहित किया। धर्म-सुधार आंदोलन ने धार्मिक अधिकार और व्यक्ति की आस्था से संबंधित प्रश्नों को सार्वजनिक बहस का विषय बनाया। प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक चर्च को आंतरिक सुधार करने और यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी धार्मिक स्थिति को पुनर्गठित करने के लिए प्रेरित किया।

इन आंदोलनों के प्रभाव से यूरोप में शिक्षा, साहित्य, कला, धार्मिक संस्थाओं, राजनीतिक विचारों और सामाजिक जीवन में परिवर्तन आए। इनसे आधुनिक व्यक्तिवाद, मानवतावाद, आलोचनात्मक चिंतन और धार्मिक विविधता के विकास को बल मिला। फिर भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आधुनिक युग का निर्माण केवल इन आंदोलनों से नहीं हुआ। व्यापारिक विस्तार, सामंती संबंधों में परिवर्तन, केंद्रीकृत राज्यों का विकास, समुद्री यात्राएँ, वैज्ञानिक क्रांति और औद्योगिक परिवर्तन भी इसके महत्त्वपूर्ण घटक थे।

इस प्रकार पुनर्जागरण, धर्म-सुधार और प्रति-सुधार आंदोलनों का अध्ययन आधुनिक यूरोप के उदय तथा मध्यकालीन व्यवस्था से आधुनिक समाज की ओर हुए संक्रमण को समझने के लिए आवश्यक है।

भाग–1 : आधुनिक युग का आगमन और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Dr. Rajesh Mohan Nautiyal

2. आधुनिक युग का अर्थ एवं अवधारणा

आधुनिक युग यूरोपीय इतिहास का वह व्यापक कालखंड है जिसमें मध्यकालीन संस्थाओं, सामाजिक संबंधों, धार्मिक अधिकारों और ज्ञान संबंधी मान्यताओं में परिवर्तन होने लगा तथा आधुनिक राज्य, बाजार अर्थव्यवस्था, वैज्ञानिक चिंतन और नए बौद्धिक दृष्टिकोण विकसित हुए।

इतिहासकार सामान्यतः यूरोप में चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी के बीच होने वाले अनेक परिवर्तनों को आधुनिक युग के प्रारंभिक विकास से जोड़ते हैं। हालांकि आधुनिक युग की शुरुआत की कोई एक सर्वमान्य तिथि नहीं है। कुछ इतिहासकार पुनर्जागरण को इसका प्रमुख संकेतक मानते हैं, जबकि अन्य धर्म-सुधार, भौगोलिक खोजों, केंद्रीकृत राज्यों के उदय और वैज्ञानिक परिवर्तन पर विशेष बल देते हैं।

आधुनिक युग की अवधारणा को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

2.1 मध्यकालीन व्यवस्था से परिवर्तन

मध्यकालीन यूरोप में सामंती संबंधों, स्थानीय प्रभुओं और चर्च का व्यापक प्रभाव था। आधुनिक युग के आगमन के साथ इन संस्थाओं की भूमिका में परिवर्तन होने लगा। अनेक क्षेत्रों में केंद्रीय राजसत्ता मजबूत हुई, व्यापारिक गतिविधियाँ बढ़ीं और नगरों का महत्व विस्तृत हुआ।

यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ। अनेक मध्यकालीन संस्थाएँ आधुनिक युग में भी बनी रहीं। इसलिए आधुनिक युग को मध्यकाल से पूर्णतः विच्छिन्न अवस्था के बजाय निरंतरता और परिवर्तन की संयुक्त प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उचित है।

2.2 मानव और विवेक का बढ़ता महत्व

पुनर्जागरण के दौरान मनुष्य की क्षमताओं, रचनात्मकता, शिक्षा और बौद्धिक स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया गया। प्राचीन यूनानी तथा रोमन साहित्य के अध्ययन से मानव जीवन, राजनीति, नैतिकता और कला के प्रति नए दृष्टिकोण विकसित हुए।

इससे व्यक्ति के अनुभव, विवेक और बौद्धिक क्षमता को अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। हालांकि पुनर्जागरण के विद्वान धार्मिक आस्था से पूर्णतः विमुख नहीं थे। अनेक मानवतावादी विद्वान ईसाई धर्म, शास्त्रीय साहित्य और नैतिक चिंतन के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते थे।

2.3 ज्ञान और शिक्षा का विस्तार

मुद्रण तकनीक के विकास ने पुस्तकों के उत्पादन और विचारों के प्रसार को गति दी। विश्वविद्यालयों, विद्यालयों और विद्वानों के नेटवर्क के माध्यम से ज्ञान का आदान-प्रदान बढ़ा।

लैटिन के साथ-साथ स्थानीय भाषाओं में साहित्य और धार्मिक ग्रंथों की उपलब्धता ने व्यापक पाठक समुदाय के विकास में सहायता की। इससे धार्मिक तथा बौद्धिक विचारों पर बहस के नए अवसर उत्पन्न हुए।

2.4 धार्मिक संस्थाओं की भूमिका में परिवर्तन

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

मध्यकालीन यूरोप में रोमन कैथोलिक चर्च एक प्रमुख धार्मिक और सामाजिक संस्था था। धर्म-सुधार आंदोलन ने चर्च के कुछ सिद्धांतों, धार्मिक प्रथाओं और अधिकार संबंधी दावों पर प्रश्न उठाए।

इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी ईसाई जगत में धार्मिक विभाजन विकसित हुआ। कैथोलिक और विभिन्न प्रोटेस्टेंट परंपराओं के बीच मतभेदों ने धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया।

2.5 आधुनिक विज्ञान की पृष्ठभूमि

पुनर्जागरण काल में प्राचीन वैज्ञानिक ग्रंथों के अध्ययन, गणित, खगोलशास्त्र, शरीर-विज्ञान और प्राकृतिक जगत के प्रति जिज्ञासा को प्रोत्साहन मिला। बाद के समय में वैज्ञानिक क्रांति ने प्रकृति के अध्ययन के लिए निरीक्षण, गणितीय विश्लेषण और प्रयोग की भूमिका को अधिक महत्त्व दिया।

इस परिवर्तन से पारंपरिक ज्ञान के अनेक पहलुओं का पुनर्मूल्यांकन हुआ। हालांकि पुनर्जागरण और वैज्ञानिक क्रांति एक ही घटना नहीं थे; दोनों के बीच ऐतिहासिक संबंध था, लेकिन वैज्ञानिक क्रांति का प्रमुख विकास सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में हुआ।

3. आधुनिक युग के आगमन के प्रमुख कारण

यूरोप में आधुनिक युग का आगमन अनेक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक कारणों से संभव हुआ। इन कारणों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है।

3.1 सामंतवाद का कमजोर होना

मध्यकालीन यूरोप में सामंती व्यवस्था आर्थिक और सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार थी। भूमि पर नियंत्रण रखने वाले सामंत कृषकों से लगान और विभिन्न सेवाएँ प्राप्त करते थे। लेकिन व्यापार-वाणिज्य के विस्तार, नगरों के विकास और मुद्रा अर्थव्यवस्था के बढ़ते महत्त्व से पारंपरिक सामंती संबंधों में परिवर्तन होने लगा।

केंद्रीय राजसत्ता ने भी धीरे-धीरे अपनी प्रशासनिक और सैन्य शक्ति बढ़ाई। इससे स्थानीय सामंतों के स्वतंत्र अधिकारों को चुनौती मिली। इन परिवर्तनों ने आधुनिक राज्य और बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के विकास के लिए परिस्थितियाँ तैयार कीं।

3.2 नगरों और व्यापार का विकास

यूरोप में मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में अनेक नगर व्यापार, शिल्प और वित्तीय गतिविधियों के केंद्र बने। व्यापारियों तथा कारीगरों का आर्थिक महत्त्व बढ़ा और नए सामाजिक समूह विकसित हुए।

इटली के फ्लोरेंस, वेनिस और जेनोआ जैसे नगर व्यापार तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए प्रसिद्ध हुए। इन नगरों की समृद्धि ने कला, साहित्य और शिक्षा को संरक्षण देने वाले वर्गों के विकास में सहायता की।

3.3 व्यापारिक वर्ग का उदय

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

व्यापार और वित्तीय गतिविधियों के विस्तार से यूरोप में व्यापारी, बैंकिंग परिवार और अन्य धन-संपन्न समूह प्रभावशाली हुए। इनमें से कुछ ने कलाकारों, लेखकों और विद्वानों को आर्थिक सहायता दी।

फ्लोरेंस का मेडिची परिवार पुनर्जागरणकालीन कला और विद्वत्ता के संरक्षण के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। ऐसे संरक्षकों ने कलाकारों और विद्वानों को अपने कार्यों के लिए संसाधन उपलब्ध कराए।

इस प्रकार आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक संरक्षण के बीच संबंध स्थापित हुआ, जिसने पुनर्जागरण के विकास में योगदान दिया।

3.4 कॉन्स्टेंटिनोपल का पतन

1453 ई. में उस्मानी तुर्कों ने कॉन्स्टेंटिनोपल पर अधिकार कर लिया। इस घटना का यूरोपीय इतिहास में विशेष महत्त्व है।

कॉन्स्टेंटिनोपल लंबे समय से यूनानी भाषा, ईसाई परंपरा और प्राचीन विद्वत्ता का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था। इसके पतन से पहले और बाद में कुछ यूनानी विद्वानों तथा पांडुलिपियों का इटली और पश्चिमी यूरोप के अन्य क्षेत्रों से संबंध बढ़ा।

हालांकि पुनर्जागरण की शुरुआत 1453 ई. से पहले ही इटली में हो चुकी थी। इसलिए कॉन्स्टेंटिनोपल के पतन को पुनर्जागरण का एकमात्र कारण मानना उचित नहीं है। इसे प्राचीन यूनानी ज्ञान के प्रसार से संबंधित अनेक कारकों में से एक के रूप में समझना चाहिए।

3.5 मुद्रण कला का विकास

पंद्रहवीं शताब्दी में यूरोप में चल अक्षरों वाली मुद्रण तकनीक के विकास ने ज्ञान और विचारों के प्रसार में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। योहानेस गुटेनबर्ग का नाम यूरोप में इस तकनीक के विकास और प्रसार से विशेष रूप से जुड़ा है।

मुद्रण के कारण पुस्तकों का उत्पादन अपेक्षाकृत तेज और कम खर्चीला हुआ। बाइबिल, शास्त्रीय साहित्य, वैज्ञानिक रचनाएँ और धार्मिक सुधार संबंधी लेख अधिक व्यापक स्तर पर प्रसारित होने लगे।

इस तकनीक ने धर्म-सुधार आंदोलन को भी गति प्रदान की, क्योंकि धार्मिक विचारों और विवादों से संबंधित पुस्तिकाएँ तथा अनुवाद विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचने लगे।

3.6 भौगोलिक खोजें

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में यूरोपीय समुद्री यात्राओं का विस्तार हुआ। पुर्तगाल और स्पेन ने समुद्री मार्गों की खोज तथा विदेशी क्षेत्रों में व्यापारिक और राजनीतिक विस्तार में प्रमुख भूमिका निभाई।

1488 ई. में बार्थोलोम्यू डियास ने अफ्रीका के दक्षिणी सिरे के आसपास समुद्री मार्ग की खोज में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। 1492 ई. में क्रिस्टोफर कोलंबस अटलांटिक पार करके कैरेबियाई क्षेत्र पहुँचा। 1498 ई. में वास्को द गामा समुद्री मार्ग से भारत के कालीकट पहुँचा।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

इन यात्राओं से यूरोप और एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका के बीच संपर्क बढ़ा। व्यापार का विस्तार हुआ और यूरोपीय शक्तियों ने उपनिवेश स्थापित करने शुरू किए।

हालाँकि इन यात्राओं के परिणाम केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं थे। इनके साथ उपनिवेशवाद, दास व्यापार, स्थानीय समाजों पर हिंसा और संसाधनों के शोषण जैसी प्रक्रियाएँ भी जुड़ी थीं।

3.7 शिक्षा और विश्वविद्यालयों का विकास

मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में यूरोप के विभिन्न नगरों में विश्वविद्यालय और विद्वत् केंद्र विकसित हुए। विश्वविद्यालयों में धर्मशास्त्र, दर्शन, कानून और चिकित्सा का अध्ययन किया जाता था।

पुनर्जागरण के दौरान व्याकरण, वक्तृत्व, इतिहास, काव्य और नैतिक दर्शन जैसे विषयों को मानवतावादी शिक्षा के अंतर्गत विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। इसने शिक्षा के उद्देश्य और पद्धति में परिवर्तन की परिस्थितियाँ तैयार कीं।

3.8 धार्मिक संस्थाओं के प्रति असंतोष

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में पश्चिमी ईसाई जगत में चर्च के कुछ पदाधिकारियों के आचरण, धार्मिक प्रथाओं और संस्थागत व्यवस्थाओं को लेकर असंतोष बढ़ रहा था।

धर्म-सुधारकों ने बाइबिल की शिक्षाओं, आस्था, पापमुक्ति और चर्च के अधिकार से संबंधित प्रश्न उठाए। मुद्रण और स्थानीय भाषाओं में धार्मिक साहित्य के प्रसार ने इन विचारों को व्यापक समुदाय तक पहुँचाने में सहायता की।

3.9 वैज्ञानिक जिज्ञासा और आलोचनात्मक दृष्टि

प्राकृतिक जगत को समझने की जिज्ञासा, गणित का विकास, खगोलशास्त्रीय अध्ययन और प्राचीन वैज्ञानिक ग्रंथों के पुनर्पाठ ने नए बौद्धिक वातावरण को जन्म दिया।

इस प्रक्रिया में ज्ञान की परंपरागत व्याख्याओं का परीक्षण करने की प्रवृत्ति बढ़ी। आगे चलकर यही वातावरण वैज्ञानिक क्रांति के विकास में सहायक सिद्ध हुआ।

3.10 राष्ट्रीय राजतंत्रों का विकास

यूरोप में इंग्लैंड, फ्रांस और स्पेन जैसे क्षेत्रों में केंद्रीय राजसत्ता मजबूत होने लगी। राजाओं ने प्रशासन, कर-व्यवस्था और सेना को अधिक संगठित किया।

राजनीतिक केंद्रीकरण ने सामंती प्रभुओं की स्वतंत्रता को सीमित किया और राज्य की भूमिका को विस्तृत किया। यह आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था के विकास का महत्त्वपूर्ण पहलू था।

इस प्रकार आधुनिक युग का आगमन किसी एक कारण से नहीं, बल्कि आर्थिक विकास, बौद्धिक परिवर्तन, धार्मिक विवादों, तकनीकी प्रगति और राजनीतिक पुनर्गठन की संयुक्त प्रक्रिया से हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

भाग–2 : पुनर्जागरण (Renaissance)

4. पुनर्जागरण का अर्थ एवं परिभाषा

पुनर्जागरण आधुनिक यूरोपीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक, सांस्कृतिक और कलात्मक प्रक्रिया थी। इसका विकास मुख्यतः इटली में चौदहवीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ और पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों में यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गया।

'पुनर्जागरण' अंग्रेजी शब्द *Renaissance* का हिंदी रूप है। Renaissance फ्रांसीसी भाषा का शब्द है, जिसका सामान्य अर्थ है—**पुनर्जन्म अथवा पुनरुत्थान**। ऐतिहासिक संदर्भ में इसका आशय प्राचीन यूनानी और रोमन साहित्य, कला, दर्शन तथा ज्ञान परंपराओं के पुनः अध्ययन और उनसे प्रेरित नवीन सांस्कृतिक विकास से है।

पुनर्जागरण का अर्थ यह नहीं था कि यूरोप में मध्यकाल के दौरान ज्ञान, कला या साहित्य पूरी तरह समाप्त हो गए थे और पंद्रहवीं शताब्दी में अचानक उनका पुनर्जन्म हुआ। वास्तव में मध्यकाल में भी विश्वविद्यालय, धार्मिक दर्शन, वास्तुकला, साहित्य और वैज्ञानिक अध्ययन विकसित हो रहे थे। पुनर्जागरण की विशेषता यह थी कि इसमें प्राचीन शास्त्रीय साहित्य का व्यवस्थित अध्ययन, मानव की क्षमताओं पर बल, कलात्मक यथार्थवाद और शिक्षा की नई पद्धतियों को विशेष महत्त्व मिला।

पुनर्जागरण ने मनुष्य, प्रकृति और समाज को समझने के लिए नए प्रश्न उठाए। इसने व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता, अनुभव, विवेक और शिक्षा को प्रतिष्ठा प्रदान की। हालांकि पुनर्जागरण के अधिकांश विद्वान धार्मिक आस्था से जुड़े रहे, फिर भी उन्होंने ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अधिक आलोचनात्मक और स्वतंत्र दृष्टिकोण विकसित करने में योगदान दिया।

4.1 पुनर्जागरण की प्रमुख विशेषताएँ

पुनर्जागरण की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं।

1. प्राचीन यूनानी और रोमन साहित्य का पुनः अध्ययन।
2. मानवतावाद का विकास।
3. व्यक्ति की प्रतिभा और रचनात्मकता पर बल।
4. कला में यथार्थवाद और प्रकृति का अध्ययन।
5. साहित्य तथा इतिहास के अध्ययन में नवीन रुचि।
6. शिक्षा में व्याकरण, वक्तृत्व, इतिहास और नैतिक दर्शन का महत्त्व।
7. वैज्ञानिक जिज्ञासा और आलोचनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन।
8. मुद्रण तकनीक के माध्यम से ज्ञान का प्रसार।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

9. स्थानीय भाषाओं में साहित्य का विकास।

10. कला और साहित्य के संरक्षण में व्यापारियों तथा शासकों की भूमिका।

इन विशेषताओं ने यूरोप के सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया।

5. पुनर्जागरण के उदय के कारण

पुनर्जागरण के विकास के पीछे कई आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक कारण थे।

5.1 इटली की भौगोलिक स्थिति

इटली भूमध्यसागरीय क्षेत्र में स्थित होने के कारण यूरोप, एशिया और उत्तरी अफ्रीका के बीच व्यापारिक संपर्क का महत्वपूर्ण केंद्र था। वेनिस और जेनोआ जैसे नगर समुद्री व्यापार से समृद्ध हुए।

इन नगरों में व्यापारियों, बैंकरों और संपन्न परिवारों के पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन उपलब्ध थे। वे कलाकारों, वास्तुकारों और विद्वानों को संरक्षण दे सकते थे। इस आर्थिक समृद्धि ने पुनर्जागरण की सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया।

5.2 प्राचीन रोमन सभ्यता की विरासत

इटली में रोमन सभ्यता के अनेक स्थापत्य अवशेष, मूर्तियाँ, अभिलेख और साहित्यिक परंपराएँ उपलब्ध थीं। इनसे कलाकारों और विद्वानों को प्राचीन कला तथा साहित्य का अध्ययन करने के अवसर मिले।

रोमन इतिहास और साहित्य ने पुनर्जागरण के विद्वानों को राजनीति, नैतिकता, वक्तृत्व और नागरिक जीवन के विषयों पर विचार करने के लिए प्रेरित किया।

5.3 व्यापार और आर्थिक समृद्धि

इटली के नगरों की समृद्धि ने सांस्कृतिक संरक्षण की परंपरा को प्रोत्साहित किया। संपन्न व्यापारी और बैंकिंग परिवार अपने प्रतिष्ठान, महल, चर्च और सार्वजनिक भवनों को सजाने के लिए कलाकारों को नियुक्त करते थे।

फ्लोरेंस का मेडिची परिवार इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने अनेक कलाकारों, विद्वानों और सांस्कृतिक परियोजनाओं को संरक्षण प्रदान किया।

5.4 कॉन्स्टेंटिनोपल और यूनानी विद्वत्ता

पूर्वी रोमन साम्राज्य की राजधानी कॉन्स्टेंटिनोपल यूनानी भाषा और प्राचीन साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण केंद्रस्थली थी। यूनानी ग्रंथों तथा विद्वानों के संपर्क ने पश्चिमी यूरोप में शास्त्रीय ज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित किया।

1453 ई. में कॉन्स्टेंटिनोपल के पतन के बाद यूनानी विद्वत्ता और पांडुलिपियों के कुछ नेटवर्कों का महत्त्व बढ़ा। हालांकि यूनानी ग्रंथों का अध्ययन इटली में इससे पहले भी होता रहा था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

5.5 मानवतावादी शिक्षा

पुनर्जागरण के विद्वानों ने मानवतावादी शिक्षा पर विशेष बल दिया। इसमें व्याकरण, वक्तृत्व, काव्य, इतिहास और नैतिक दर्शन का अध्ययन महत्त्वपूर्ण था।

इस शिक्षा का उद्देश्य केवल धार्मिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं, बल्कि भाषा, विवेक, नैतिक निर्णय और सार्वजनिक जीवन में भागीदारी की क्षमता विकसित करना भी था।

5.6 मुद्रण कला

मुद्रण तकनीक के विकास ने पुनर्जागरण के विचारों को व्यापक स्तर पर प्रसारित किया। पुस्तकों की उपलब्धता बढ़ने से प्राचीन साहित्य, मानचित्रों, वैज्ञानिक लेखों और मानवतावादी रचनाओं का अध्ययन आसान हुआ।

मुद्रण ने विद्वानों के बीच विचारों के आदान-प्रदान को गति प्रदान की तथा ज्ञान के प्रसार को कुछ सीमित अभिजात वर्गों से आगे बढ़ाने में सहायता की।

5.7 राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और सांस्कृतिक संरक्षण

इटली अनेक नगर-राज्यों और क्षेत्रीय शक्तियों में विभाजित था। इन राज्यों के बीच राजनीतिक प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक श्रेष्ठता की प्रतिस्पर्धा भी थी।

शासक तथा संपन्न परिवार भव्य भवनों, मूर्तियों, चित्रों और साहित्यिक गतिविधियों को संरक्षण देकर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते थे। इस प्रतिस्पर्धा से कलाकारों और विद्वानों को अवसर प्राप्त हुए।

6. पुनर्जागरण के प्रमुख चरण

पुनर्जागरण का विकास एक ही समय में पूरे यूरोप में नहीं हुआ। इसका प्रारंभ इटली में हुआ और बाद में यह अन्य क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में विकसित हुआ।

6.1 प्रारंभिक पुनर्जागरण

प्रारंभिक पुनर्जागरण का विकास मुख्यतः चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियों में इटली में हुआ। इस समय प्राचीन साहित्य के अध्ययन, मानवतावाद, चित्रकला और मूर्तिकला में नवीन प्रयोग हुए।

पेट्रार्क और बोक्काचियो जैसे साहित्यकारों ने शास्त्रीय साहित्य तथा मानव जीवन के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। फ्लोरेंस जैसे नगर इस बौद्धिक और सांस्कृतिक गतिविधि के प्रमुख केंद्र बने।

6.2 उच्च पुनर्जागरण

उच्च पुनर्जागरण मुख्यतः पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों और सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में इटली में विकसित हुआ। इस काल में चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला ने उच्च कलात्मक उपलब्धियाँ प्राप्त कीं।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

लियोनार्दो दा विंची, माइकेलएंजेलो और राफेल इस काल के प्रमुख कलाकार थे। उनकी रचनाओं में मानव शरीर, प्रकृति, अनुपात, संतुलन और भावनाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

6.3 उत्तरी पुनर्जागरण

पुनर्जागरण के विचार इटली से आगे बढ़कर नीदरलैंड, जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड जैसे क्षेत्रों में पहुँचे। इन क्षेत्रों में शास्त्रीय अध्ययन के साथ धार्मिक सुधार, नैतिक शिक्षा और सामाजिक आलोचना को विशेष महत्त्व मिला।

उत्तरी पुनर्जागरण के अनेक विद्वानों ने ईसाई धर्मग्रंथों के मूल पाठ का अध्ययन किया और धार्मिक जीवन में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। इस प्रकार उत्तरी पुनर्जागरण और धर्म-सुधार आंदोलन के बीच महत्त्वपूर्ण बौद्धिक संबंध विकसित हुए।

7. पुनर्जागरण का मानवतावाद

मानवतावाद पुनर्जागरण की प्रमुख बौद्धिक विशेषता थी। मानवतावाद ने मनुष्य की बौद्धिक क्षमता, नैतिक निर्णय, भाषा, शिक्षा और रचनात्मकता के महत्त्व को रेखांकित किया।

मानवतावादी विद्वानों ने प्राचीन यूनानी और रोमन ग्रंथों का अध्ययन करके मानव जीवन, राजनीति, नैतिकता और समाज को समझने के नए दृष्टिकोण विकसित किए।

7.1 मानवतावाद का अर्थ

मानवतावाद का अर्थ केवल मनुष्य को सर्वोच्च मानना या धर्म का विरोध करना नहीं था। पुनर्जागरणकालीन मानवतावाद का प्रमुख उद्देश्य शास्त्रीय साहित्य और भाषाओं के अध्ययन के माध्यम से मानव की बौद्धिक तथा नैतिक क्षमताओं का विकास करना था।

अनेक मानवतावादी ईसाई धर्म के प्रति आस्थावान थे। वे प्राचीन साहित्य और ईसाई नैतिकता के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे।

7.2 व्यक्ति की प्रतिष्ठा

मानवतावाद ने व्यक्ति की प्रतिभा और रचनात्मक क्षमता को विशेष महत्त्व दिया। कलाकारों, लेखकों, वैज्ञानिकों और विद्वानों की व्यक्तिगत उपलब्धियों को प्रतिष्ठा मिलने लगी।

इससे ज्ञान और कला के क्षेत्र में व्यक्तिगत मौलिकता का महत्त्व बढ़ा। फिर भी समाज में सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्राप्त नहीं थे; शिक्षा और सांस्कृतिक संरक्षण मुख्यतः संपन्न तथा प्रभावशाली वर्गों तक अधिक सीमित थे।

7.3 शिक्षा का नया दृष्टिकोण

मानवतावादी शिक्षा में भाषा, साहित्य, इतिहास, वक्तृत्व और नैतिक दर्शन को महत्त्व दिया गया। शिक्षा को नागरिक जीवन, प्रशासन और सामाजिक व्यवहार के लिए उपयोगी माना गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इससे मध्यकालीन विश्वविद्यालयों में प्रचलित परंपरागत शिक्षा के साथ नए विषयों और पद्धतियों का विकास हुआ।

7.4 मानवतावाद और धर्म

पुनर्जागरणकालीन मानवतावाद ने धार्मिक आस्था को पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया। इसके अनेक प्रतिनिधियों ने बाइबिल और ईसाई साहित्य का अध्ययन मूल भाषाओं में करने पर बल दिया।

इस प्रवृत्ति ने धार्मिक ग्रंथों के पाठ, अनुवाद और व्याख्या को प्रभावित किया। आगे चलकर इसने धर्म-सुधार आंदोलन के कुछ बौद्धिक आधारों को मजबूत किया।

8. पुनर्जागरण के प्रमुख साहित्यकार और विद्वान

8.1 दांते अलीघिएरी

दांते अलीघिएरी मध्यकालीन यूरोप के प्रमुख इतालवी कवि थे। उनकी प्रसिद्ध रचना *डिवाइन कॉमेडी* है। इस रचना में धार्मिक कल्पना, नैतिक चिंतन, राजनीति और मानवीय अनुभवों का व्यापक चित्रण मिलता है।

दांते ने इतालवी भाषा में साहित्यिक अभिव्यक्ति को प्रतिष्ठा दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी रचना में मध्यकालीन धार्मिक दृष्टि के साथ मानव जीवन और सामाजिक परिस्थितियों के प्रति गहरी रुचि भी दिखाई देती है।

हालाँकि दांते को पुनर्जागरण का पूर्णतः विकसित प्रतिनिधि मानने के बजाय मध्यकालीन और पुनर्जागरणकालीन सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।

8.2 फ्रांसेस्को पेट्रार्क

फ्रांसेस्को पेट्रार्क को प्रायः मानवतावाद के प्रारंभिक और प्रमुख प्रतिनिधियों में गिना जाता है। उन्होंने प्राचीन रोमन साहित्य का अध्ययन किया और लैटिन पांडुलिपियों के संग्रह तथा पुनर्पाठ को प्रोत्साहित किया।

पेट्रार्क की रचनाओं में मानव की आंतरिक भावनाओं, नैतिक संघर्षों और व्यक्तिगत अनुभवों का विशेष महत्त्व है। उनके कार्यों ने मानवतावादी अध्ययन की परंपरा को विकसित करने में सहायता की।

8.3 जियोवानी बोक्काचियो

जियोवानी बोक्काचियो इतालवी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक थे। उनकी प्रमुख रचना *डेकामेरॉन* है, जिसमें विभिन्न सामाजिक वर्गों, मानवीय व्यवहारों और तत्कालीन जीवन की विविध परिस्थितियों का चित्रण मिलता है।

बोक्काचियो की रचनाओं में मानवीय अनुभवों और सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति रुचि दिखाई देती है। उन्होंने इतालवी गद्य साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

8.4 इरास्मस

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

डेसिडेरियस इरास्मस उत्तरी पुनर्जागरण के प्रमुख मानवतावादी विद्वान थे। उन्होंने शास्त्रीय भाषाओं, ईसाई धर्मग्रंथों और नैतिक शिक्षा के अध्ययन को प्रोत्साहित किया।

इरास्मस ने चर्च के कुछ पदाधिकारियों की अज्ञानता, पाखंड और नैतिक कमियों की आलोचना की। उनकी प्रसिद्ध रचना *In Praise of Folly* में व्यंग्य के माध्यम से तत्कालीन समाज और धार्मिक संस्थाओं की कमजोरियों को उजागर किया गया।

वे धार्मिक सुधार के समर्थक थे, लेकिन मार्टिन लूथर की तरह रोमन कैथोलिक चर्च से अलग होने के पक्षधर नहीं बने।

8.5 थॉमस मोर

थॉमस मोर इंग्लैंड के मानवतावादी विद्वान और राजनेता थे। उनकी प्रसिद्ध रचना *Utopia* 1516 ई. में प्रकाशित हुई।

इस पुस्तक में एक आदर्श समाज की कल्पना के माध्यम से संपत्ति, सामाजिक असमानता, शासन और नैतिकता से संबंधित प्रश्न उठाए गए। मोर की रचना ने राजनीतिक तथा सामाजिक चिंतन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

8.6 निकोलो मैकियावेली

निकोलो मैकियावेली इतालवी राजनीतिक विचारक थे। उनकी प्रसिद्ध रचना *The Prince* है, जिसमें राजनीतिक सत्ता, शासन, राज्य की सुरक्षा और शासक के व्यवहार का विश्लेषण किया गया है।

मैकियावेली ने राजनीति के अध्ययन में व्यावहारिक परिस्थितियों और सत्ता की वास्तविकताओं को विशेष महत्व दिया। उनकी रचनाएँ आधुनिक राजनीतिक चिंतन के विकास से जुड़ी हैं।

8.7 विलियम शेक्सपियर

विलियम शेक्सपियर अंग्रेजी साहित्य के महान नाटककार और कवि थे। उनकी रचनाओं में मानवीय भावनाओं, सत्ता, नैतिक संघर्ष, प्रेम, ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा और सामाजिक संबंधों का व्यापक चित्रण मिलता है।

उनकी प्रमुख रचनाओं में *Hamlet*, *Macbeth*, *Othello* और *King Lear* शामिल हैं। शेक्सपियर का साहित्य पुनर्जागरणकालीन तथा प्रारंभिक आधुनिक यूरोप में मानव जीवन के जटिल अनुभवों की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

9. पुनर्जागरण के प्रमुख कलाकार

पुनर्जागरण ने चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन उत्पन्न किए। कलाकारों ने मानव शरीर, प्रकृति, प्रकाश, अनुपात और स्थान को अधिक यथार्थपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

9.1 लियोनार्दो दा विंची

लियोनार्दो दा विंची पुनर्जागरण के प्रमुख कलाकार, अभियंता और अन्वेषक थे। उन्होंने चित्रकला के साथ शरीर-विज्ञान, यांत्रिकी और प्राकृतिक जगत के अध्ययन में रुचि ली।

उनकी प्रसिद्ध कृतियों में *Mona Lisa* और *The Last Supper* शामिल हैं।

लियोनार्दो की कला में मानव भावनाओं, चेहरे की सूक्ष्म अभिव्यक्ति, प्रकाश और छाया का प्रभावशाली प्रयोग दिखाई देता है। उनकी कार्य-पद्धति में निरीक्षण और अध्ययन का विशेष महत्त्व था।

9.2 माइकेलएंजेलो

माइकेलएंजेलो प्रसिद्ध मूर्तिकार, चित्रकार और वास्तुकार थे। उनकी प्रमुख कृतियों में *David* की मूर्ति, *Pietà* और सिस्टीन चैपल की छत पर बनाए गए चित्र शामिल हैं।

उनकी कला में मानव शरीर की शक्ति, शारीरिक संरचना और भावनात्मक अभिव्यक्ति का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

9.3 राफेल

राफेल पुनर्जागरणकालीन चित्रकला के प्रमुख कलाकार थे। उनकी प्रसिद्ध कृति *The School of Athens* है, जिसमें प्राचीन यूनानी दार्शनिक परंपरा के अनेक प्रमुख विचारकों को एक आदर्श बौद्धिक वातावरण में प्रस्तुत किया गया है।

राफेल की कला में संतुलन, सौंदर्य, स्पष्टता और रचना की समरसता दिखाई देती है।

9.4 डोनाटेल्लो

डोनाटेल्लो पुनर्जागरणकालीन मूर्तिकला के प्रमुख कलाकार थे। उन्होंने मानव आकृतियों के यथार्थपूर्ण चित्रण और प्राचीन शास्त्रीय कला से प्रेरित मूर्तिकला के विकास में योगदान दिया।

उनकी कृतियों में मानव शरीर, मुद्रा और भावनाओं की अभिव्यक्ति पर विशेष ध्यान दिया गया।

9.5 पुनर्जागरणकालीन वास्तुकला

पुनर्जागरणकालीन वास्तुकला में प्राचीन यूनानी और रोमन स्थापत्य से प्रेरित स्तंभों, गुंबदों, अनुपातों और सममिति का प्रयोग किया गया।

फिलिप्पो ब्रुनेलेस्की को पुनर्जागरणकालीन वास्तुकला के प्रमुख अग्रदूतों में गिना जाता है। फ्लोरेंस के कैथेड्रल के गुंबद का निर्माण उनकी प्रसिद्ध उपलब्धियों में शामिल है।

इस प्रकार पुनर्जागरणकालीन वास्तुकला ने मध्यकालीन गोथिक शैली के साथ-साथ शास्त्रीय स्थापत्य के नए रूपों को प्रतिष्ठा प्रदान की।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

10. पुनर्जागरण और विज्ञान

पुनर्जागरण ने प्राकृतिक जगत के अध्ययन तथा वैज्ञानिक जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने में योगदान दिया। प्राचीन वैज्ञानिक ग्रंथों के पुनर्पाठ, गणित, खगोलशास्त्र, शरीर-विज्ञान और तकनीकी अध्ययन ने ज्ञान के विकास को गति दी।

10.1 खगोलशास्त्र का विकास

निकोलस कोपरनिकस ने सोलहवीं शताब्दी में सूर्य-केंद्रित खगोलीय मॉडल प्रस्तुत किया। उनकी पुस्तक *De revolutionibus orbium coelestium* 1543 ई. में प्रकाशित हुई।

कोपरनिकस के मॉडल ने पृथ्वी-केंद्रित ब्रह्मांड की प्रचलित व्याख्या को चुनौती दी। हालांकि सूर्य-केंद्रित मॉडल का विकास एक लंबी वैज्ञानिक प्रक्रिया का हिस्सा था, जिसे बाद में केप्लर, गैलीलियो और न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों के कार्यों ने आगे बढ़ाया।

10.2 शरीर-विज्ञान

पुनर्जागरणकालीन विद्वानों ने मानव शरीर की संरचना का अधिक व्यवस्थित अध्ययन किया। आंद्रेयास वेसालियस ने शरीर-विच्छेदन और प्रत्यक्ष निरीक्षण पर आधारित शरीर-विज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

1543 ई. में प्रकाशित उनकी पुस्तक *De humani corporis fabrica* शरीर-विज्ञान के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

10.3 गणित और तकनीकी ज्ञान

गणित, मानचित्रण, नौवहन और यांत्रिक उपकरणों के अध्ययन ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास में योगदान दिया। समुद्री यात्राओं के विस्तार ने खगोलीय गणना, मानचित्र निर्माण और नौवहन तकनीकों की उपयोगिता बढ़ाई।

10.4 पुनर्जागरण और वैज्ञानिक क्रांति में अंतर

पुनर्जागरण ने वैज्ञानिक अध्ययन के लिए बौद्धिक परिस्थितियाँ तैयार कीं, लेकिन आधुनिक विज्ञान का पूर्ण विकास इसके बाद हुआ। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में प्रयोग, गणितीय विश्लेषण और व्यवस्थित वैज्ञानिक पद्धतियों का विकास अधिक स्पष्ट हुआ।

इसलिए पुनर्जागरण को आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन की एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठभूमि के रूप में देखना चाहिए, न कि वैज्ञानिक क्रांति का पूर्ण पर्याय मानना चाहिए।

11. पुनर्जागरण के प्रमुख प्रभाव

पुनर्जागरण ने यूरोप के सांस्कृतिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव डाला।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

11.1 साहित्य का विकास

पुनर्जागरण ने साहित्य में मानव अनुभव, प्रकृति, राजनीति, नैतिकता और सामाजिक संबंधों के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। स्थानीय भाषाओं में साहित्यिक रचनाओं की प्रतिष्ठा बढ़ी।

11.2 कला में परिवर्तन

चित्रकला और मूर्तिकला में यथार्थवाद, परिप्रेक्ष्य, अनुपात और मानव शरीर के अध्ययन को महत्त्व मिला। कलाकारों ने धार्मिक विषयों के साथ-साथ पौराणिक, ऐतिहासिक और लौकिक विषयों को भी प्रस्तुत किया।

11.3 शिक्षा का विस्तार

मानवतावादी शिक्षा ने इतिहास, भाषा, साहित्य और नैतिक दर्शन को महत्त्व दिया। मुद्रण तकनीक ने पुस्तकों की उपलब्धता बढ़ाई और विद्वानों के बीच संवाद को प्रोत्साहित किया।

11.4 धार्मिक आलोचना की पृष्ठभूमि

प्राचीन ग्रंथों और बाइबिल के मूल पाठों का अध्ययन करने की प्रवृत्ति ने धार्मिक व्याख्याओं की समीक्षा को प्रोत्साहित किया। इससे धर्म-सुधार आंदोलन के कुछ बौद्धिक आधार विकसित हुए।

11.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्राकृतिक जगत के निरीक्षण और अध्ययन की प्रवृत्ति को बल मिला। बाद के समय में इसने वैज्ञानिक क्रांति के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण बौद्धिक आधार प्रदान किया।

11.6 राजनीतिक चिंतन

मैकियावेली जैसे विचारकों ने राजनीतिक सत्ता और शासन की वास्तविक परिस्थितियों का विश्लेषण किया। इससे राजनीति के अध्ययन में नए दृष्टिकोण विकसित हुए।

11.7 सीमाएँ और विरोधाभास

पुनर्जागरण के लाभ पूरे समाज में समान रूप से वितरित नहीं हुए। शिक्षा और सांस्कृतिक संरक्षण मुख्यतः संपन्न तथा प्रभावशाली वर्गों तक अधिक सीमित थे। महिलाओं को भी अधिकांश औपचारिक बौद्धिक संस्थाओं में सीमित अवसर प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त यूरोपीय समुद्री विस्तार और उपनिवेशवाद ने अन्य महाद्वीपों के समाजों को गहरे रूप में प्रभावित किया। इसलिए पुनर्जागरण की उपलब्धियों का मूल्यांकन करते समय उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियों के साथ उसके सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

भाग–3 : धर्म-सुधार आंदोलन (Reformation)

12. धर्म-सुधार आंदोलन का अर्थ एवं परिचय

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

धर्म-सुधार आंदोलन सोलहवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में विकसित एक व्यापक धार्मिक आंदोलन था, जिसने रोमन कैथोलिक चर्च की कुछ मान्यताओं, प्रथाओं, संस्थागत अधिकारों और धार्मिक जीवन की व्यवस्था को चुनौती दी। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप पश्चिमी ईसाई जगत में स्थायी विभाजन हुआ और विभिन्न प्रोटेस्टेंट परंपराओं का विकास हुआ।

धर्म-सुधार आंदोलन का प्रारंभ सामान्यतः 1517 ई. में जर्मनी में मार्टिन लूथर द्वारा प्रस्तुत आलोचनाओं से जोड़ा जाता है। हालांकि चर्च में सुधार की माँग इससे पहले भी उठती रही थी। जॉन वाइक्लिफ और जान हस जैसे विचारकों ने चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दियों में चर्च की कुछ प्रथाओं और अधिकारों की आलोचना की थी।

धर्म-सुधार आंदोलन का उद्देश्य सभी क्षेत्रों में एक जैसा नहीं था। कुछ सुधारक चर्च की आंतरिक कमियों को दूर करना चाहते थे, जबकि अन्य धार्मिक सिद्धांतों और संस्थागत अधिकारों में गहरे परिवर्तन के पक्षधर थे। समय के साथ इस आंदोलन ने धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक रूप ग्रहण कर लिया।

12.1 धर्म-सुधार आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ

1. रोमन कैथोलिक चर्च की कुछ प्रथाओं की आलोचना।
2. बाइबिल के अध्ययन और व्याख्या पर बल।
3. ईसाई आस्था तथा पापमुक्ति संबंधी सिद्धांतों पर नए विचार।
4. धार्मिक अधिकार के प्रश्न पर बहस।
5. स्थानीय भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद को प्रोत्साहन।
6. मुद्रण तकनीक के माध्यम से विचारों का प्रसार।
7. प्रोटेस्टेंट धार्मिक परंपराओं का विकास।
8. यूरोप के धार्मिक और राजनीतिक मानचित्र में परिवर्तन।
9. चर्च और राज्य के संबंधों में पुनर्गठन।
10. धार्मिक संघर्षों और सहिष्णुता संबंधी बहसों का विकास।

13. धर्म-सुधार आंदोलन के प्रमुख कारण

धर्म-सुधार आंदोलन के उदय के पीछे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और बौद्धिक कारण थे। इनमें से किसी एक कारण से इस आंदोलन की पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती।

13.1 रोमन कैथोलिक चर्च की संस्थागत समस्याएँ

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

मध्यकालीन यूरोप में रोमन कैथोलिक चर्च धार्मिक जीवन के अतिरिक्त शिक्षा, संपत्ति और राजनीति में भी प्रभावशाली था। अनेक क्षेत्रों में चर्च के पास पर्याप्त भूमि और आर्थिक संसाधन थे।

कुछ चर्च अधिकारियों के आचरण, पदों की खरीद-फरोख्त और धार्मिक पदों से जुड़े आर्थिक हितों की आलोचना की जाती थी। कई सुधारकों का मानना था कि धार्मिक संस्थाओं को अधिक नैतिक, अनुशासित और आध्यात्मिक जीवन अपनाना चाहिए।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि चर्च के सभी अधिकारी भ्रष्ट नहीं थे और न ही सभी क्षेत्रों की परिस्थितियाँ समान थीं। फिर भी संस्थागत कमियों की आलोचना ने धर्म-सुधार की माँग को बल दिया।

13.2 क्षमापत्रों की बिक्री

धर्म-सुधार आंदोलन के प्रमुख कारणों में क्षमापत्रों की बिक्री से संबंधित विवाद शामिल था। कैथोलिक धार्मिक परंपरा में *Indulgences* का संबंध पाप के लिए निर्धारित अस्थायी दंड में छूट से था; इसे पाप करने की अनुमति या पाप की स्वतः पूर्ण क्षमा के समान समझना सही नहीं है।

सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में कुछ क्षेत्रों में क्षमापत्रों के प्रचार और बिक्री के तरीके विवादास्पद हो गए। आलोचकों का कहना था कि इससे धार्मिक जीवन आर्थिक लेन-देन से जुड़ता दिखाई देता है।

मार्टिन लूथर ने क्षमापत्रों के प्रचार और उनके धार्मिक आधार पर प्रश्न उठाए। इस विवाद ने धर्म-सुधार आंदोलन को व्यापक रूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

13.3 पोप की सत्ता के प्रति असंतोष

रोमन कैथोलिक चर्च के प्रमुख के रूप में पोप की धार्मिक सत्ता पश्चिमी यूरोप में व्यापक थी। लेकिन विभिन्न क्षेत्रों के शासक अपने राजनीतिक मामलों में बाहरी धार्मिक हस्तक्षेप को सीमित करना चाहते थे।

कुछ राजाओं और स्थानीय शासकों ने धर्म-सुधार आंदोलन को समर्थन दिया, क्योंकि इससे उन्हें चर्च की संपत्ति, नियुक्तियों और राजनीतिक प्रभाव पर अधिक नियंत्रण प्राप्त करने का अवसर दिखाई दिया।

हालांकि सभी शासकों के उद्देश्य समान नहीं थे। कुछ धार्मिक विश्वासों के कारण सुधार का समर्थन करते थे, जबकि अन्य के निर्णय राजनीतिक और आर्थिक हितों से भी प्रभावित थे।

13.4 पुनर्जागरण का प्रभाव

पुनर्जागरणकालीन मानवतावाद ने मूल ग्रंथों के अध्ययन, भाषाई विश्लेषण और आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित किया। विद्वानों ने बाइबिल के मूल भाषाई रूपों और प्राचीन ईसाई साहित्य का अध्ययन करने पर बल दिया।

इस प्रवृत्ति से धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या और चर्च की परंपराओं के संबंध में नए प्रश्न उठे। इरास्मस जैसे मानवतावादी विद्वानों ने ईसाई जीवन में नैतिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

हालाँकि सभी मानवतावादी प्रोटेस्टेंट नहीं बने। मानवतावाद ने सुधारवादी विचारों के विकास में योगदान दिया, लेकिन वह स्वयं धर्म-सुधार आंदोलन के समान नहीं था।

13.5 मुद्रण कला का प्रभाव

मुद्रण तकनीक ने धर्म-सुधार आंदोलन के प्रसार में निर्णायक भूमिका निभाई। पुस्तिकाओं, पर्चों, धार्मिक लेखों और बाइबिल के अनुवादों के माध्यम से सुधारकों के विचार तेजी से फैलने लगे।

मुद्रण के कारण धार्मिक विवाद केवल विश्वविद्यालयों या चर्चों तक सीमित नहीं रहे। वे नगरों, व्यापारिक केंद्रों और शिक्षित नागरिकों के बीच भी चर्चा का विषय बने।

13.6 स्थानीय भाषाओं में बाइबिल

धर्म-सुधारकों ने स्थानीय भाषाओं में धार्मिक ग्रंथों की उपलब्धता को महत्त्व दिया। उनका मानना था कि लोग अपनी भाषा में बाइबिल पढ़कर ईसाई शिक्षाओं को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

मार्टिन लूथर ने जर्मन भाषा में बाइबिल के अनुवाद और उसके प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इससे जर्मन भाषा के साहित्यिक विकास को भी प्रोत्साहन मिला।

13.7 राष्ट्रीय राजतंत्रों का उदय

यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में राजसत्ता के केंद्रीकरण ने धार्मिक राजनीति को प्रभावित किया। अनेक शासक पोप के प्रभाव को सीमित करना चाहते थे और अपने क्षेत्रों में धार्मिक प्रशासन पर अधिक नियंत्रण स्थापित करना चाहते थे।

इंग्लैंड में हेनरी अष्टम के शासनकाल में रोमन कैथोलिक चर्च से अलगाव का प्रमुख कारण राजसत्ता, विवाह संबंधी विवाद और उत्तराधिकार के प्रश्नों से जुड़ा था। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि धर्म-सुधार आंदोलन धार्मिक विश्वासों के साथ राजनीतिक परिस्थितियों से भी प्रभावित था।

13.8 आर्थिक हित

चर्च की भूमि और संपत्ति यूरोप के अनेक क्षेत्रों में राजनीतिक विवाद का विषय थी। कुछ शासकों और अभिजात वर्गों को चर्च की संपत्ति पर नियंत्रण स्थापित करने में आर्थिक लाभ दिखाई देता था।

इसलिए कुछ क्षेत्रों में धर्म-सुधार को राजनीतिक तथा आर्थिक हितों का समर्थन मिला। फिर भी सभी प्रोटेस्टेंट आंदोलनों को केवल आर्थिक स्वार्थ का परिणाम मानना उनके धार्मिक और वैचारिक पक्षों की उपेक्षा होगी।

14. मार्टिन लूथर और धर्म-सुधार आंदोलन

मार्टिन लूथर धर्म-सुधार आंदोलन के प्रमुख नेताओं में से एक थे। उनका जन्म 1483 ई. में जर्मनी के आइज़लेबेन में हुआ था। वे ऑगस्टिनियन मठवासी और धर्मशास्त्र के अध्यापक थे।

Dr. RAkesh Mohan NautiyaL

लूथर ने ईसाई धर्म में पापमुक्ति, आस्था, बाइबिल और चर्च के अधिकार से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया। उनके विचारों ने जर्मनी में धार्मिक विवाद को जन्म दिया, जो आगे चलकर व्यापक धर्म-सुधार आंदोलन में बदल गया।

14.1 पंचानवे प्रतिपादन

31 अक्टूबर 1517 ई. को लूथर ने क्षमापत्रों से संबंधित धार्मिक प्रश्नों पर अपने पंचानवे प्रतिपादन प्रस्तुत किए। परंपरागत विवरण के अनुसार इन्हें विटेनबर्ग के चर्च के द्वार पर लगाया गया था, हालांकि इस घटना के सटीक विवरण पर इतिहासकारों में चर्चा रही है।

इन प्रतिपादनों में क्षमापत्रों के प्रचार, उनके धार्मिक आधार और पापमुक्ति संबंधी प्रश्नों पर बहस की गई थी। लूथर का उद्देश्य प्रारंभ में धार्मिक विवाद पर चर्चा करना था, लेकिन उनके विचारों ने व्यापक प्रतिक्रिया उत्पन्न की।

मुद्रण के माध्यम से उनके विचार तेजी से फैले और चर्च के अधिकार तथा धार्मिक सिद्धांतों पर व्यापक बहस प्रारंभ हुई।

14.2 आस्था द्वारा धर्मी ठहराया जाना

लूथर के धर्मशास्त्र में *Justification by Faith* अर्थात् आस्था द्वारा धर्मी ठहराए जाने का सिद्धांत केंद्रीय था। उनके अनुसार मनुष्य का उद्धार केवल बाहरी धार्मिक कर्मकांडों या मानवीय प्रयासों से सुनिश्चित नहीं होता; ईश्वर की कृपा और मसीह में आस्था का प्रमुख महत्त्व है।

लूथर ने यह तर्क दिया कि धार्मिक जीवन का केंद्र ईश्वर की कृपा और आस्था होनी चाहिए। इस विचार ने पापमुक्ति, धार्मिक कर्मों और चर्च की भूमिका पर नई बहस को जन्म दिया।

14.3 बाइबिल का महत्त्व

लूथर ने बाइबिल को ईसाई सिद्धांतों का सर्वोच्च मानक माना। उन्होंने चर्च की उन व्याख्याओं और प्रथाओं पर प्रश्न उठाए जिन्हें वे बाइबिल की शिक्षाओं से असंगत समझते थे।

उनके विचारों ने धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन तथा व्यक्तिगत धार्मिक समझ को महत्त्व दिया। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं था कि सभी प्रोटेस्टेंट परंपराओं में व्यक्तिगत व्याख्या के अतिरिक्त कोई धार्मिक संस्था या परंपरा महत्त्वपूर्ण नहीं रही।

14.4 पोप के अधिकार पर प्रश्न

लूथर ने पोप की धार्मिक सत्ता और चर्च के कुछ सिद्धांतों पर प्रश्न उठाए। उनके विचारों के कारण रोमन कैथोलिक चर्च के साथ विवाद गहरा गया।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

1521 ई. में वॉर्म्स की सभा में लूथर से अपने विचारों पर पुनर्विचार करने की अपेक्षा की गई। उन्होंने अपने प्रमुख सिद्धांतों को वापस लेने से इनकार किया। इसके बाद उन्हें साम्राज्य के प्रतिबंध के अधीन घोषित किया गया।

सैक्सनी के शासक फ्रेडरिक तृतीय के संरक्षण में लूथर कुछ समय वार्टबर्ग दुर्ग में रहे। इस दौरान उन्होंने बाइबिल के जर्मन अनुवाद पर काम किया।

14.5 लूथर के विचारों का प्रसार

लूथर के विचार जर्मनी के अनेक क्षेत्रों में फैलने लगे। कुछ राजकुमारों, नगरों और धार्मिक समुदायों ने उनका समर्थन किया।

इन विचारों के प्रसार से पश्चिमी ईसाई जगत में स्थायी धार्मिक विभाजन की प्रक्रिया तेज हुई। आगे चलकर लूथरन परंपरा प्रोटेस्टेंट ईसाई धर्म की एक प्रमुख शाखा के रूप में विकसित हुई।

14.6 लूथर के आंदोलन की सीमाएँ

लूथर ने धार्मिक सुधार का समर्थन किया, लेकिन सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर उनके विचार हमेशा समानतावादी नहीं थे। 1524–1525 ई. के जर्मन किसान युद्ध के दौरान उन्होंने किसानों के विद्रोह के प्रति कठोर रुख अपनाया।

इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक सुधार का समर्थन करने वाले विचारक आवश्यक नहीं कि सामाजिक व्यवस्था के सभी पहलुओं में क्रांतिकारी परिवर्तन के पक्षधर हों।

15. ज्विंगली और स्विट्जरलैंड में धर्म-सुधार

उलरिख ज्विंगली स्विट्जरलैंड में धर्म-सुधार आंदोलन के प्रमुख नेता थे। उनका कार्य मुख्यतः ज्यूरिख में केंद्रित था।

ज्विंगली ने धार्मिक जीवन में बाइबिल की भूमिका पर बल दिया और कुछ कैथोलिक धार्मिक प्रथाओं की आलोचना की। उन्होंने चर्च की पूजा-पद्धति और धार्मिक प्रतीकों के संबंध में सुधारवादी विचार प्रस्तुत किए।

उनके विचार लूथर के विचारों से कई बिंदुओं पर मिलते थे, लेकिन प्रभु भोज की धार्मिक व्याख्या जैसे विषयों पर दोनों में मतभेद थे।

स्विट्जरलैंड में धर्म-सुधार का विकास विभिन्न नगरों और राजनीतिक इकाइयों की परिस्थितियों से प्रभावित हुआ। इसने यूरोप में प्रोटेस्टेंट विचारों की विविधता को बढ़ाने में योगदान दिया।

16. जॉन कैल्विन और कैल्विनवाद

जॉन कैल्विन सोलहवीं शताब्दी के प्रमुख धर्म-सुधारक थे। उनका जन्म 1509 ई. में फ्रांस में हुआ था। उन्होंने स्विट्जरलैंड के जिनेवा में धर्म-सुधार आंदोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

उनकी प्रमुख रचना *Institutes of the Christian Religion* का पहला संस्करण 1536 ई. में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में ईसाई धर्मशास्त्र, ईश्वर की सत्ता, आस्था, चर्च और धार्मिक जीवन की व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की गई।

16.1 पूर्वनियति का सिद्धांत

कैल्विनवाद की प्रमुख विशेषताओं में *Predestination* अर्थात् पूर्वनियति का सिद्धांत शामिल है। इस सिद्धांत के अनुसार उद्धार के संबंध में ईश्वर की सार्वभौमिक सत्ता और उसकी योजना का विशेष महत्त्व है।

इस सिद्धांत की विभिन्न प्रोटेस्टेंट परंपराओं में अलग-अलग व्याख्याएँ हुईं। इसलिए इसे सभी प्रोटेस्टेंट समुदायों का समान सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

16.2 जिनेवा में धार्मिक संगठन

जिनेवा में कैल्विनवादी नेतृत्व के अंतर्गत धार्मिक अनुशासन, शिक्षा और सामुदायिक जीवन को महत्त्व दिया गया। नगर का धार्मिक तथा सामाजिक संगठन सुधारवादी विचारों से प्रभावित हुआ।

कैल्विनवाद ने स्विट्जरलैंड से आगे फ्रांस, नीदरलैंड, स्कॉटलैंड और यूरोप के अन्य क्षेत्रों में भी प्रभाव डाला।

16.3 कैल्विनवाद का सामाजिक प्रभाव

कैल्विनवादी समुदायों ने शिक्षा, अनुशासन, सामुदायिक संगठन और धार्मिक जीवन को महत्त्व दिया। कुछ इतिहासकारों ने प्रोटेस्टेंट परंपराओं और आधुनिक पूँजीवाद के विकास के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास किया है।

हालांकि यह संबंध विवादास्पद है। आधुनिक पूँजीवाद का विकास अनेक आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कारणों से हुआ था; उसे केवल किसी एक धार्मिक सिद्धांत का परिणाम नहीं माना जा सकता।

17. इंग्लैंड में धर्म-सुधार आंदोलन

इंग्लैंड में धर्म-सुधार आंदोलन का स्वरूप जर्मनी और स्विट्जरलैंड से कुछ अलग था। यहाँ राजसत्ता की भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण रही।

17.1 हेनरी अष्टम और रोम से अलगाव

इंग्लैंड के राजा हेनरी अष्टम ने पोप के अधिकार से अलग होकर इंग्लैंड के चर्च पर राजकीय सर्वोच्चता स्थापित करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया।

हेनरी अष्टम और पोप के बीच विवाद का संबंध उनके विवाह और उत्तराधिकार के प्रश्नों से था। जब पोप ने उनकी वैवाहिक माँग को स्वीकार नहीं किया, तब राजनीतिक तथा धार्मिक संघर्ष गहरा गया।

1534 ई. के *Act of Supremacy* के माध्यम से इंग्लैंड के राजा को इंग्लैंड के चर्च का सर्वोच्च प्रमुख घोषित किया गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण अंतर समझना आवश्यक है: इंग्लैंड का रोम से अलगाव प्रारंभ में मुख्यतः राजसत्ता और चर्च के अधिकार से संबंधित था। इंग्लैंड का चर्च आगे चलकर धार्मिक सिद्धांतों तथा पूजा-पद्धति में भी परिवर्तन से गुजरा।

17.2 मठों का विघटन

हेनरी अष्टम के शासनकाल में 1530 के दशक के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड के अनेक मठों की संपत्ति राजसत्ता के नियंत्रण में लाई गई। इसे मठों का विघटन कहा जाता है।

इस प्रक्रिया से धार्मिक संस्थाओं की आर्थिक स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया। मठों की संपत्ति का एक हिस्सा राजसत्ता और अन्य भू-स्वामियों के हाथों में पहुँचा।

इस परिवर्तन के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिणाम हुए। अनेक धार्मिक संस्थाएँ समाप्त हुईं, जबकि उनके संसाधनों का पुनर्वितरण इंग्लैंड की संपत्ति संरचना को प्रभावित करने लगा।

17.3 एडवर्ड षष्ठम का काल

हेनरी अष्टम की मृत्यु के बाद एडवर्ड षष्ठम के शासनकाल में इंग्लैंड के चर्च में प्रोटेस्टेंट प्रभाव बढ़ा। पूजा-पद्धति और धार्मिक सिद्धांतों में परिवर्तन हुए।

इस काल में सुधारवादी धार्मिक विचारों को अधिक संस्थागत रूप देने का प्रयास किया गया।

17.4 मैरी प्रथम का शासन

मैरी प्रथम ने इंग्लैंड को पुनः रोमन कैथोलिक धार्मिक व्यवस्था से जोड़ने का प्रयास किया। उनके शासनकाल में अनेक प्रोटेस्टेंटों को धार्मिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा।

इससे इंग्लैंड में धार्मिक संघर्ष और गहरा हुआ। यह उदाहरण दर्शाता है कि धर्म-सुधार आंदोलन के परिणाम राजनीतिक उत्तराधिकार और शासकों की धार्मिक नीतियों से प्रभावित होते थे।

17.5 एलिजाबेथ प्रथम और धार्मिक समझौता

एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल में इंग्लैंड के चर्च की स्थिति को अधिक स्थिर करने का प्रयास किया गया। 1559 ई. के धार्मिक समझौते ने इंग्लैंड के चर्च की संस्थागत पहचान को मजबूत किया।

इंग्लैंड में धार्मिक परिवर्तन की प्रक्रिया लंबी और संघर्षपूर्ण रही। इसका परिणाम एक ऐसी धार्मिक परंपरा के रूप में सामने आया जिसे एंग्लिकन परंपरा कहा जाता है।

18. धर्म-सुधार आंदोलन के अन्य प्रमुख पक्ष

18.1 अनाबैपटिस्ट आंदोलन

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

अनाबैपटिस्ट सोलहवीं शताब्दी के धार्मिक सुधार आंदोलनों का एक विविध समूह था। इनके अनेक प्रतिनिधियों ने वयस्क आस्था-आधारित बपतिस्मा पर बल दिया और राज्य तथा चर्च के संबंधों के संबंध में अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए।

कुछ अनाबैपटिस्ट समुदायों ने धार्मिक स्वतंत्रता और सामुदायिक जीवन पर विशेष बल दिया। उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में कैथोलिक तथा अन्य प्रोटेस्टेंट अधिकारियों के विरोध और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा।

18.2 स्कॉटलैंड में धर्म-सुधार

स्कॉटलैंड में जॉन नॉक्स धर्म-सुधार आंदोलन के प्रमुख नेता थे। उन्होंने कैल्विनवादी विचारों से प्रभावित धार्मिक व्यवस्था के विकास में योगदान दिया।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्कॉटलैंड में प्रोटेस्टेंट सुधारवादी परंपरा मजबूत हुई। इससे स्कॉटलैंड के धार्मिक और राजनीतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए।

18.3 फ्रांस में ह्यूगेनॉट

फ्रांस में कैल्विनवादी प्रोटेस्टेंटों को ह्यूगेनॉट कहा जाता था। सोलहवीं शताब्दी में उनके और कैथोलिक समुदायों के बीच गंभीर धार्मिक तथा राजनीतिक संघर्ष हुए।

1562 से 1598 ई. तक फ्रांस धार्मिक युद्धों से प्रभावित रहा। इन संघर्षों का संबंध केवल धार्मिक मतभेदों से नहीं था; राजवंशीय राजनीति और कुलीन वर्गों की प्रतिस्पर्धा भी इसमें शामिल थी।

1598 ई. के नांत के आदेश ने फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंटों को कुछ सीमित धार्मिक अधिकार प्रदान किए, हालांकि बाद में इन अधिकारों में परिवर्तन हुआ।

19. धर्म-सुधार आंदोलन के परिणाम

धर्म-सुधार आंदोलन ने यूरोप की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया।

19.1 ईसाई जगत का विभाजन

धर्म-सुधार आंदोलन के परिणामस्वरूप पश्चिमी ईसाई जगत में रोमन कैथोलिक चर्च से अलग विभिन्न प्रोटेस्टेंट परंपराएँ विकसित हुईं।

लूथरन, कैल्विनवादी और एंग्लिकन परंपराओं ने अलग-अलग क्षेत्रों में प्रभाव स्थापित किया। इससे पश्चिमी यूरोप की धार्मिक एकता समाप्त हुई।

19.2 पोप की सत्ता में परिवर्तन

प्रोटेस्टेंट क्षेत्रों में पोप की धार्मिक सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया। कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीय चर्चों का विकास हुआ और शासकों ने धार्मिक संस्थाओं पर अधिक नियंत्रण स्थापित किया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

हालांकि कैथोलिक क्षेत्रों में पोप की सत्ता समाप्त नहीं हुई। वहाँ चर्च ने प्रति-सुधार आंदोलन के माध्यम से अपनी संस्थाओं और धार्मिक अनुशासन को पुनर्गठित किया।

19.3 राष्ट्रीय राजसत्ता को प्रोत्साहन

धर्म-सुधार आंदोलन ने अनेक क्षेत्रों में राजसत्ता और धार्मिक संस्थाओं के संबंधों को बदल दिया। कुछ शासकों ने चर्च की संपत्ति और प्रशासन पर अधिक नियंत्रण स्थापित किया।

इससे राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थाओं के विकास को कुछ क्षेत्रों में बल मिला। लेकिन धार्मिक विभाजन ने अनेक राज्यों में गृहयुद्ध और अंतरराज्यीय संघर्षों को भी जन्म दिया।

19.4 शिक्षा का विस्तार

स्थानीय भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद और धार्मिक साहित्य के प्रसार से पढ़ने-लिखने की उपयोगिता बढ़ी। अनेक प्रोटेस्टेंट समुदायों ने बाइबिल के अध्ययन के लिए शिक्षा को महत्व दिया।

हालांकि शिक्षा का विस्तार केवल धर्म-सुधार का परिणाम नहीं था। मुद्रण, नगरों का विकास, व्यापार और राज्य की आवश्यकताओं ने भी इसमें योगदान दिया।

19.5 धार्मिक सहिष्णुता के प्रश्न

धर्म-सुधार आंदोलन ने धार्मिक विविधता को बढ़ाया, लेकिन इसका अर्थ तत्काल धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना नहीं था। कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों पक्षों में कई क्षेत्रों में धार्मिक उत्पीड़न तथा हिंसा हुई।

दीर्घकाल में धार्मिक संघर्षों ने सहअस्तित्व, अंतरात्मा की स्वतंत्रता और राज्य की धार्मिक भूमिका पर बहस को महत्व दिया। फिर भी आधुनिक धार्मिक स्वतंत्रता का विकास लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था।

19.6 यूरोपीय राजनीति पर प्रभाव

धार्मिक विभाजन ने अनेक यूरोपीय राज्यों के राजनीतिक गठबंधनों, युद्धों और कूटनीति को प्रभावित किया। राजाओं और राजकुमारों ने कई बार धार्मिक पहचान के आधार पर राजनीतिक सहयोग स्थापित किए।

लेकिन धार्मिक और राजनीतिक हित हमेशा एक-दूसरे से मेल नहीं खाते थे। अनेक शासकों ने परिस्थितियों के अनुसार अपने राजनीतिक हितों को प्राथमिकता दी।

19.7 सामाजिक अनुशासन और पारिवारिक जीवन

कुछ प्रोटेस्टेंट परंपराओं ने परिवार, शिक्षा, श्रम और सामुदायिक अनुशासन को विशेष महत्व दिया। धार्मिक समुदायों ने अपने सदस्यों के व्यवहार और नैतिक जीवन को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ विकसित कीं।

इनका प्रभाव क्षेत्रों और समुदायों के अनुसार अलग-अलग था। इसलिए प्रोटेस्टेंट समाजों को एक समान सामाजिक व्यवस्था के रूप में नहीं देखा जा सकता।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

भाग–4 : प्रति-सुधार आंदोलन (Counter-Reformation)

20. प्रति-सुधार आंदोलन का अर्थ एवं परिचय

प्रति-सुधार आंदोलन यूरोप में सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा किए गए धार्मिक, संस्थागत, शैक्षिक और संगठनात्मक सुधारों की व्यापक प्रक्रिया थी। इसे अंग्रेजी में *Counter-Reformation* कहा जाता है। इतिहासलेखन में इसके लिए *Catholic Reformation* अर्थात् कैथोलिक धर्म-सुधार शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

धर्म-सुधार आंदोलन के कारण पश्चिमी ईसाई जगत में रोमन कैथोलिक चर्च की धार्मिक एकता को चुनौती मिली। जर्मनी, स्विट्जरलैंड, इंग्लैंड, स्कॉटलैंड और यूरोप के अन्य क्षेत्रों में प्रोटेस्टेंट परंपराएँ विकसित हुईं। इसके प्रत्युत्तर में कैथोलिक चर्च ने अपनी धार्मिक शिक्षाओं को स्पष्ट किया, पादरियों के प्रशिक्षण और अनुशासन पर बल दिया तथा शिक्षा और मिशनरी गतिविधियों को संगठित किया।

प्रति-सुधार आंदोलन को केवल प्रोटेस्टेंटवाद के विरोध तक सीमित करके देखना उचित नहीं है। कैथोलिक चर्च के भीतर सुधार की माँगें मार्टिन लूथर से पहले भी उठती रही थीं। अनेक धार्मिक समुदाय चर्च के आध्यात्मिक जीवन, शिक्षा और अनुशासन को बेहतर बनाने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए प्रति-सुधार आंदोलन में आंतरिक सुधार और प्रोटेस्टेंट विचारों के प्रति प्रतिक्रिया, दोनों पक्ष शामिल थे।

20.1 प्रति-सुधार आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ

1. रोमन कैथोलिक चर्च की संस्थागत कमियों को दूर करने का प्रयास।
2. धार्मिक सिद्धांतों की पुनः पुष्टि।
3. पादरियों के प्रशिक्षण और अनुशासन में सुधार।
4. शिक्षा और धार्मिक प्रचार का विस्तार।
5. जेसुइट जैसे धार्मिक संगठनों की भूमिका में वृद्धि।
6. पोप और कैथोलिक चर्च की संस्थागत स्थिति को मजबूत करने का प्रयास।
7. कैथोलिक धार्मिक कला और वास्तुकला का विकास।
8. प्रोटेस्टेंट विचारों का वैचारिक प्रतिवाद।
9. मिशनरी गतिविधियों का विस्तार।
10. यूरोप तथा यूरोप के बाहर कैथोलिक धर्म का प्रसार।

21. प्रति-सुधार आंदोलन के प्रमुख कारण

21.1 धर्म-सुधार आंदोलन की चुनौती

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

प्रति-सुधार आंदोलन का सबसे प्रमुख कारण प्रोटेस्टेंट धर्म-सुधार आंदोलन का विस्तार था। लूथर, कैल्विन और अन्य सुधारकों ने कैथोलिक चर्च की धार्मिक मान्यताओं और संस्थागत अधिकारों को चुनौती दी।

इससे यूरोप के अनेक क्षेत्रों में कैथोलिक चर्च का प्रभाव कम हुआ। चर्च के सामने अपने धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या करने, अपनी संस्थाओं में सुधार करने और अपने अनुयायियों को संगठित रखने की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

21.2 चर्च की आंतरिक समस्याएँ

कैथोलिक चर्च के भीतर कुछ पदाधिकारियों के आचरण, पदों की खरीद-फरोख्त, पादरियों के अपर्याप्त प्रशिक्षण और धार्मिक अनुशासन की कमियों की आलोचना की जाती थी।

प्रति-सुधार आंदोलन के समर्थकों ने इन समस्याओं को दूर करने पर बल दिया। उनका उद्देश्य चर्च की संस्थाओं को अधिक अनुशासित बनाना और धार्मिक जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना था।

21.3 पोप की सत्ता की रक्षा

धर्म-सुधार आंदोलन ने पोप की धार्मिक सत्ता और कैथोलिक चर्च की संस्थागत एकता को चुनौती दी। प्रति-सुधार आंदोलन के दौरान कैथोलिक नेतृत्व ने चर्च के सिद्धांतों तथा संगठन की रक्षा करने का प्रयास किया।

इसके अंतर्गत पोप की भूमिका, पादरियों के अधिकार और कैथोलिक धार्मिक परंपराओं को स्पष्ट किया गया।

21.4 कैथोलिक धार्मिक पहचान का पुनर्गठन

प्रोटेस्टेंट परंपराओं के विस्तार से यूरोप में धार्मिक प्रतिस्पर्धा बढ़ी। कैथोलिक चर्च ने अपने धार्मिक सिद्धांतों को अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया और शिक्षा, उपदेश तथा मिशनरी कार्यों के माध्यम से अपनी पहचान को मजबूत करने का प्रयास किया।

21.5 धार्मिक अनुशासन और नैतिक सुधार

प्रति-सुधार आंदोलन में पादरियों के प्रशिक्षण, धार्मिक शिक्षा और नैतिक अनुशासन को विशेष महत्त्व दिया गया। चर्च के अधिकारियों से अपेक्षा की गई कि वे अपने धार्मिक दायित्वों का अधिक गंभीरता से पालन करें।

इन सुधारों का उद्देश्य कैथोलिक संस्थाओं की विश्वसनीयता बढ़ाना तथा अनुयायियों के धार्मिक जीवन को व्यवस्थित करना था।

22. ट्रेंट की परिषद (Council of Trent)

प्रति-सुधार आंदोलन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाओं में ट्रेंट की परिषद का विशेष स्थान है। यह परिषद 1545 से 1563 ई. के बीच अलग-अलग चरणों में आयोजित हुई। इसमें कैथोलिक चर्च के प्रमुख धार्मिक सिद्धांतों, अनुशासन और संस्थागत सुधारों पर विचार किया गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

22.1 परिषद की पृष्ठभूमि

धर्म-सुधार आंदोलन के कारण कैथोलिक चर्च के सामने धार्मिक और संगठनात्मक चुनौतियाँ उत्पन्न हुई थीं। चर्च के नेतृत्व को यह आवश्यकता महसूस हुई कि कैथोलिक सिद्धांतों को स्पष्ट किया जाए और संस्थागत कमियों को दूर करने के लिए कदम उठाए जाएँ।

इसी उद्देश्य से ट्रेंट की परिषद आयोजित की गई।

22.2 कैथोलिक धार्मिक सिद्धांतों की पुष्टि

परिषद ने कैथोलिक धर्मशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों को स्पष्ट किया। इनमें बाइबिल और चर्च की परंपरा का संबंध, आस्था और अच्छे कर्मों की भूमिका तथा संस्कारों का महत्त्व शामिल था।

कैथोलिक चर्च ने बाइबिल और परंपरा दोनों को धार्मिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण आधार के रूप में स्वीकार किया। यह दृष्टिकोण लूथर जैसे सुधारकों के उस आग्रह से अलग था जिसमें बाइबिल को ईसाई सिद्धांतों का सर्वोच्च मानक माना गया था।

22.3 सात संस्कारों की पुष्टि

ट्रेंट की परिषद ने कैथोलिक परंपरा में मान्य सात संस्कारों की पुष्टि की। ये हैं—

1. बपतिस्मा।
2. दृढ़ीकरण।
3. यूखरिस्त अथवा प्रभु भोज।
4. प्रायश्चित अथवा मेल-मिलाप।
5. रोगियों का अभिषेक।
6. पवित्र आदेश।
7. विवाह।

प्रोटेस्टेंट परंपराओं में इन संस्कारों की संख्या और धार्मिक व्याख्या अलग-अलग रही। कुछ प्रमुख प्रोटेस्टेंट परंपराएँ विशेष रूप से बपतिस्मा और प्रभु भोज को प्रमुख संस्कारों के रूप में स्वीकार करती हैं।

22.4 पादरियों के प्रशिक्षण में सुधार

परिषद ने पादरियों की शिक्षा और प्रशिक्षण को बेहतर बनाने पर बल दिया। विभिन्न क्षेत्रों में पादरियों के प्रशिक्षण के लिए सेमिनरी स्थापित करने की दिशा में कदम उठाए गए।

इससे धार्मिक शिक्षा को अधिक व्यवस्थित बनाने तथा पादरियों के ज्ञान और अनुशासन में सुधार करने का प्रयास हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

22.5 धार्मिक पदों के दुरुपयोग पर नियंत्रण

परिषद ने चर्च के पदाधिकारियों के आचरण और धार्मिक दायित्वों पर बल दिया। पदों से जुड़े आर्थिक दुरुपयोग तथा अनुशासनहीनता को सीमित करने के प्रयास किए गए।

इन सुधारों का उद्देश्य चर्च की संस्थागत विश्वसनीयता बढ़ाना और धार्मिक जीवन को अधिक अनुशासित बनाना था।

22.6 ट्रेंट की परिषद का महत्व

ट्रेंट की परिषद ने कैथोलिक चर्च की धार्मिक पहचान को स्पष्ट किया और उसकी संस्थाओं के पुनर्गठन में योगदान दिया। इसके निर्णयों ने आगे की कैथोलिक धार्मिक शिक्षा, पादरी प्रशिक्षण और अनुशासन को प्रभावित किया।

इस प्रकार ट्रेंट की परिषद प्रति-सुधार आंदोलन की केंद्रीय संस्था बनी।

23. जेसुइट संघ और इग्नेशियस लोयोला

प्रति-सुधार आंदोलन के विकास में जेसुइट संघ की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसे सोसाइटी ऑफ जीसस भी कहा जाता है। इसकी स्थापना इग्नेशियस लोयोला और उनके साथियों ने की थी। पोप ने 1540 ई. में इस संघ को औपचारिक मान्यता दी।

23.1 इग्नेशियस लोयोला का परिचय

इग्नेशियस लोयोला का जन्म 1491 ई. में स्पेन में हुआ था। सैनिक जीवन के दौरान घायल होने के बाद उन्होंने धार्मिक जीवन की ओर रुख किया।

उनकी प्रसिद्ध रचना *Spiritual Exercises* है। इसमें आध्यात्मिक अनुशासन, आत्मचिंतन, प्रार्थना और धार्मिक साधना से संबंधित निर्देश दिए गए हैं।

लोयोला ने धार्मिक शिक्षा, अनुशासन और संगठित सेवा को विशेष महत्त्व दिया।

23.2 जेसुइट संघ की स्थापना

जेसुइट संघ का उद्देश्य कैथोलिक धार्मिक जीवन को मजबूत करना, शिक्षा का प्रसार करना और मिशनरी गतिविधियों को संगठित करना था।

इस संघ के सदस्यों को कठोर प्रशिक्षण दिया जाता था। उन्होंने यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यालयों, महाविद्यालयों और धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की।

23.3 शिक्षा के क्षेत्र में योगदान

जेसुइट संघ ने शिक्षा को प्रति-सुधार आंदोलन का महत्वपूर्ण माध्यम बनाया। जेसुइट विद्यालयों में धर्मशास्त्र, दर्शन, भाषा, साहित्य और अन्य विषयों का अध्ययन कराया जाता था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इन संस्थाओं ने यूरोप में कैथोलिक शिक्षा को व्यवस्थित बनाने में योगदान दिया। जेसुइट विद्वानों ने विभिन्न क्षेत्रों में बौद्धिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहित किया।

23.4 मिशनरी गतिविधियाँ

जेसुइट मिशनरियों ने यूरोप के बाहर भी कैथोलिक धर्म के प्रचार में भाग लिया। एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी गतिविधियाँ विस्तृत हुईं।

भारत में फ्रांसिस जेवियर ने सोलहवीं शताब्दी में कैथोलिक मिशनरी कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में रॉबर्ट डी नोबिली ने दक्षिण भारत में स्थानीय भाषाओं और सांस्कृतिक परंपराओं का अध्ययन करते हुए मिशनरी कार्य किया।

इन गतिविधियों का मूल्यांकन करते समय धार्मिक प्रसार के साथ यूरोपीय समुद्री विस्तार, उपनिवेशवाद और स्थानीय समाजों के साथ संबंधों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

23.5 जेसुइट संघ का ऐतिहासिक महत्त्व

जेसुइट संघ ने शिक्षा, धार्मिक प्रशिक्षण, मिशनरी गतिविधियों और बौद्धिक संवाद के माध्यम से प्रति-सुधार आंदोलन को व्यापक आधार प्रदान किया।

इसने कैथोलिक चर्च की संस्थागत शक्ति को मजबूत करने में योगदान दिया और यूरोप के बाहर कैथोलिक धर्म के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

24. धार्मिक न्यायाधिकरण और निषिद्ध पुस्तकों की सूची

प्रति-सुधार आंदोलन के दौरान कैथोलिक चर्च ने धार्मिक सिद्धांतों की रक्षा के लिए विभिन्न संस्थागत उपाय अपनाए। इनमें रोमन इन्क्विजिशन और निषिद्ध पुस्तकों की सूची का विशेष स्थान था।

24.1 रोमन इन्क्विजिशन

1542 ई. में पोप पॉल तृतीय ने रोमन इन्क्विजिशन के पुनर्गठन की दिशा में कदम उठाया। इसका उद्देश्य कैथोलिक सिद्धांतों के विरुद्ध माने जाने वाले विचारों और धार्मिक विचलनों की जाँच करना था।

इस संस्था ने धार्मिक सिद्धांतों की रक्षा के नाम पर विचारों और प्रकाशनों की निगरानी की। कुछ मामलों में धार्मिक मतभेदों के कारण व्यक्तियों को दंड और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा।

24.2 निषिद्ध पुस्तकों की सूची

1559 ई. में पोप पॉल चतुर्थ के शासनकाल में *Index Librorum Prohibitorum* अर्थात् निषिद्ध पुस्तकों की सूची का महत्त्वपूर्ण प्रारंभिक संस्करण प्रकाशित हुआ।

इस सूची में उन पुस्तकों को शामिल किया जाता था जिन्हें कैथोलिक धार्मिक सिद्धांतों या नैतिक मान्यताओं के लिए अनुचित माना जाता था। समय के साथ इस सूची में परिवर्तन होते रहे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

24.3 विचारों पर नियंत्रण

निषिद्ध पुस्तकों की सूची और धार्मिक न्यायाधिकरण ने धार्मिक विचारों के प्रसार पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। इससे लेखकों, विद्वानों और प्रकाशकों के कार्य पर प्रभाव पड़ा।

इन संस्थाओं ने कैथोलिक धार्मिक पहचान की रक्षा में भूमिका निभाई, लेकिन साथ ही बौद्धिक स्वतंत्रता और विचारों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध भी लगाए।

24.4 ऐतिहासिक मूल्यांकन

प्रति-सुधार आंदोलन का अध्ययन करते समय शिक्षा और आंतरिक सुधारों के साथ धार्मिक नियंत्रण की इन व्यवस्थाओं को भी समझना आवश्यक है। इससे स्पष्ट होता है कि कैथोलिक चर्च ने एक ओर अपनी संस्थाओं को व्यवस्थित करने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर कुछ विचारों के प्रसार को सीमित भी किया।

25. प्रति-सुधार आंदोलन में कला और वास्तुकला

प्रति-सुधार आंदोलन ने यूरोपीय कला और वास्तुकला को भी प्रभावित किया। कैथोलिक चर्च ने धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने, विश्वास को सुदृढ़ करने और अपने अनुयायियों को प्रभावित करने के लिए कला का उपयोग किया।

25.1 बारोक कला का विकास

बारोक कला का विकास मुख्यतः सोलहवीं शताब्दी के अंतिम भाग से सत्रहवीं शताब्दी में हुआ। इसमें नाटकीयता, भावनात्मक अभिव्यक्ति, गति, प्रकाश और छाया का प्रभावशाली प्रयोग दिखाई देता है।

कैथोलिक क्षेत्रों में बारोक कला ने धार्मिक विषयों को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया। हालांकि बारोक कला का विकास केवल प्रति-सुधार आंदोलन के कारण नहीं हुआ; इसके राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भ भी थे।

25.2 धार्मिक चित्रकला

कैथोलिक चर्च ने ऐसी कलाकृतियों को प्रोत्साहित किया जो धार्मिक कथाओं, संतों और ईसाई विश्वासों को स्पष्ट तथा भावनात्मक रूप में प्रस्तुत करती थीं।

चित्रकारों ने प्रकाश, रंग और मानवीय भावनाओं के माध्यम से धार्मिक विषयों को अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया।

25.3 वास्तुकला

कैथोलिक क्षेत्रों में चर्चों और धार्मिक भवनों की वास्तुकला को भव्यता तथा भावनात्मक प्रभाव के साथ विकसित किया गया। विशाल गुंबदों, अलंकृत आंतरिक सज्जा और विस्तृत स्थापत्य संरचनाओं का उपयोग हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इस वास्तुकला का उद्देश्य धार्मिक संस्थाओं की प्रतिष्ठा को प्रदर्शित करना तथा उपासना के वातावरण को प्रभावशाली बनाना था।

25.4 संगीत का विकास

प्रति-सुधार आंदोलन ने धार्मिक संगीत की परंपराओं को भी प्रभावित किया। चर्च संगीत में स्पष्टता, सामूहिक गायन और धार्मिक पाठ की समझ को महत्त्व दिया गया।

जियोवानी पियरलुइजी दा पालेस्त्रीना कैथोलिक चर्च संगीत के प्रमुख संगीतकारों में गिने जाते हैं। उनके कार्यों ने पुनर्जागरणकालीन धार्मिक संगीत की परंपरा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

26. प्रति-सुधार आंदोलन के प्रमुख परिणाम

26.1 कैथोलिक चर्च का पुनर्गठन

प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक चर्च की धार्मिक शिक्षा, पादरी प्रशिक्षण और संस्थागत अनुशासन को व्यवस्थित करने में योगदान दिया।

ट्रेंट की परिषद के निर्णयों ने कैथोलिक धार्मिक सिद्धांतों को अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया।

26.2 कैथोलिक धार्मिक पहचान की मजबूती

प्रोटेस्टेंट विस्तार के प्रत्युत्तर में कैथोलिक चर्च ने अपनी धार्मिक पहचान को मजबूत किया। धार्मिक शिक्षा, उपदेश, मिशनरी गतिविधियों और संस्थागत सुधारों के माध्यम से कैथोलिक समुदायों को संगठित किया गया।

26.3 शिक्षा का विस्तार

जेसुइट संघ तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं ने विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में कैथोलिक शिक्षा का विस्तार हुआ।

26.4 मिशनरी गतिविधियों का विकास

प्रति-सुधार आंदोलन के दौरान कैथोलिक मिशनरी गतिविधियाँ यूरोप के बाहर भी विस्तृत हुईं। एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के अनेक क्षेत्रों में कैथोलिक धार्मिक संस्थाओं की स्थापना हुई।

इन गतिविधियों ने वैश्विक धार्मिक संपर्कों को प्रभावित किया। लेकिन इनके साथ यूरोपीय उपनिवेशवाद और स्थानीय समाजों के साथ जटिल संबंध भी जुड़े थे।

26.5 धार्मिक संघर्षों की निरंतरता

प्रति-सुधार आंदोलन कैथोलिक चर्च की स्थिति को मजबूत करने में सफल रहा, लेकिन उसने यूरोप की धार्मिक एकता पुनः स्थापित नहीं की। कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट समुदायों के बीच संघर्ष अनेक क्षेत्रों में जारी रहे।

Dr. RAkesh Mohan NautiyaL

सत्रहवीं शताब्दी में धार्मिक तथा राजनीतिक संघर्षों ने यूरोपीय इतिहास को प्रभावित किया। तीस वर्षीय युद्ध (1618–1648) इसका प्रमुख उदाहरण है।

26.6 धार्मिक सहिष्णुता के विकास पर प्रभाव

धर्म-सुधार और प्रति-सुधार आंदोलनों के कारण यूरोप में धार्मिक विविधता स्थायी रूप से बढ़ी। इससे धार्मिक सहअस्तित्व और राजनीतिक स्थिरता के प्रश्न महत्वपूर्ण बने।

हालांकि धार्मिक सहिष्णुता का विकास तत्काल नहीं हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में लंबे संघर्षों, राजनीतिक समझौतों और वैचारिक परिवर्तनों के बाद ही धार्मिक सहिष्णुता को व्यापक स्वीकृति मिलने लगी।

भाग–5 : पुनर्जागरण, धर्म-सुधार और प्रति-सुधार का तुलनात्मक अध्ययन

27. तीनों आंदोलनों के बीच संबंध

पुनर्जागरण, धर्म-सुधार और प्रति-सुधार आधुनिक यूरोपीय इतिहास की परस्पर संबंधित, लेकिन अलग-अलग प्रक्रियाएँ थीं।

पुनर्जागरण का प्रमुख क्षेत्र साहित्य, कला, शिक्षा और बौद्धिक चिंतन था। धर्म-सुधार आंदोलन मुख्यतः ईसाई सिद्धांतों, धार्मिक अधिकार और चर्च की संस्थागत व्यवस्था से संबंधित था। प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक चर्च की धार्मिक शिक्षाओं तथा संस्थागत अनुशासन को पुनर्गठित करने का प्रयास किया।

इनके बीच संबंधों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

27.1 पुनर्जागरण और धर्म-सुधार

पुनर्जागरण के मानवतावाद ने मूल ग्रंथों के अध्ययन और आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित किया। इससे बाइबिल के पाठ, भाषा और व्याख्या पर नए प्रकार की चर्चा संभव हुई।

मुद्रण कला के विकास ने मानवतावादी साहित्य और सुधारवादी विचारों को व्यापक स्तर पर प्रसारित किया।

फिर भी दोनों आंदोलनों के उद्देश्य अलग थे। पुनर्जागरण के अनेक विद्वान चर्च से अलग नहीं हुए, जबकि धर्म-सुधार आंदोलन ने अनेक क्षेत्रों में धार्मिक संस्थागत विभाजन उत्पन्न किया।

27.2 धर्म-सुधार और प्रति-सुधार

धर्म-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक चर्च के अधिकारों तथा धार्मिक सिद्धांतों को चुनौती दी। इसके प्रत्युत्तर में कैथोलिक चर्च ने अपने सिद्धांतों की पुनः पुष्टि की और संस्थागत सुधार किए।

ट्रेंट की परिषद तथा जेसुइट संघ इस प्रक्रिया के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

27.3 पुनर्जागरण और प्रति-सुधार

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

पुनर्जागरणकालीन कला, साहित्य और शिक्षा ने कैथोलिक चर्च को भी प्रभावित किया। प्रति-सुधार आंदोलन के दौरान कला, संगीत और शिक्षा को धार्मिक उद्देश्यों के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया गया।

इस प्रकार पुनर्जागरण की सांस्कृतिक उपलब्धियों का उपयोग कैथोलिक धार्मिक जीवन में भी हुआ।

28. पुनर्जागरण, धर्म-सुधार और प्रति-सुधार में अंतर

तुलना का आधार	पुनर्जागरण	धर्म-सुधार आंदोलन	प्रति-सुधार आंदोलन
प्रमुख काल	चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी	मुख्यतः सोलहवीं शताब्दी से आगे	मुख्यतः सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ
प्रमुख केंद्र	प्रारंभ में इटली	जर्मनी, स्विट्जरलैंड, इंग्लैंड और अन्य क्षेत्र	कैथोलिक यूरोप, विशेषकर इटली और स्पेन
मुख्य उद्देश्य	शास्त्रीय ज्ञान, कला और मानवतावादी शिक्षा का विकास	चर्च की मान्यताओं और धार्मिक प्रथाओं में सुधार	कैथोलिक सिद्धांतों की पुष्टि और चर्च का आंतरिक सुधार
प्रमुख आधार	मानवतावाद और शास्त्रीय अध्ययन	बाइबिल, आस्था और धार्मिक अधिकार संबंधी प्रश्न	कैथोलिक धर्मशास्त्र, अनुशासन और संगठन
प्रमुख व्यक्तित्व	पेट्रार्क, बोक्काचियो, लियोनार्दो, माइकेलएंजेलो	मार्टिन लूथर, ज्विंगली, कैल्विन	इग्नेशियस लोयोला तथा ट्रेंट की परिषद के सुधारक
प्रमुख संस्थाएँ	मानवतावादी विद्वत् मंडल, विश्वविद्यालय और संरक्षक परिवार	प्रोटेस्टेंट चर्च और सुधारवादी समुदाय	कैथोलिक चर्च, जेसुइट संघ और धार्मिक परिषदें
प्रमुख माध्यम	साहित्य, कला, शिक्षा और मुद्रण	धार्मिक लेखन, बाइबिल अनुवाद और उपदेश	धार्मिक शिक्षा, मिशन, परिषदें और संस्थागत सुधार
प्रमुख परिणाम	सांस्कृतिक और बौद्धिक परिवर्तन	प्रोटेस्टेंट परंपराओं का विकास	कैथोलिक चर्च का पुनर्गठन

भाग–6 : आधुनिक युग के आगमन पर इन आंदोलनों का समग्र प्रभाव

29. राजनीतिक प्रभाव

पुनर्जागरण, धर्म-सुधार और प्रति-सुधार आंदोलनों ने यूरोप की राजनीतिक संस्थाओं को अलग-अलग तरीकों से प्रभावित किया।

धर्म-सुधार आंदोलन के दौरान अनेक शासकों ने अपने क्षेत्रों में धार्मिक संस्थाओं पर नियंत्रण बढ़ाया। कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीय चर्च विकसित हुए। इससे राज्य और चर्च के संबंधों में परिवर्तन आया।

Dr. Rakesh Mohan Nayak

इंग्लैंड में राजसत्ता और चर्च के बीच संबंधों का पुनर्गठन हुआ। जर्मनी के अनेक क्षेत्रों में राजकुमारों ने धार्मिक सुधारों का समर्थन किया। स्विट्जरलैंड में नगरों की राजनीतिक संस्थाओं ने धर्म-सुधार की प्रक्रिया को प्रभावित किया।

हालांकि धार्मिक परिवर्तन ने राजनीतिक स्थिरता हमेशा नहीं बढ़ाई। फ्रांस के धार्मिक युद्ध और तीस वर्षीय युद्ध जैसे संघर्षों ने यूरोप में गंभीर विनाश उत्पन्न किया।

इस प्रकार इन आंदोलनों ने आधुनिक राज्य के विकास की परिस्थितियों को प्रभावित किया, लेकिन राजनीतिक केंद्रीकरण, राज्य निर्माण और आधुनिक शासन का विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी।

30. सामाजिक प्रभाव

इन आंदोलनों ने सामाजिक जीवन में शिक्षा, नैतिकता, परिवार और व्यक्ति की भूमिका से संबंधित प्रश्नों को प्रभावित किया।

पुनर्जागरण के मानवतावाद ने शिक्षा और व्यक्ति की बौद्धिक क्षमताओं को महत्त्व दिया। धर्म-सुधार आंदोलन ने धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन और धार्मिक समुदायों की भूमिका पर बल दिया। प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक धार्मिक अनुशासन तथा शिक्षा को व्यवस्थित किया।

इन परिवर्तनों ने सामाजिक जीवन के अनेक पहलुओं को प्रभावित किया। हालांकि महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक भागीदारी पर अनेक प्रतिबंध बने रहे। धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों का लाभ भी सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँचा।

31. आर्थिक प्रभाव

पुनर्जागरण के विकास में व्यापार, बैंकिंग और नगरों की समृद्धि का महत्त्वपूर्ण योगदान था। आर्थिक संसाधनों ने कला और साहित्य के संरक्षण को संभव बनाया।

धर्म-सुधार आंदोलन के दौरान कुछ क्षेत्रों में चर्च की संपत्ति का पुनर्वितरण हुआ। इंग्लैंड में मठों के विघटन ने भूमि और संपत्ति के स्वामित्व को प्रभावित किया।

फिर भी इन आंदोलनों को आधुनिक पूँजीवाद के विकास का एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता। व्यापारिक विस्तार, औपनिवेशिक गतिविधियाँ, वित्तीय संस्थाएँ, श्रम संबंध और तकनीकी परिवर्तन भी आधुनिक आर्थिक व्यवस्था के विकास में महत्त्वपूर्ण थे।

32. धार्मिक प्रभाव

इन आंदोलनों का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव यूरोप के धार्मिक जीवन पर पड़ा।

धर्म-सुधार आंदोलन ने प्रोटेस्टेंट परंपराओं का विकास किया और कैथोलिक चर्च की संस्थागत एकता को चुनौती दी। प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक सिद्धांतों को स्पष्ट किया तथा चर्च की संस्थाओं में सुधार किए।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप का धार्मिक मानचित्र बदल गया। धार्मिक विविधता बढ़ी, लेकिन अनेक क्षेत्रों में संघर्ष और उत्पीड़न भी जारी रहे।

दीर्घकाल में धार्मिक सहिष्णुता, अंतरात्मा की स्वतंत्रता और राज्य की धार्मिक भूमिका पर विचार-विमर्श को महत्व मिला।

33. शैक्षिक और बौद्धिक प्रभाव

पुनर्जागरण ने मानवतावादी शिक्षा, शास्त्रीय साहित्य और आलोचनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहित किया। मुद्रण तकनीक ने पुस्तकों की उपलब्धता बढ़ाई और ज्ञान के प्रसार को गति दी।

धर्म-सुधार आंदोलन ने स्थानीय भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद तथा धार्मिक शिक्षा को महत्व दिया। प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक विद्यालयों और पादरी प्रशिक्षण संस्थाओं को विकसित किया।

इन प्रक्रियाओं से यूरोप में शिक्षा और बौद्धिक गतिविधियों के नए केंद्र विकसित हुए। आगे चलकर वैज्ञानिक क्रांति तथा आधुनिक बौद्धिक परंपराओं के विकास के लिए भी अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार हुईं।

34. कला और साहित्य पर प्रभाव

पुनर्जागरण ने कला और साहित्य में मानव अनुभव, प्रकृति, इतिहास और शास्त्रीय परंपराओं के अध्ययन को बढ़ावा दिया।

धर्म-सुधार आंदोलन ने धार्मिक लेखन, उपदेश और स्थानीय भाषाओं के साहित्य को प्रोत्साहित किया। प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक कला, संगीत और वास्तुकला को धार्मिक अभिव्यक्ति का प्रभावशाली माध्यम बनाया।

इन परिवर्तनों से यूरोप की सांस्कृतिक परंपराएँ अधिक विविध हुईं। कला और साहित्य में धार्मिक तथा लौकिक विषयों के विभिन्न रूप विकसित हुए।

35. वैज्ञानिक विकास पर प्रभाव

पुनर्जागरणकालीन विद्वत्ता ने प्राचीन वैज्ञानिक ग्रंथों के पुनर्पाठ और प्राकृतिक जगत के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। गणित, खगोलशास्त्र और शरीर-विज्ञान में उल्लेखनीय कार्य हुए।

इसके बाद सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में वैज्ञानिक क्रांति विकसित हुई। कोपरनिकस, गैलीलियो, केप्लर और न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों ने प्रकृति के अध्ययन में नए सिद्धांतों और पद्धतियों का विकास किया।

हालाँकि वैज्ञानिक क्रांति को केवल पुनर्जागरण का परिणाम नहीं माना जा सकता। इसमें मध्यकालीन ज्ञान परंपराओं, गणितीय विकास, तकनीकी परिवर्तनों और विद्वानों के अंतरराष्ट्रीय संपर्कों का भी योगदान था।

36. इतिहासकारों के दृष्टिकोण से पुनर्जागरण और धर्म-सुधार

इन आंदोलनों की व्याख्या इतिहासकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से की है।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

36.1 जैकब बर्कहार्ट

स्विस इतिहासकार जैकब बर्कहार्ट की पुस्तक *The Civilization of the Renaissance in Italy* पुनर्जागरण के अध्ययन की एक प्रसिद्ध कृति है। इसमें उन्होंने इटली के पुनर्जागरणकालीन समाज, व्यक्ति की भूमिका, राजनीति, कला और संस्कृति का विश्लेषण किया।

बर्कहार्ट ने पुनर्जागरण को आधुनिक व्यक्तित्व और व्यक्तिवाद के विकास से जोड़कर देखा। हालांकि बाद के इतिहासकारों ने इस व्याख्या की आलोचनात्मक समीक्षा की और मध्यकालीन समाज में भी व्यक्तित्व तथा सांस्कृतिक नवाचारों की उपस्थिति पर बल दिया।

36.2 पीटर बर्क

इतिहासकार पीटर बर्क ने पुनर्जागरण को एक व्यापक सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में समझने पर बल दिया। उनकी रचनाओं में यह स्पष्ट होता है कि पुनर्जागरण के विचार विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बदलते हुए फैले।

उनका दृष्टिकोण पुनर्जागरण को केवल महान कलाकारों की उपलब्धियों तक सीमित न रखकर सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में समझने में सहायता करता है।

36.3 रोलैंड बेनटन

इतिहासकार रोलैंड एच. बेनटन ने धर्म-सुधार और प्रति-सुधार आंदोलनों के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी पुस्तक *The Reformation of the Sixteenth Century* धर्म-सुधार आंदोलन की पृष्ठभूमि, प्रमुख नेताओं और परिणामों को समझने के लिए उपयोगी है।

36.4 डायरमेड मैककुलोच

डायरमेड मैककुलोच की पुस्तक *The Reformation: A History* धर्म-सुधार आंदोलन के व्यापक यूरोपीय संदर्भ को प्रस्तुत करती है। इसमें विभिन्न धार्मिक परंपराओं, राजनीतिक परिस्थितियों और सामाजिक परिवर्तनों का विश्लेषण किया गया है।

36.5 निष्कर्षात्मक दृष्टिकोण

इतिहासकारों के दृष्टिकोणों से स्पष्ट होता है कि पुनर्जागरण और धर्म-सुधार को केवल कुछ महान व्यक्तियों की उपलब्धियों के रूप में नहीं समझना चाहिए। ये आंदोलन व्यापक आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से जुड़े थे।

37. निष्कर्ष

आधुनिक युग का आगमन यूरोपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया में पुनर्जागरण, धर्म-सुधार आंदोलन और प्रति-सुधार आंदोलन ने अलग-अलग, लेकिन परस्पर संबंधित भूमिकाएँ निभाईं।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

पुनर्जागरण ने प्राचीन यूनानी और रोमन साहित्य के पुनः अध्ययन, मानवतावादी शिक्षा, कला, साहित्य और बौद्धिक जिज्ञासा को प्रोत्साहित किया। इसने व्यक्ति की रचनात्मकता, विवेक और नैतिक क्षमता को अधिक महत्त्व दिया। लियोनार्दो दा विंची, माइकेलएंजेलो, राफेल, पेट्रार्क और इरास्मस जैसे व्यक्तित्व इस व्यापक सांस्कृतिक परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि थे।

धर्म-सुधार आंदोलन ने रोमन कैथोलिक चर्च की कुछ धार्मिक प्रथाओं और संस्थागत अधिकारों को चुनौती दी। मार्टिन लूथर, ज्विंगली, कैल्विन और अन्य सुधारकों के विचारों ने पश्चिमी ईसाई जगत में व्यापक धार्मिक परिवर्तन उत्पन्न किए। इसके परिणामस्वरूप प्रोटेस्टेंट परंपराओं का विकास हुआ तथा यूरोप के धार्मिक और राजनीतिक मानचित्र में परिवर्तन आया।

प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक चर्च की संस्थागत कमियों को दूर करने, धार्मिक सिद्धांतों को स्पष्ट करने, पादरियों के प्रशिक्षण को बेहतर बनाने और शिक्षा तथा मिशनरी गतिविधियों को संगठित करने का प्रयास किया। ट्रेंट की परिषद और जेसुइट संघ इस आंदोलन के प्रमुख आधार बने। हालांकि कैथोलिक चर्च के सुधारों के साथ धार्मिक नियंत्रण और असहमति के दमन की प्रवृत्तियाँ भी बनी रहीं।

इन तीनों आंदोलनों ने आधुनिक यूरोप के विकास की परिस्थितियों को प्रभावित किया। इनके परिणामस्वरूप शिक्षा, साहित्य, कला, धार्मिक संस्थाओं और राजनीतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन आए। फिर भी आधुनिक युग का आगमन केवल इन आंदोलनों का परिणाम नहीं था। व्यापारिक विस्तार, समुद्री यात्राएँ, केंद्रीकृत राज्यों का उदय, सामंती संबंधों में परिवर्तन और वैज्ञानिक क्रांति भी इस प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण अंग थे।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पुनर्जागरण ने यूरोप को नई बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि प्रदान की, धर्म-सुधार आंदोलन ने धार्मिक अधिकार तथा आस्था के प्रश्नों पर व्यापक बहस को जन्म दिया और प्रति-सुधार आंदोलन ने कैथोलिक चर्च को अपने सिद्धांतों तथा संस्थागत व्यवस्था के पुनर्गठन के लिए प्रेरित किया। इन प्रक्रियाओं ने मिलकर आधुनिक यूरोप के निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार की।

Dr. RAKESH Mohan Nautiyal

पूर्ण राजतंत्र का विकास: फ्रांस, स्पेन और ब्रिटेन

प्रस्तावना

यूरोप के इतिहास में पंद्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। मध्यकालीन यूरोप में सत्ता अनेक सामंतों, चर्च, नगरों तथा क्षेत्रीय शासकों के बीच विभाजित थी। राजा की शक्ति अक्सर सामंतों की सैन्य और आर्थिक क्षमता से सीमित रहती थी। इसके अतिरिक्त, रोमन कैथोलिक चर्च का धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन पर व्यापक प्रभाव था। इस व्यवस्था में परिवर्तन के परिणामस्वरूप यूरोप में शक्तिशाली केंद्रीकृत राजतंत्रों का विकास हुआ।

पूर्ण राजतंत्र (Absolute Monarchy) ऐसी शासन-व्यवस्था थी, जिसमें राजा राज्य की सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता का केंद्र होता था। वह प्रशासन, सेना, कर-व्यवस्था और विदेश नीति पर व्यापक नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास करता था। पूर्ण राजतंत्र के समर्थक प्रायः राजा की सत्ता को ईश्वर-प्रदत्त अधिकार से जोड़ते थे। इस सिद्धांत को *दैवी अधिकार का सिद्धांत (Divine Right of Kings)* कहा जाता है।

हालाँकि, पूर्ण राजतंत्र का अर्थ यह नहीं था कि राजा की शक्ति प्रत्येक परिस्थिति में असीमित थी। उसे परंपराओं, आर्थिक संसाधनों, स्थानीय विशेषाधिकारों, धार्मिक संस्थाओं तथा राजनीतिक विरोध का सामना करना पड़ता था। फ्रांस और स्पेन में राजसत्ता के केंद्रीकरण ने अपेक्षाकृत निरंकुश शासन को जन्म दिया, जबकि ब्रिटेन में राजसत्ता और संसद के बीच संघर्ष के परिणामस्वरूप संवैधानिक राजतंत्र का विकास हुआ।

यूरोप में पूर्ण राजतंत्र के विकास को समझने के लिए फ्रांस, स्पेन और ब्रिटेन का अध्ययन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

भाग–1 : फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र का विकास

1. फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र की पृष्ठभूमि

मध्यकालीन फ्रांस में राजा की शक्ति सामंतों की स्वतंत्रता के कारण सीमित थी। फ्रांस के अनेक बड़े सामंत अपने क्षेत्रों में लगभग स्वतंत्र शासकों की तरह शासन करते थे। उनके पास निजी सेनाएँ, किले और भूमि से प्राप्त पर्याप्त आय थी। इस कारण केंद्रीय राजसत्ता को देश के सभी भागों पर समान रूप से नियंत्रण स्थापित करने में कठिनाई होती थी।

फ्रांस और इंग्लैंड के बीच हुए दीर्घकालीन संघर्ष, जिसे इतिहास में **सौ वर्षीय युद्ध (1337–1453)** कहा जाता है, ने फ्रांसीसी राजनीतिक व्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया। युद्ध के दौरान फ्रांस को आर्थिक संकट, आंतरिक अशांति तथा विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा। अंततः फ्रांसीसी शासकों ने स्थायी सेना, नियमित कर-व्यवस्था और अधिक संगठित प्रशासन की आवश्यकता अनुभव की।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

सौ वर्षीय युद्ध के बाद फ्रांसीसी राजाओं को अपनी सत्ता मजबूत करने का अवसर मिला। उन्होंने सामंतों की स्वतंत्रता सीमित करने, राजकीय अधिकारियों की नियुक्ति करने तथा सेना और वित्त पर नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास किए। इसी प्रक्रिया ने आगे चलकर फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र की नींव रखी।

2. लुई ग्यारहवें का योगदान (1461–1483)

फ्रांस में राजसत्ता के केंद्रीकरण में लुई ग्यारहवें का महत्त्वपूर्ण योगदान था। उसने शक्तिशाली सामंतों की राजनीतिक और सैन्य शक्ति को नियंत्रित करने का प्रयास किया। उसका उद्देश्य फ्रांस के विभिन्न क्षेत्रों को एक अधिक संगठित राजकीय व्यवस्था के अंतर्गत लाना था।

लुई ग्यारहवें ने केवल सैन्य शक्ति पर निर्भर रहने के बजाय कूटनीति, राजनीतिक समझौतों और राजकीय अधिकारियों के माध्यम से अपनी स्थिति मजबूत की। उसने सामंतों के बीच मतभेदों का लाभ उठाया और राजसत्ता के विरोधियों को कमजोर किया। बरगंडी जैसे शक्तिशाली सामंती क्षेत्रों के साथ संघर्ष में राजसत्ता को महत्त्वपूर्ण लाभ मिला।

उसके शासनकाल में फ्रांस की राजकीय सत्ता का विस्तार हुआ और राजा की केंद्रीय भूमिका अधिक मजबूत हुई। उसने व्यापार तथा नगरों के विकास को भी प्रोत्साहन दिया, क्योंकि आर्थिक गतिविधियों के विस्तार से राजकोष को लाभ मिलता था।

इस प्रकार लुई ग्यारहवें ने उस केंद्रीकृत राजतंत्र के निर्माण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जिसे बाद के फ्रांसीसी शासकों ने और अधिक विकसित किया।

3. फ्रांस्वा प्रथम और राजकीय शक्ति का विस्तार (1515–1547)

फ्रांस्वा प्रथम के शासनकाल में फ्रांस की राजसत्ता ने प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपनी स्थिति मजबूत की। वह पुनर्जागरण संस्कृति का संरक्षक था और उसने कला, साहित्य तथा शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। उसके शासनकाल में फ्रांस में राजकीय प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक विकास के बीच घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है।

1516 में पोप के साथ हुए बोलोन्या के समझौते ने फ्रांसीसी राजा को फ्रांस के चर्च में उच्च पदों पर नियुक्तियों के संबंध में महत्त्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए। इससे फ्रांस के धार्मिक मामलों पर राजकीय प्रभाव बढ़ा, यद्यपि चर्च की सभी शक्तियाँ राजा के अधीन नहीं हो गई थीं।

फ्रांस्वा प्रथम ने प्रशासनिक एकरूपता बढ़ाने का प्रयास किया। 1539 के विलर्स-कोत्रे अध्यादेश ने राजकीय तथा न्यायिक अभिलेखों में फ्रांसीसी भाषा के प्रयोग को बढ़ावा दिया। इससे प्रशासनिक कार्यों में लैटिन के स्थान पर फ्रांसीसी भाषा का महत्त्व बढ़ा।

हालाँकि, फ्रांस्वा प्रथम को हैब्सबर्ग शासक चार्ल्स पंचम के साथ लगातार युद्धों का सामना करना पड़ा। इन युद्धों ने राजकोष पर भारी दबाव डाला। फिर भी उसके शासनकाल में फ्रांसीसी राजतंत्र की प्रतिष्ठा और प्रशासनिक क्षमता में वृद्धि हुई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

4. धार्मिक संघर्ष और राजसत्ता की चुनौती

सोलहवीं शताब्दी में फ्रांस में प्रोटेस्टेंट धर्म-सुधार आंदोलन का प्रभाव बढ़ा। फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंटों को सामान्यतः **ह्यूगोनॉट (Huguenots)** कहा जाता था। कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों के बीच धार्मिक मतभेद धीरे-धीरे राजनीतिक संघर्ष में बदल गए।

1562 से 1598 के बीच फ्रांस धार्मिक युद्धों से प्रभावित रहा। इन संघर्षों ने देश की अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और राजकीय प्रशासन को कमजोर किया। शक्तिशाली कुलीन परिवारों ने धार्मिक गुटों का समर्थन करके अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत करने का प्रयास किया।

1572 में सेंट बार्थोलोम्यू दिवस के नरसंहार में अनेक फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंट मारे गए। इस घटना ने धार्मिक तनाव को और बढ़ा दिया। राजसत्ता के सामने चुनौती थी कि वह धार्मिक गुटों के संघर्ष को नियंत्रित करके देश में राजनीतिक स्थिरता स्थापित करे।

इन परिस्थितियों में हेनरी चतुर्थ का उदय हुआ। उसने धार्मिक सहिष्णुता और राजनीतिक समझौते की नीति अपनाकर फ्रांस को गृहयुद्ध से बाहर निकालने का प्रयास किया।

5. हेनरी चतुर्थ और नांत का राजादेश (1589–1610)

हेनरी चतुर्थ फ्रांस में बोरबोन राजवंश का संस्थापक था। प्रारंभ में वह प्रोटेस्टेंट था, लेकिन फ्रांस के राजा के रूप में व्यापक स्वीकृति प्राप्त करने के लिए उसने 1593 में कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लिया। उसका प्रसिद्ध कथन, "पेरिस एक मिस्सा के योग्य है," प्रायः उसकी व्यावहारिक राजनीतिक नीति को व्यक्त करने के लिए उद्धृत किया जाता है; किंतु इसके शब्दों और ऐतिहासिक संदर्भ के संबंध में सावधानी आवश्यक है।

1598 में हेनरी चतुर्थ ने **नांत का राजादेश (Edict of Nantes)** जारी किया। इसके माध्यम से फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंटों को कुछ धार्मिक स्वतंत्रताएँ और नागरिक अधिकार प्रदान किए गए। इस आदेश ने धार्मिक संघर्ष को कम करने तथा राजकीय स्थिरता स्थापित करने में सहायता की।

हेनरी चतुर्थ ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कृषि, व्यापार और सार्वजनिक निर्माण को प्रोत्साहित किया। उसके वित्त मंत्री मैक्सिमिलियन द बेथ्यून, ड्यूक ऑफ सुली ने राजकोष को व्यवस्थित करने तथा आर्थिक संसाधनों के बेहतर उपयोग का प्रयास किया।

हेनरी चतुर्थ की नीतियों का उद्देश्य फ्रांस को धार्मिक संघर्षों से मुक्त करके एक शक्तिशाली राज्य बनाना था। 1610 में उसकी हत्या कर दी गई, लेकिन उसके द्वारा स्थापित स्थिरता ने आगे के केंद्रीकरण का आधार तैयार किया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

6. लुई तेरहवें और कार्डिनल रिशल्यू

लुई तेरहवें ने 1610 से 1643 तक शासन किया। उसके शासनकाल में फ्रांस की राजसत्ता को मजबूत करने में कार्डिनल रिशल्यू की प्रमुख भूमिका रही। रिशल्यू 1624 से राजा का मुख्य मंत्री बनकर प्रभावशाली हुआ और उसने केंद्रीय सत्ता को मजबूत करने के लिए कई कदम उठाए।

रिशल्यू का मानना था कि राज्य की एकता और सुरक्षा के लिए सामंतों की स्वतंत्र शक्ति को सीमित करना आवश्यक है। उसने विद्रोही कुलीनों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई की तथा निजी किलों और स्वतंत्र सैन्य शक्ति को नियंत्रित करने की नीति अपनाई।

फ्रांस में ह्यूगोनॉट समुदाय के कुछ किलाबंद केंद्र राजनीतिक और सैन्य शक्ति के रूप में भी कार्य करते थे। रिशल्यू ने 1627–1628 में ला रोशेल की घेराबंदी के माध्यम से उनकी राजनीतिक-सैन्य स्वायत्तता को गंभीर रूप से कमजोर किया। हालाँकि, उसने ह्यूगोनॉटों के सभी धार्मिक अधिकार समाप्त नहीं किए; 1629 के अले के शांति समझौते ने उनके कुछ धार्मिक अधिकार बनाए रखे, लेकिन उनके राजनीतिक-सैन्य विशेषाधिकार सीमित कर दिए।

रिशल्यू ने *इंतेंदां (Intendants)* नामक राजकीय अधिकारियों की भूमिका बढ़ाई। ये अधिकारी प्रांतों में प्रशासन, कर-संग्रह और कानून-व्यवस्था से संबंधित कार्य करते थे। इससे स्थानीय कुलीनों के प्रभाव को चुनौती मिली और केंद्रीय प्रशासन का विस्तार हुआ।

विदेश नीति में रिशल्यू ने हैब्सबर्ग शक्ति को सीमित करने के लिए प्रोटेस्टेंट शक्तियों सहित विभिन्न विरोधियों से सहयोग किया। इससे स्पष्ट होता है कि उसकी नीति में धार्मिक समानता की अपेक्षा राज्यहित और फ्रांस की शक्ति को प्राथमिकता दी जाती थी।

7. लुई चौदहवें और निरंकुश राजतंत्र का उत्कर्ष (1643–1715)

फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण **लुई चौदहवें** का शासनकाल है। वह 1643 में राजा बना, लेकिन प्रारंभिक वर्षों में कार्डिनल मजारां के प्रभाव में शासन चला। 1661 में मजारां की मृत्यु के बाद लुई चौदहवें ने स्वयं शासन का संचालन करने का निर्णय लिया।

लुई चौदहवें से जुड़ा प्रसिद्ध कथन “मैं ही राज्य हूँ” (L’État, c’est moi) अक्सर निरंकुश राजतंत्र की अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। हालाँकि, इस कथन के उसके द्वारा कहे जाने का विश्वसनीय प्रमाण विवादास्पद है। फिर भी उसका शासन राजकीय सत्ता के केंद्रीकरण का प्रमुख उदाहरण है।

(क) सामंतों पर नियंत्रण

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

लुई चौदहवें ने उच्च कुलीनों की राजनीतिक स्वतंत्रता सीमित करने का प्रयास किया। उसने वर्साय के महल को राजकीय दरबार का केंद्र बनाया। सामंतों को दरबार में उपस्थिति और शाही अनुग्रह प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा में शामिल करके उसने उनकी स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधियों पर नियंत्रण बढ़ाया।

वर्साय केवल राजमहल नहीं था, बल्कि राजकीय प्रतिष्ठा, दरबारी संस्कृति और सत्ता के केंद्रीकरण का प्रतीक बन गया। कुलीन वर्ग का एक बड़ा भाग शाही संरक्षण और पदों पर निर्भर होने लगा।

(ख) प्रशासनिक केंद्रीकरण

लुई चौदहवें ने राजकीय अधिकारियों, मंत्रियों और प्रांतीय प्रशासकों के माध्यम से प्रशासन को अधिक प्रभावी बनाया। उसने स्थानीय विशेषाधिकारों को सीमित करने और केंद्रीय आदेशों का पालन सुनिश्चित करने का प्रयास किया।

फिर भी फ्रांस में प्रशासन पूरी तरह एकरूप नहीं था। विभिन्न प्रांतों में अलग-अलग कानून, कर-व्यवस्थाएँ और ऐतिहासिक विशेषाधिकार मौजूद थे। इसलिए निरंकुशता की दिशा में प्रगति के बावजूद राजकीय नियंत्रण की व्यावहारिक सीमाएँ बनी रहीं।

(ग) आर्थिक नीति और कोलबेयर

लुई चौदहवें के वित्त मंत्री जाँ-बातिस्त कोलबेयर ने व्यापार, उद्योग और नौसैनिक शक्ति के विकास को प्रोत्साहित किया। उसकी आर्थिक नीतियाँ वाणिज्यवाद (Mercantilism) से प्रभावित थीं। वाणिज्यवाद के अनुसार राज्य की शक्ति बढ़ाने के लिए निर्यात, घरेलू उद्योग, व्यापारिक कंपनियों और राजकीय आय का विस्तार महत्त्वपूर्ण था।

कोलबेयर ने विनिर्माण, सड़क निर्माण, बंदरगाहों और नौसेना को प्रोत्साहन दिया। इन प्रयासों से फ्रांस की आर्थिक और सामरिक क्षमता में वृद्धि हुई। दूसरी ओर, युद्धों और शाही निर्माण परियोजनाओं पर अत्यधिक व्यय ने राजकोष पर दबाव भी बढ़ाया।

(घ) धार्मिक नीति

लुई चौदहवें ने धार्मिक एकरूपता को राजनीतिक एकता से जोड़कर देखा। 1685 में उसने नांत के राजादेश को निरस्त कर दिया। इसके परिणामस्वरूप फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंटों पर धार्मिक प्रतिबंध बढ़े और बड़ी संख्या में ह्यूगोनॉट देश छोड़कर अन्य यूरोपीय क्षेत्रों में चले गए।

इस नीति ने फ्रांस के कुशल कारीगरों, व्यापारियों और अन्य उत्पादक समूहों के पलायन को प्रोत्साहित किया। इसलिए धार्मिक एकरूपता स्थापित करने के प्रयास का आर्थिक और सामाजिक स्तर पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा।

(ङ) विदेश नीति और युद्ध

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

लुई चौदहवें ने फ्रांस की सीमाओं और यूरोपीय प्रभाव का विस्तार करने के लिए अनेक युद्ध किए। इन युद्धों ने फ्रांस की सैन्य प्रतिष्ठा बढ़ाई, लेकिन उसके आर्थिक संसाधनों पर गंभीर दबाव डाला।

स्पेनिश उत्तराधिकार का युद्ध (1701–1714) विशेष रूप से महँगा सिद्ध हुआ। यद्यपि फ्रांस यूरोप की प्रमुख शक्तियों में बना रहा, फिर भी निरंतर युद्धों और वित्तीय संकट ने निरंकुश राजतंत्र की सीमाएँ उजागर कर दीं।

8. फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र की विशेषताएँ

फ्रांस के पूर्ण राजतंत्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

1. **केंद्रीय सत्ता का विस्तार:** राजा ने प्रशासन और राजनीतिक निर्णयों पर अपना नियंत्रण बढ़ाया।
2. **सामंतों की शक्ति में कमी:** स्वतंत्र सैन्य और राजनीतिक गतिविधियों पर अंकुश लगाया गया।
3. **स्थायी सेना का विकास:** राज्य ने अधिक संगठित सैन्य व्यवस्था स्थापित की।
4. **कर और वित्त पर नियंत्रण:** राजकोष को मजबूत करने के लिए कर-संग्रह तथा आर्थिक नीतियों को विकसित किया गया।
5. **राजकीय अधिकारियों का विस्तार:** प्रांतों में केंद्रीय प्रशासन की पहुँच बढ़ी।
6. **राजकीय प्रतिष्ठा का प्रदर्शन:** वर्साय जैसे महलों, दरबार और कला-संरक्षण के माध्यम से राजा की शक्ति प्रदर्शित की गई।
7. **धार्मिक एकरूपता का प्रयास:** विशेष रूप से लुई चौदहवें के शासन में धार्मिक अल्पसंख्यकों पर प्रतिबंध लगाए गए।
8. **विदेश नीति में सक्रियता:** फ्रांस ने यूरोपीय शक्ति-संतुलन को प्रभावित करने के लिए युद्ध और कूटनीति का सहारा लिया।

9. फ्रांस के पूर्ण राजतंत्र की सीमाएँ और परिणाम

फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र ने राजनीतिक एकता और प्रशासनिक केंद्रीकरण को बढ़ावा दिया। इससे फ्रांस यूरोप की प्रमुख शक्तियों में शामिल हुआ। कला, स्थापत्य और दरबारी संस्कृति का भी उल्लेखनीय विकास हुआ।

लेकिन इस व्यवस्था की गंभीर सीमाएँ थीं। करों का बोझ मुख्यतः सामान्य जनता और कृषकों पर पड़ता था, जबकि अनेक विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को करों में छूट मिलती थी। निरंतर युद्धों और राजकीय खर्चों ने वित्तीय संकट को बढ़ाया। धार्मिक अल्पसंख्यकों के दमन से प्रतिभाशाली लोगों का पलायन हुआ।

अठारहवीं शताब्दी में आर्थिक कठिनाइयों, सामाजिक असमानताओं और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की कमी ने राजतंत्र के विरुद्ध असंतोष को बढ़ाया। अंततः 1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने निरंकुश राजतंत्र की वैधता को चुनौती दी और फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था में ऐतिहासिक परिवर्तन उत्पन्न किया।

10. निष्कर्ष

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र का विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। लुई ग्यारहवें ने केंद्रीकरण की नींव रखी, हेनरी चतुर्थ ने धार्मिक संघर्षों को नियंत्रित करने का प्रयास किया, रिशल्यू ने कुलीनों और प्रांतीय शक्तियों पर अंकुश लगाया तथा लुई चौदहवें ने राजकीय सत्ता को अपने चरम पर पहुँचाया।

फिर भी फ्रांसीसी निरंकुशता पूर्णतः असीमित नहीं थी। आर्थिक संसाधनों, स्थानीय विशेषाधिकारों, धार्मिक मतभेदों और सामाजिक असमानताओं ने उसकी सीमाएँ निर्धारित कीं। इस प्रकार फ्रांस का अनुभव यूरोप में केंद्रीकृत राजतंत्र के विकास तथा उसकी आंतरिक कमजोरियों—दोनों को स्पष्ट करता है।

भाग–2 : स्पेन में पूर्ण राजतंत्र का विकास

1. स्पेन की राजनीतिक पृष्ठभूमि

मध्यकाल में स्पेन आधुनिक अर्थ में एकीकृत राष्ट्र-राज्य नहीं था। इबेरियाई प्रायद्वीप में कैस्टिल, आरागॉन, नवारे और पुर्तगाल सहित कई राजनीतिक इकाइयाँ थीं। प्रायद्वीप के बड़े हिस्से पर लंबे समय तक मुस्लिम शासन रहा। ईसाई राज्यों ने क्रमशः दक्षिण की ओर विस्तार किया, जिसे इतिहास में **रिकॉनक्विस्टा (Reconquista)** कहा जाता है।

रिकॉनक्विस्टा किसी एक युद्ध का नाम नहीं, बल्कि कई शताब्दियों तक चली सैन्य, राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया ने ईसाई राजाओं की सत्ता को विस्तार दिया और धार्मिक पहचान को राजनीतिक वैधता से जोड़ने में योगदान किया।

स्पेन में पूर्ण राजतंत्र का विकास विशेष रूप से कैस्टिल और आरागॉन के राजवंशीय एकीकरण, ग्रेनेडा की विजय, अमेरिका में साम्राज्य-विस्तार तथा हैब्सबर्ग शासकों की नीतियों से संबंधित था। फिर भी स्पेन का एकीकरण फ्रांस की तरह पूर्ण प्रशासनिक एकरूपता में परिवर्तित नहीं हुआ।

2. फर्डिनेंड और इसाबेला का विवाह तथा राजवंशीय एकीकरण

स्पेन में केंद्रीकृत राजसत्ता के विकास में कैस्टिल की इसाबेला प्रथम और आरागॉन के फर्डिनेंड द्वितीय का महत्त्वपूर्ण योगदान था। 1469 में दोनों का विवाह हुआ। इस विवाह से कैस्टिल और आरागॉन के राजवंशों के बीच राजनीतिक संबंध मजबूत हुए।

1474 में इसाबेला कैस्टिल की रानी बनी और 1479 में फर्डिनेंड आरागॉन का राजा बना। दोनों शासकों ने संयुक्त रूप से विदेश नीति, सैन्य अभियान और धार्मिक मामलों में सहयोग किया। हालांकि, उनके राज्य कानूनी, प्रशासनिक और संस्थागत दृष्टि से पूरी तरह एकीकृत नहीं हुए थे। कैस्टिल और आरागॉन के अपने-अपने कानून, संस्थाएँ और राजनीतिक परंपराएँ बनी रहीं।

फर्डिनेंड और इसाबेला ने राजसत्ता के विरोधी कुलीनों को नियंत्रित करने, नगरों पर राजकीय प्रभाव बढ़ाने तथा प्रशासनिक अधिकारियों के माध्यम से केंद्रीय सत्ता को मजबूत करने का प्रयास किया। इस प्रकार राजवंशीय एकीकरण ने आधुनिक स्पेन के निर्माण की दिशा में आधार तैयार किया।

Dr. RAkesh Mohan Natival

3. ग्रेनेडा की विजय (1492)

स्पेन के इतिहास में 1492 एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इसी वर्ष फर्डिनेंड और इसाबेला की सेनाओं ने ग्रेनेडा के नासरी मुस्लिम राज्य पर विजय प्राप्त की। इसके साथ ही इबेरियाई प्रायद्वीप में मुस्लिम राजनीतिक शासन का अंतिम प्रमुख केंद्र समाप्त हो गया।

ग्रेनेडा की विजय को रिकॉनक्विस्टा की पारंपरिक समाप्ति के रूप में देखा जाता है। इससे ईसाई राजाओं की प्रतिष्ठा बढ़ी और राजकीय सत्ता को धार्मिक वैधता प्राप्त हुई। विजय के बाद प्रारंभिक समझौतों में मुस्लिम निवासियों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा के आश्वासन दिए गए थे, लेकिन बाद के वर्षों में इन अधिकारों पर प्रतिबंध बढ़े।

1492 में यहूदियों को ईसाई धर्म स्वीकार करने या स्पेन छोड़ने का आदेश भी दिया गया। इसके परिणामस्वरूप अनेक यहूदी समुदायों ने पलायन किया। बाद में मुस्लिम समुदायों पर भी धर्म परिवर्तन और निष्कासन संबंधी दबाव बढ़ा। इससे धार्मिक एकरूपता की नीति तो आगे बढ़ी, लेकिन स्पेन के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ा।

4. धार्मिक एकरूपता और स्पेनी इन्क्विजिशन

फर्डिनेंड और इसाबेला ने कैथोलिक धर्म को राजकीय एकता का महत्त्वपूर्ण आधार बनाया। 1478 में पोप की स्वीकृति से स्पेनी इन्क्विजिशन की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य विशेष रूप से ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके उन लोगों की धार्मिक निष्ठा की जाँच करना था, जिन पर गुप्त रूप से यहूदी या अन्य धार्मिक प्रथाएँ अपनाने का संदेह किया जाता था।

स्पेनी इन्क्विजिशन ने धार्मिक असहमति पर निगरानी रखी और पूछताछ, मुकदमों तथा दंडात्मक कार्रवाइयों के माध्यम से धार्मिक अनुशासन स्थापित करने का प्रयास किया। इसकी गतिविधियों ने भय और असुरक्षा का वातावरण भी उत्पन्न किया।

धार्मिक एकरूपता की नीति का उद्देश्य राजसत्ता को मजबूत करना था। शासकों ने धर्म को राजनीतिक एकता के साधन के रूप में उपयोग किया। लेकिन यह नीति धार्मिक स्वतंत्रता के प्रतिकूल थी और इसने यहूदियों, मुस्लिम समुदायों तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

5. अमेरिका की खोज और स्पेन का साम्राज्य-विस्तार

1492 में क्रिस्टोफर कोलंबस की अटलांटिक यात्रा को फर्डिनेंड और इसाबेला का समर्थन प्राप्त था। कोलंबस की यात्रा के बाद स्पेन ने अमेरिका में उपनिवेशों की स्थापना और विस्तार की प्रक्रिया शुरू की। आगे चलकर कैरिबियन, मध्य अमेरिका तथा दक्षिण अमेरिका के बड़े क्षेत्रों पर स्पेनी नियंत्रण स्थापित हुआ।

अमेरिका से सोना, चाँदी और अन्य संसाधन स्पेन पहुँचे। विशेष रूप से सोलहवीं शताब्दी में पोटोसी और मैक्सिको के खनन क्षेत्रों से प्राप्त चाँदी ने स्पेनी राजसत्ता और यूरोपीय व्यापार को प्रभावित किया। इस संपदा ने स्पेन को यूरोप की प्रमुख साम्राज्यवादी शक्तियों में शामिल किया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

लेकिन अमेरिका से प्राप्त धन का बड़ा भाग युद्धों, साम्राज्य के प्रशासन और राजकीय ऋणों के भुगतान में खर्च हुआ। अमेरिकी चाँदी के विशाल प्रवाह ने यूरोप में मूल्य-वृद्धि की प्रक्रिया को भी प्रभावित किया, जिसे व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में मूल्य क्रांति (Price Revolution) से जोड़ा जाता है।

स्पेन की आर्थिक शक्ति में वृद्धि के बावजूद घरेलू उत्पादन और राजस्व-संग्रह की संरचना में अनेक समस्याएँ बनी रहीं। इसलिए साम्राज्य की विशाल संपदा स्थायी वित्तीय समृद्धि की गारंटी नहीं बन सकी।

6. चार्ल्स प्रथम अर्थात् चार्ल्स पंचम (1516–1556)

1516 में चार्ल्स प्रथम स्पेन का राजा बना। यूरोपीय इतिहास में वह चार्ल्स पंचम के नाम से भी प्रसिद्ध है, क्योंकि वह पवित्र रोमन सम्राट भी बना। उसके अधीन स्पेन, नीदरलैंड, ऑस्ट्रियाई हैब्सबर्ग क्षेत्रों और अमेरिका के विशाल साम्राज्य से संबंधित विभिन्न राजनीतिक हित जुड़े हुए थे।

चार्ल्स पंचम का साम्राज्य अत्यंत विशाल था, लेकिन उसके विभिन्न भागों की प्रशासनिक व्यवस्था और राजनीतिक परंपराएँ अलग-अलग थीं। उसे अनेक क्षेत्रों में स्थानीय संस्थाओं, विशेषाधिकारों और प्रतिनिधि निकायों के साथ समझौता करना पड़ता था। इसलिए उसकी सत्ता व्यापक होने के बावजूद पूरी तरह एकरूप या असीमित नहीं थी।

उसके शासनकाल की प्रमुख चुनौतियों में जर्मनी में प्रोटेस्टेंट धर्म-सुधार आंदोलन, फ्रांस के साथ संघर्ष तथा ओटोमन साम्राज्य का विस्तार शामिल थे। इन संघर्षों ने स्पेन के संसाधनों पर भारी दबाव डाला।

1520–1521 में कैस्टिल के नगरों और समुदायों के एक आंदोलन, जिसे कम्यूनरोस विद्रोह कहा जाता है, ने राजकीय नीतियों के विरुद्ध असंतोष प्रकट किया। इस विद्रोह के दमन से राजसत्ता की स्थिति मजबूत हुई, लेकिन इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि कराधान और विदेशी दरबारी प्रभाव के विरुद्ध राजनीतिक विरोध मौजूद था।

1556 में चार्ल्स पंचम ने शासन से अवकाश लेकर अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों का उत्तराधिकार बाँटा। स्पेन और उससे संबंधित प्रमुख साम्राज्यिक क्षेत्रों का नियंत्रण उसके पुत्र फिलिप द्वितीय को मिला।

7. फिलिप द्वितीय और स्पेनी राजतंत्र का उत्कर्ष (1556–1598)

फिलिप द्वितीय के शासनकाल में स्पेन यूरोप की सबसे शक्तिशाली राजसत्ताओं में से एक बना रहा। उसके नियंत्रण में स्पेन, अमेरिकी उपनिवेश, नीदरलैंड के क्षेत्र और अन्य साम्राज्यिक संपत्तियाँ थीं। 1580 में पुर्तगाल का राजवंशीय संघ भी फिलिप के अधीन आया, यद्यपि पुर्तगाल ने अपनी अलग संस्थाएँ और औपनिवेशिक प्रशासन बनाए रखे।

फिलिप द्वितीय ने राजकीय प्रशासन को अधिक संगठित करने के लिए परिषदों और नौकरशाही पर निर्भरता बढ़ाई। वह विभिन्न क्षेत्रों के प्रशासन के लिए अलग-अलग परिषदों का उपयोग करता था। मैड्रिड धीरे-धीरे उसके शासन का प्रमुख राजनीतिक केंद्र बना।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

(क) धार्मिक नीति

फिलिप द्वितीय कट्टर कैथोलिक शासक था। उसने कैथोलिक धर्म की रक्षा और विस्तार को अपनी राजकीय नीति का महत्त्वपूर्ण भाग बनाया। स्पेन में धार्मिक एकरूपता बनाए रखने के लिए इन्क्विजिशन की गतिविधियाँ जारी रहीं।

नीदरलैंड में प्रोटेस्टेंट प्रभाव और स्पेनी शासन के विरुद्ध असंतोष के कारण विद्रोह भड़क उठा। 1568 से लंबे समय तक चले संघर्ष ने स्पेन की सैन्य और वित्तीय शक्ति पर भारी दबाव डाला। अंततः उत्तरी नीदरलैंड के प्रांत स्वतंत्रता की दिशा में आगे बढ़े, जबकि दक्षिणी क्षेत्र लंबे समय तक स्पेनी प्रभाव में रहे।

(ख) ओटोमन साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष

भूमध्यसागर में ओटोमन साम्राज्य की शक्ति स्पेन के लिए चुनौती थी। 1571 में लेपांतो के नौसैनिक युद्ध में स्पेन, वेनिस और पोप के नेतृत्व वाले गठबंधन ने ओटोमन बेड़े को पराजित किया। इस विजय ने कैथोलिक यूरोप में फिलिप द्वितीय की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

हालाँकि, इस विजय से भूमध्यसागर में ओटोमन शक्ति का स्थायी अंत नहीं हुआ। स्पेन को समुद्री सुरक्षा और साम्राज्य की रक्षा पर लगातार संसाधन खर्च करने पड़े।

(ग) इंग्लैंड के विरुद्ध स्पेनी आर्माडा

1588 में फिलिप द्वितीय ने इंग्लैंड के विरुद्ध विशाल नौसैनिक अभियान भेजा, जिसे स्पेनी आर्माडा कहा जाता है। इसका उद्देश्य इंग्लैंड की एलिजाबेथ प्रथम की शक्ति को कमजोर करना तथा धार्मिक और राजनीतिक संघर्षों में स्पेन के हितों को आगे बढ़ाना था।

अभियान असफल रहा। अंग्रेजी नौसैनिक प्रतिरोध, मौसम और परिचालन संबंधी कठिनाइयों ने स्पेनी बेड़े को भारी क्षति पहुँचाई। इस असफलता से स्पेन की समुद्री प्रतिष्ठा को झटका लगा, हालांकि स्पेन का साम्राज्य तुरंत समाप्त नहीं हुआ।

8. स्पेन की आर्थिक समस्याएँ

स्पेन की राजसत्ता को अमेरिका से प्राप्त संपदा के बावजूद गंभीर वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके प्रमुख कारण थे—

1. **निरंतर युद्ध:** नीदरलैंड, फ्रांस, इंग्लैंड और ओटोमन शक्ति के विरुद्ध संघर्षों पर अत्यधिक व्यय हुआ।
2. **राजकीय ऋण:** युद्धों और प्रशासनिक खर्चों के लिए राजसत्ता ने बड़े पैमाने पर ऋण लिया।
3. **घरेलू उत्पादन की कमजोरियाँ:** अमेरिकी चाँदी के आगमन से व्यापार बढ़ा, लेकिन घरेलू विनिर्माण और कृषि की संरचनात्मक समस्याएँ बनी रहीं।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

4. **मूल्य-वृद्धि:** सोलहवीं शताब्दी में कीमतों में वृद्धि ने आम जनता और राज्य की वित्तीय व्यवस्था पर दबाव डाला।
5. **धार्मिक निष्कासन:** यहूदी और मुस्लिम समुदायों के निष्कासन तथा धार्मिक दमन ने कुछ क्षेत्रों में व्यापारिक और उत्पादक गतिविधियों को प्रभावित किया।
6. **कराधान की सीमाएँ:** अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषाधिकारों के कारण राजस्व प्राप्त करना कठिन था।

1557 में फिलिप द्वितीय के शासनकाल में राजकीय ऋणों के भुगतान पर गंभीर संकट उत्पन्न हुआ। आगे भी स्पेनी राजसत्ता को कई बार वित्तीय पुनर्गठन और भुगतान संबंधी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

इस प्रकार स्पेन की राजनीतिक और साम्राज्यिक शक्ति के बावजूद उसकी अर्थव्यवस्था युद्धों और वित्तीय निर्भरता से कमजोर होती गई।

9. स्पेन में पूर्ण राजतंत्र की विशेषताएँ

स्पेन के पूर्ण राजतंत्र की प्रमुख विशेषताएँ थीं—

1. **राजवंशीय एकीकरण:** कैस्टिल और आरागॉन के राजवंशीय संबंधों ने केंद्रीकरण का आधार तैयार किया।
2. **धर्म और राजसत्ता का संबंध:** कैथोलिक धर्म को राजनीतिक एकता के प्रमुख साधन के रूप में उपयोग किया गया।
3. **इन्क्विजिशन का प्रयोग:** धार्मिक असहमति और कथित विधर्म पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया गया।
4. **साम्राज्य-विस्तार:** अमेरिका में उपनिवेशों की स्थापना से स्पेन की संपदा और अंतरराष्ट्रीय प्रभाव बढ़ा।
5. **राजकीय नौकरशाही:** परिषदों और अधिकारियों के माध्यम से विशाल साम्राज्य का प्रशासन चलाया गया।
6. **सैन्य शक्ति:** यूरोप और समुद्रों में प्रभुत्व बनाए रखने के लिए विशाल सैन्य संसाधन लगाए गए।
7. **क्षेत्रीय विविधता:** कैस्टिल, आरागॉन और अन्य क्षेत्रों के कानूनों तथा संस्थाओं में अंतर बना रहा।
8. **वित्तीय संकट:** युद्धों और साम्राज्यिक खर्चों ने राजकीय वित्त को कमजोर किया।

10. स्पेन के पूर्ण राजतंत्र की सीमाएँ और निष्कर्ष

स्पेन में राजतंत्र का केंद्रीकरण फर्डिनेंड और इसाबेला के शासन से आगे बढ़ा तथा चार्ल्स पंचम और फिलिप द्वितीय के समय साम्राज्यिक विस्तार के साथ अपने उत्कर्ष पर पहुँचा। स्पेन ने अमेरिका में विशाल उपनिवेश स्थापित किए और यूरोप की राजनीति में प्रमुख भूमिका निभाई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

फिर भी स्पेन फ्रांस की तरह पूरी तरह एकीकृत प्रशासनिक राज्य नहीं बना। विभिन्न क्षेत्रों के अपने कानून, विशेषाधिकार और संस्थाएँ थीं। धार्मिक एकरूपता की कठोर नीति ने सामाजिक विविधता को सीमित किया, जबकि लगातार युद्धों ने अर्थव्यवस्था को कमजोर किया।

स्पेन का अनुभव यह दर्शाता है कि विशाल साम्राज्य, राजकीय प्रतिष्ठा और बाहरी संपदा अपने आप स्थायी आर्थिक शक्ति सुनिश्चित नहीं करते। प्रभावी घरेलू उत्पादन, संतुलित वित्तीय नीति और प्रशासनिक एकरूपता के अभाव में शक्तिशाली राजतंत्र भी दीर्घकालीन संकटों से घिर सकता है।

भाग–3 : ब्रिटेन में पूर्ण राजतंत्र का विकास

1. ब्रिटेन की राजनीतिक पृष्ठभूमि

ब्रिटेन में पूर्ण राजतंत्र का विकास फ्रांस और स्पेन से भिन्न रहा। यहाँ राजकीय केंद्रीकरण की प्रक्रिया अवश्य चली, लेकिन संसद, सामान्य कानून, कुलीन वर्ग और स्थानीय संस्थाओं ने राजा की शक्ति पर महत्त्वपूर्ण सीमाएँ लगाईं। परिणामस्वरूप ब्रिटेन में निरंकुश राजतंत्र स्थापित करने के प्रयासों को तीव्र राजनीतिक विरोध का सामना करना पड़ा और अंततः संवैधानिक राजतंत्र का विकास हुआ।

मध्यकालीन इंग्लैंड में राजा और सामंतों के संबंधों को नियंत्रित करने के लिए कई राजनीतिक परंपराएँ विकसित हुई थीं। 1215 में जॉन के शासनकाल में **मैग्ना कार्टा (Magna Carta)** जारी हुआ। यह दस्तावेज तत्कालीन परिस्थितियों में राजा और विद्रोही सामंतों के बीच समझौता था। इसे आधुनिक लोकतंत्र का पूर्ण प्रारंभ मानना उचित नहीं, लेकिन इसने राजा की शक्ति को कानून और परंपरा के संदर्भ में देखने की ऐतिहासिक परंपरा को महत्त्वपूर्ण आधार दिया।

इंग्लैंड में संसद का विकास भी राजसत्ता पर नियंत्रण स्थापित करने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण रहा। संसद कराधान, कानून निर्माण और राजकीय नीतियों पर प्रभाव डालने वाली संस्था बनती गई। इसी कारण ब्रिटेन में राजकीय केंद्रीकरण और निरंकुशता के बीच निरंतर तनाव बना रहा।

2. ट्यूडर राजवंश और राजसत्ता का केंद्रीकरण

1485 में बोसवर्थ के युद्ध के बाद हेनरी सप्तम ने ट्यूडर राजवंश की स्थापना की। वह गुलाबों के युद्धों से कमजोर हुए इंग्लैंड में राजनीतिक स्थिरता स्थापित करना चाहता था। उसने शक्तिशाली सामंतों की निजी सेनाओं और स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधियों को नियंत्रित करने का प्रयास किया।

हेनरी सप्तम ने राजकोष को मजबूत करने, राजकीय आय बढ़ाने और प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिका विस्तृत करने पर ध्यान दिया। उसने व्यापार और आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया तथा कुलीन वर्ग के प्रभाव को सीमित करने के लिए कानूनी और वित्तीय उपाय अपनाए।

उसकी नीतियों से राजसत्ता की स्थिति मजबूत हुई। ट्यूडर शासन के अंतर्गत इंग्लैंड में एक अधिक केंद्रीकृत प्रशासन विकसित हुआ। फिर भी संसद की परंपरा और कानून की भूमिका समाप्त नहीं हुई।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

हेनरी सप्तम के बाद हेनरी अष्टम ने राजसत्ता को और अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। उसके शासनकाल में इंग्लैंड की धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए।

3. हेनरी अष्टम और इंग्लैंड का धार्मिक परिवर्तन (1509–1547)

हेनरी अष्टम के शासनकाल में इंग्लैंड की राजसत्ता और रोमन कैथोलिक चर्च के बीच संघर्ष निर्णायक मोड़ पर पहुँचा। पोप से अपने विवाह को निरस्त कराने के प्रश्न पर विवाद के बाद हेनरी अष्टम ने इंग्लैंड के चर्च को रोम के अधिकार से अलग कर दिया।

1534 में संसद ने **एक्ट ऑफ सुप्रीमेसी (Act of Supremacy)** पारित किया, जिसके अंतर्गत राजा को इंग्लैंड के चर्च का सर्वोच्च प्रमुख घोषित किया गया। इस कदम ने धार्मिक अधिकार और राजकीय सत्ता के संबंधों को बदल दिया।

1536 से 1540 के बीच मठों के विघटन की प्रक्रिया के दौरान अनेक मठों की संपत्तियाँ राजसत्ता के नियंत्रण में आ गईं। इन संपत्तियों का एक भाग राजकीय आय और संरक्षण-व्यवस्था को मजबूत करने में उपयोग हुआ, जबकि कुछ भूमि नए कुलीनों और जमींदारों के हाथों में चली गई।

हेनरी अष्टम की धार्मिक नीति का मुख्य उद्देश्य आधुनिक अर्थ में धार्मिक स्वतंत्रता स्थापित करना नहीं था। बल्कि उसने इंग्लैंड में चर्च पर राजकीय नियंत्रण स्थापित करके अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ाई। इस प्रकार धार्मिक परिवर्तन ने राजकीय केंद्रीकरण को मजबूत किया, लेकिन इससे इंग्लैंड में धार्मिक संघर्षों का नया दौर भी शुरू हुआ।

4. एडवर्ड षष्ठम, मैरी प्रथम और एलिजाबेथ प्रथम

हेनरी अष्टम की मृत्यु के बाद इंग्लैंड की धार्मिक नीति में उतार-चढ़ाव आया।

(क) एडवर्ड षष्ठम (1547–1553)

एडवर्ड षष्ठम के शासनकाल में प्रोटेस्टेंट सुधारों को आगे बढ़ाया गया। चर्च की प्रथाओं और धार्मिक सिद्धांतों में परिवर्तन किए गए। इससे इंग्लैंड का चर्च अधिक स्पष्ट रूप से प्रोटेस्टेंट दिशा में विकसित हुआ।

(ख) मैरी प्रथम (1553–1558)

मैरी प्रथम ने इंग्लैंड को पुनः रोमन कैथोलिक धर्म के साथ जोड़ने का प्रयास किया। उसके शासनकाल में प्रोटेस्टेंटों पर दमनात्मक कार्रवाई हुई। इस कारण उसे प्रोटेस्टेंट इतिहासलेखन में प्रायः कठोर धार्मिक नीति अपनाने वाली शासक के रूप में याद किया जाता है।

(ग) एलिजाबेथ प्रथम (1558–1603)

एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल में इंग्लैंड की राजसत्ता और चर्च की व्यवस्था अपेक्षाकृत स्थिर हुई। 1559 के धार्मिक समझौते ने इंग्लैंड के चर्च की स्थिति निर्धारित की। राजा या रानी के चर्च पर सर्वोच्च अधिकार की व्यवस्था बनी रही, जबकि धार्मिक सिद्धांतों और पूजा-पद्धति में कुछ प्रोटेस्टेंट विशेषताएँ स्वीकार की गईं।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

एलिजाबेथ प्रथम ने राजकीय प्रतिष्ठा, प्रशासन और विदेश नीति को मजबूत किया। उसके शासनकाल में समुद्री व्यापार और उपनिवेशी गतिविधियों का विस्तार हुआ। 1588 में स्पेनी आर्माडा की पराजय ने इंग्लैंड की प्रतिष्ठा बढ़ाई, हालाँकि इस घटना को इंग्लैंड के समुद्री प्रभुत्व की तत्काल और पूर्ण स्थापना के रूप में नहीं देखना चाहिए।

एलिजाबेथ प्रथम ने संसद के साथ सामान्यतः व्यावहारिक संबंध बनाए रखे। उसके शासनकाल में राजसत्ता मजबूत हुई, लेकिन संसद और कानून की संस्थागत भूमिका समाप्त नहीं हुई।

5. स्टुअर्ट राजवंश और दैवी अधिकार का सिद्धांत

1603 में एलिजाबेथ प्रथम की मृत्यु के बाद स्कॉटलैंड के जेम्स षष्ठम इंग्लैंड के जेम्स प्रथम बने। इस प्रकार इंग्लैंड और स्कॉटलैंड के सिंहासन एक ही शासक के अधीन आ गए, लेकिन दोनों राज्य तत्काल एकीकृत राजनीतिक इकाई नहीं बने।

जेम्स प्रथम ने राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धांत का समर्थन किया। उसके अनुसार राजा की सत्ता ईश्वर से प्राप्त होती है और राजा अपने शासन के लिए मुख्यतः ईश्वर के प्रति उत्तरदायी होता है। इस विचार ने राजा और संसद के बीच सत्ता-संघर्ष को बढ़ाया।

राजा को प्रशासन, विदेश नीति और राजकीय खर्चों के लिए धन की आवश्यकता थी, जबकि संसद कराधान पर अपना अधिकार बनाए रखना चाहती थी। संसद का मानना था कि नए करों और राजकीय आय के अनेक उपायों के लिए उसकी सहमति आवश्यक है।

जेम्स प्रथम के शासनकाल में वित्तीय प्रश्नों, धार्मिक नीतियों और संसदीय अधिकारों को लेकर मतभेद बढ़े। इन विवादों ने आगे चलकर चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में गंभीर राजनीतिक संकट का रूप ले लिया।

6. चार्ल्स प्रथम और संसद से संघर्ष (1625–1649)

चार्ल्स प्रथम ने 1625 में शासन संभाला। उसने अपने पिता जेम्स प्रथम की तरह राजकीय अधिकारों को व्यापक रूप से परिभाषित करने का प्रयास किया। उसके शासनकाल में संसद के साथ कराधान, धार्मिक नीति और प्रशासनिक अधिकारों को लेकर संघर्ष बढ़ गया।

1628 में संसद ने **पिटीशन ऑफ राइट (Petition of Right)** प्रस्तुत की। इसमें बिना संसदीय स्वीकृति के कर वसूली, मनमानी गिरफ्तारी और सैनिकों को नागरिकों के घरों में जबरन ठहराने जैसी प्रथाओं पर आपत्ति की गई। चार्ल्स प्रथम ने इसे स्वीकार किया, लेकिन बाद के वर्षों में राजा और संसद के बीच तनाव समाप्त नहीं हुआ।

1629 में चार्ल्स प्रथम ने संसद भंग कर दी और 1640 तक बिना नियमित संसदीय अधिवेशन के शासन चलाया। इस अवधि को प्रायः *व्यक्तिगत शासन (Personal Rule)* कहा जाता है। राजा ने राजस्व प्राप्त करने के वैकल्पिक उपाय अपनाए, जिनमें जहाजी कर (Ship Money) का विस्तार भी शामिल था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

धार्मिक नीतियों के कारण स्कॉटलैंड में विरोध हुआ और युद्ध की परिस्थितियाँ बनीं। आर्थिक और सैन्य संकट के कारण चार्ल्स प्रथम को 1640 में संसद पुनः बुलानी पड़ी। इसके बाद संसद और राजा के बीच संघर्ष तेज हो गया।

7. इंग्लैंड का गृहयुद्ध (1642–1649)

1642 में राजा और संसद के समर्थकों के बीच गृहयुद्ध शुरू हुआ। एक ओर राजा के समर्थक थे, जिन्हें सामान्यतः रॉयलिस्ट कहा जाता था; दूसरी ओर संसद के समर्थक थे। संघर्ष के कारणों में राजकीय अधिकारों की सीमा, कराधान, धर्म और संसद की भूमिका प्रमुख थे।

संसदीय सेना में ओलिवर क्रॉमवेल ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। नई मॉडल सेना (New Model Army) के संगठन और सैन्य सफलता ने संसद की स्थिति मजबूत की। 1645 में नेस्बी के युद्ध में संसदीय सेना को निर्णायक सफलता मिली।

1646 तक चार्ल्स प्रथम की सैन्य स्थिति कमजोर हो गई। बाद में राजनीतिक वार्ताएँ और संघर्ष जारी रहे। 1648 में दूसरे गृहयुद्ध के बाद संसद के एक हिस्से ने राजा के विरुद्ध कठोर कदम उठाने का निर्णय किया।

1649 में चार्ल्स प्रथम पर मुकदमा चलाया गया और उसे मृत्युदंड दिया गया। इसके बाद राजतंत्र समाप्त घोषित कर इंग्लैंड में कॉमनवेल्थ की स्थापना की गई। यह घटना यूरोपीय इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि पहली बार किसी प्रमुख यूरोपीय राज्य के राजा को सार्वजनिक न्यायिक प्रक्रिया के बाद मृत्युदंड दिया गया।

8. क्रॉमवेल और गणतांत्रिक शासन (1649–1660)

चार्ल्स प्रथम की मृत्यु के बाद इंग्लैंड में राजतंत्र के स्थान पर गणतांत्रिक शासन स्थापित किया गया। लेकिन यह व्यवस्था स्थायी लोकतांत्रिक गणतंत्र में परिवर्तित नहीं हो सकी।

ओलिवर क्रॉमवेल ने सेना और राजनीतिक संस्थाओं के समर्थन से प्रभावशाली स्थिति प्राप्त की। 1653 में उसने लॉर्ड प्रोटेक्टर का पद ग्रहण किया और प्रोटेक्टरेट शासन की स्थापना हुई। इस व्यवस्था में क्रॉमवेल के पास व्यापक कार्यकारी और सैन्य अधिकार थे।

क्रॉमवेल का शासन राजतंत्र का विकल्प तो था, लेकिन यह पूर्ण लोकतंत्र नहीं था। सेना का प्रभाव व्यापक था और धार्मिक तथा राजनीतिक विरोधियों पर प्रतिबंध भी लगाए गए। इसलिए इस काल को केवल संसदीय स्वतंत्रता की विजय के रूप में देखना अधूरा होगा।

1658 में क्रॉमवेल की मृत्यु के बाद उसके पुत्र रिचर्ड क्रॉमवेल ने सत्ता संभाली, लेकिन वह प्रभावी शासन स्थापित नहीं कर सका। राजनीतिक अस्थिरता और सेना के भीतर मतभेदों के कारण गणतांत्रिक व्यवस्था कमजोर पड़ गई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

1660 में राजतंत्र की पुनर्स्थापना हुई और चार्ल्स द्वितीय इंग्लैंड का राजा बना। इस घटना से स्पष्ट हुआ कि केवल राजा को हटाना पर्याप्त नहीं था; स्थिर राजनीतिक व्यवस्था के लिए राजसत्ता, संसद और सेना के बीच टिकाऊ संबंध आवश्यक थे।

9. राजतंत्र की पुनर्स्थापना और जेम्स द्वितीय

1660 में चार्ल्स द्वितीय के शासन के साथ राजतंत्र पुनः स्थापित हुआ। संसद और राजसत्ता के बीच संबंध सामान्य हुए, लेकिन दोनों के बीच अधिकारों को लेकर तनाव बना रहा।

चार्ल्स द्वितीय के शासनकाल में संसद ने कुछ महत्त्वपूर्ण कानून पारित किए। 1679 का *हैबियस कॉर्पस एक्ट* मनमानी हिरासत के विरुद्ध कानूनी सुरक्षा को मजबूत करने में महत्त्वपूर्ण था। फिर भी राजकीय अधिकारों और धार्मिक प्रश्नों पर विवाद जारी रहे।

1685 में जेम्स द्वितीय राजा बना। वह कैथोलिक था और उसने कुछ कैथोलिकों को सार्वजनिक पदों पर अवसर देने तथा धार्मिक प्रतिबंधों को शिथिल करने की नीति अपनाई। उसके विरोधियों को आशंका थी कि वह संसद और स्थापित प्रोटेस्टेंट व्यवस्था की उपेक्षा करके राजकीय सत्ता को मजबूत करेगा।

1688 में जेम्स द्वितीय के विरुद्ध राजनीतिक विरोध बढ़ गया। इंग्लैंड के प्रमुख नेताओं ने नीदरलैंड के शासक विलियम ऑफ ऑरेंज को इंग्लैंड आने का आमंत्रण दिया। विलियम अपनी पत्नी मैरी, जो जेम्स द्वितीय की पुत्री थी, के साथ इंग्लैंड पहुँचा। जेम्स द्वितीय देश छोड़कर चला गया। इस घटना को **गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution)** कहा जाता है।

10. गौरवपूर्ण क्रांति और संवैधानिक राजतंत्र (1688–1689)

गौरवपूर्ण क्रांति ब्रिटेन के राजनीतिक इतिहास का निर्णायक मोड़ थी। इसके परिणामस्वरूप विलियम तृतीय और मैरी द्वितीय ने संयुक्त रूप से शासन संभाला। संसद ने राजसत्ता की सीमाओं को स्पष्ट करने के लिए महत्त्वपूर्ण कदम उठाए।

1689 में **बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights)** पारित हुआ। इसने राजसत्ता पर अनेक संवैधानिक सीमाएँ लगाईं। राजा संसद की स्वीकृति के बिना कानूनों को निलंबित करने या सामान्य रूप से कर लगाने का दावा नहीं कर सकता था। संसद के नियमित अधिवेशन, चुनाव और संसदीय वाद-विवाद से संबंधित सिद्धांतों को भी महत्त्व मिला।

बिल ऑफ राइट्स ने यह सिद्धांत मजबूत किया कि राजा कानून से ऊपर नहीं है और शासन में संसद की भूमिका अनिवार्य है। हालाँकि, इस व्यवस्था से सभी लोगों को समान राजनीतिक अधिकार तुरंत प्राप्त नहीं हुए। मताधिकार सीमित था और सामाजिक तथा धार्मिक असमानताएँ बनी रहीं।

फिर भी गौरवपूर्ण क्रांति ने ब्रिटेन में निरंकुश राजतंत्र की संभावना को गंभीर रूप से सीमित कर दिया। इसके बाद राजसत्ता को संसदीय व्यवस्था और कानूनों के ढाँचे के भीतर कार्य करना पड़ा।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

11. ब्रिटेन में पूर्ण राजतंत्र की सीमाएँ

ब्रिटेन में फ्रांस जैसी स्थायी निरंकुश राजतंत्रीय व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी। इसके प्रमुख कारण थे—

1. **संसद की परंपरा:** कराधान और कानून निर्माण में संसद की भूमिका मजबूत थी।
2. **सामान्य कानून की परंपरा:** राजकीय अधिकारों पर कानून और न्यायिक प्रक्रियाओं की सीमाएँ थीं।
3. **कुलीन वर्ग की भूमिका:** शक्तिशाली कुलीन और जमींदार राजकीय नीतियों को प्रभावित करते थे।
4. **धार्मिक मतभेद:** कैथोलिक, एंग्लिकन और विभिन्न प्रोटेस्टेंट समूहों के बीच संघर्ष ने राजकीय नीति को जटिल बनाया।
5. **वित्तीय निर्भरता:** युद्धों और प्रशासन के लिए राजा को संसद से धन की आवश्यकता पड़ती थी।
6. **गृहयुद्ध:** चार्ल्स प्रथम की पराजय और मृत्युदंड ने यह स्पष्ट कर दिया कि राजकीय सत्ता को चुनौती दी जा सकती है।
7. **गौरवपूर्ण क्रांति:** 1688–1689 की घटनाओं ने संसदीय सर्वोच्चता और संवैधानिक शासन की दिशा को मजबूत किया।

12. ब्रिटेन में पूर्ण राजतंत्र के विकास का मूल्यांकन

ब्रिटेन में ट्यूडर शासकों ने राजसत्ता को मजबूत किया। हेनरी अष्टम ने चर्च को रोम से अलग करके धार्मिक अधिकारों पर राजकीय नियंत्रण स्थापित किया, जबकि एलिजाबेथ प्रथम ने प्रशासन और विदेश नीति में राजकीय प्रतिष्ठा बढ़ाई।

लेकिन स्टुअर्ट शासकों ने जब दैवी अधिकार के आधार पर संसद की भूमिका सीमित करने का प्रयास किया, तो राजनीतिक संघर्ष तीव्र हो गया। चार्ल्स प्रथम के विरुद्ध गृहयुद्ध, उसका मृत्युदंड, क्रॉमवेल का शासन और 1688 की गौरवपूर्ण क्रांति इस संघर्ष के प्रमुख चरण थे।

1689 के बिल ऑफ राइट्स के बाद ब्रिटेन में संवैधानिक राजतंत्र का विकास आगे बढ़ा। इसका अर्थ यह नहीं था कि तत्काल आधुनिक लोकतंत्र स्थापित हो गया, बल्कि यह कि राजा की शक्ति पर संसदीय और कानूनी सीमाएँ अधिक स्पष्ट हो गईं।

13. निष्कर्ष

ब्रिटेन का अनुभव फ्रांस और स्पेन से अलग था। यहाँ केंद्रीकृत राजसत्ता का विकास अवश्य हुआ, लेकिन संसद, कानून और राजनीतिक परंपराओं ने निरंकुशता को सीमित किया। स्टुअर्ट शासकों के साथ संघर्ष ने गृहयुद्ध और गौरवपूर्ण क्रांति को जन्म दिया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

अंततः ब्रिटेन में राजा की सत्ता संवैधानिक सीमाओं के भीतर आ गई। इस प्रक्रिया ने आगे चलकर संसदीय शासन के विकास के लिए आधार तैयार किया। इसलिए ब्रिटेन का इतिहास पूर्ण राजतंत्र की स्थापना से अधिक, निरंकुश राजतंत्र को सीमित करने और संवैधानिक राजतंत्र की ओर बढ़ने का इतिहास है।

भाग–4 : फ्रांस, स्पेन और ब्रिटेन के पूर्ण राजतंत्र का तुलनात्मक अध्ययन

1. राजनीतिक केंद्रीकरण

फ्रांस में लुई चौदहवें के शासनकाल में राजसत्ता ने केंद्रीकरण का उच्च स्तर प्राप्त किया। सामंतों की स्वतंत्र शक्ति सीमित हुई और राजकीय अधिकारियों के माध्यम से प्रशासन को मजबूत किया गया।

स्पेन में फर्डिनेंड और इसाबेला से लेकर फिलिप द्वितीय तक राजवंशीय एकीकरण तथा साम्राज्य-विस्तार हुआ। लेकिन कैस्टिल, आरागॉन और अन्य क्षेत्रों की संस्थागत विविधता बनी रही।

ब्रिटेन में राजसत्ता को मजबूत करने के प्रयास हुए, परंतु संसद और कानून की परंपराओं ने राजा की शक्ति को सीमित किया। परिणामस्वरूप ब्रिटेन में संवैधानिक राजतंत्र का विकास हुआ।

2. धर्म और राजसत्ता

फ्रांस में कैथोलिक राजसत्ता ने धार्मिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। हेनरी चतुर्थ ने नांत के राजादेश द्वारा सीमित धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की, जबकि लुई चौदहवें ने 1685 में इसे निरस्त कर दिया।

स्पेन में कैथोलिक धर्म को राजनीतिक एकता का आधार बनाया गया। इन्क्विजिशन और धार्मिक निष्कासन की नीतियों ने धार्मिक अल्पसंख्यकों को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

ब्रिटेन में धर्म और राजसत्ता का संबंध लगातार संघर्ष का विषय रहा। हेनरी अष्टम ने चर्च पर राजकीय नियंत्रण स्थापित किया, जबकि बाद में धार्मिक नीतियों में परिवर्तन और संसद के साथ विवाद ने राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न की।

3. संसद और प्रतिनिधि संस्थाएँ

फ्रांस में एस्टेट्स-जनरल जैसी प्रतिनिधि संस्था मौजूद थी, लेकिन उसे लंबे समय तक नियमित रूप से नहीं बुलाया गया। राजसत्ता के केंद्रीकरण के साथ उसकी भूमिका सीमित रही।

स्पेन में विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिनिधि संस्थाएँ—जैसे कैस्टिल की कोर्टेस और आरागॉन की संस्थाएँ—राजकीय सत्ता के साथ संबंधों में भूमिका निभाती थीं। लेकिन उनकी शक्तियाँ और प्रभाव क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग थे।

ब्रिटेन में संसद ने राजकीय कराधान और कानून निर्माण पर प्रभाव बनाए रखा। राजा और संसद के बीच संघर्ष ने अंततः संवैधानिक राजतंत्र को जन्म दिया।

4. आर्थिक आधार

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

फ्रांस में कृषि-आधारित राजस्व, कर-संग्रह, व्यापार और वाणिज्यवादी नीतियों ने राजतंत्र को आर्थिक आधार दिया। फिर भी करों का असमान वितरण और युद्धों का खर्च वित्तीय संकट का कारण बना।

स्पेन को अमेरिका से प्राप्त चाँदी और सोने से बड़ी संपदा मिली। लेकिन निरंतर युद्ध, ऋण, मूल्य-वृद्धि और घरेलू उत्पादन की कमजोरियों ने आर्थिक समस्याएँ पैदा कीं।

ब्रिटेन में राजकीय वित्त और संसद के संबंध विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहे। कराधान पर संसदीय सहमति की आवश्यकता ने राजा की स्वतंत्र वित्तीय शक्ति को सीमित किया। आगे चलकर वित्तीय संस्थाओं और व्यापारिक विस्तार ने राज्य की क्षमता को बढ़ाया।

5. सैन्य शक्ति और विदेश नीति

फ्रांस ने स्थायी सेना और सक्रिय विदेश नीति के माध्यम से यूरोप में अपनी शक्ति बढ़ाई। लुई चौदहवें के युद्धों ने फ्रांस की प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसके वित्तीय संकट को भी बढ़ाया।

स्पेन ने यूरोप और अमेरिका में विशाल साम्राज्य स्थापित किया। उसके सैन्य अभियानों ने उसे प्रमुख शक्ति बनाया, लेकिन साम्राज्य की रक्षा और निरंतर युद्धों की लागत बहुत अधिक थी।

ब्रिटेन ने नौसैनिक शक्ति और समुद्री व्यापार को महत्त्व दिया। स्पेनी आर्माडा की पराजय ने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई, जबकि आगे चलकर नौसेना और व्यापारिक विस्तार ब्रिटेन की वैश्विक शक्ति के प्रमुख आधार बने।

6. तुलनात्मक सारणी

आधार	**फ्रांस**	**स्पेन**	**ब्रिटेन**
प्रमुख राजनीतिक प्रक्रिया	केंद्रीकृत निरंकुश राजतंत्र	राजवंशीय एकीकरण और साम्राज्य-विस्तार	राजसत्ता और संसद के बीच संघर्ष
प्रमुख शासक	लुई ग्यारहवें, हेनरी चतुर्थ, लुई तेरहवें, लुई चौदहवें	फर्डिनेंड, इसाबेला, चार्ल्स पंचम, फिलिप द्वितीय	हेनरी सप्तम, हेनरी अष्टम, एलिजाबेथ प्रथम, जेम्स प्रथम, चार्ल्स प्रथम
प्रशासन	केंद्रीय नौकरशाही और राजकीय अधिकारियों का विस्तार	परिषद-आधारित प्रशासन, लेकिन क्षेत्रीय विविधता	राजकीय प्रशासन के साथ संसदीय संस्थाओं की निरंतर भूमिका
धर्म की भूमिका	कैथोलिक एकता का प्रयास; ह्यूगोनॉट संघर्ष	कैथोलिक एकरूपता और इन्क्विजिशन	चर्च पर राजकीय नियंत्रण तथा धार्मिक संघर्ष
संसद/प्रतिनिधि संस्थाएँ	सीमित प्रभाव; एस्टेट्स-जनरल की अनियमित भूमिका	विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग प्रतिनिधि संस्थाएँ	संसद का बढ़ता प्रभाव और कराधान पर नियंत्रण
आर्थिक आधार	कृषि, कराधान, व्यापार और वाणिज्यवाद	अमेरिकी चाँदी, व्यापार और साम्राज्यिक संसाधन	व्यापार, नौसैनिक शक्ति और संसदीय वित्त

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

प्रमुख संकट	राजकोषीय दबाव, सामाजिक असमानता, धार्मिक संघर्ष	युद्धों का खर्च, ऋण, क्षेत्रीय विविधता	गृहयुद्ध, राजसत्ता-संसद संघर्ष
प्रमुख ऐतिहासिक परिणाम	निरंकुश राजतंत्र का उत्कर्ष; अंततः 1789 की क्रांति	विशाल साम्राज्य, लेकिन वित्तीय और संस्थागत सीमाएँ	1688–1689 के बाद संवैधानिक राजतंत्र की दिशा

समग्र निष्कर्ष

पंद्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस, स्पेन और ब्रिटेन में राजसत्ता के केंद्रीकरण की प्रक्रिया यूरोप के आधुनिक राजनीतिक इतिहास का महत्त्वपूर्ण अध्याय है। तीनों राज्यों में राजाओं ने सामंती शक्तियों को नियंत्रित करने, प्रशासन को संगठित करने, सेना का विस्तार करने और राजस्व बढ़ाने के प्रयास किए। लेकिन इन प्रयासों के परिणाम समान नहीं रहे।

फ्रांस में राजसत्ता का केंद्रीकरण लुई चौदहवें के शासनकाल में अपने उत्कर्ष पर पहुँचा। वर्साय का दरबार, स्थायी सेना और राजकीय नौकरशाही निरंकुश राजतंत्र के प्रतीक बने। फिर भी वित्तीय संकट, सामाजिक असमानता और धार्मिक दमन ने इसकी कमजोरियों को उजागर किया।

स्पेन में फर्डिनेंड और इसाबेला के राजवंशीय एकीकरण तथा अमेरिका में साम्राज्य-विस्तार ने राजसत्ता को व्यापक शक्ति प्रदान की। चार्ल्स पंचम और फिलिप द्वितीय के समय स्पेन यूरोप की प्रमुख शक्ति बना। लेकिन क्षेत्रीय संस्थाओं की विविधता, निरंतर युद्धों, राजकीय ऋण और घरेलू उत्पादन की समस्याओं ने उसकी दीर्घकालीन आर्थिक क्षमता को सीमित किया।

ब्रिटेन में राजसत्ता को मजबूत करने के प्रयासों का परिणाम अलग रहा। ट्यूडर शासकों ने केंद्रीकरण किया, लेकिन स्टुअर्ट शासकों के साथ संसद का संघर्ष गृहयुद्ध में बदल गया। चार्ल्स प्रथम का मृत्युदंड और गौरवपूर्ण क्रांति ने राजा की शक्ति पर संवैधानिक सीमाएँ स्थापित करने की दिशा को मजबूत किया।

अतः **फ्रांस में पूर्ण राजतंत्र का उत्कर्ष, स्पेन में राजवंशीय एकीकरण और साम्राज्यवादी शक्ति का विस्तार, तथा ब्रिटेन में राजसत्ता की संवैधानिक सीमाओं का विकास**—ये तीनों यूरोप में आधुनिक राज्य-व्यवस्था के निर्माण की अलग-अलग ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ थीं। इनके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक राज्य का विकास केवल राजा की शक्ति बढ़ने का परिणाम नहीं था, बल्कि प्रशासन, अर्थव्यवस्था, धर्म, युद्ध, सामाजिक संरचना और प्रतिनिधि संस्थाओं के परस्पर संघर्ष तथा समायोजन का परिणाम था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

मर्कैंटिलिज़्म (Mercantilism) अथवा वाणिज्यवाद

1. प्रस्तावना

आधुनिक यूरोप के आर्थिक इतिहास में मर्कैंटिलिज़्म अथवा वाणिज्यवाद का विशेष महत्त्व है। पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच यूरोप में सामंती व्यवस्था का धीरे-धीरे पतन हुआ और केंद्रीकृत राष्ट्र-राज्यों का विकास होने लगा। इस परिवर्तन के साथ व्यापार, समुद्री यात्राओं, उपनिवेशों, राष्ट्रीय संपदा और राजकीय शक्ति का महत्त्व बढ़ा। यूरोपीय शासकों ने अनुभव किया कि आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करके वे अपनी सैन्य शक्ति, प्रशासनिक क्षमता और अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बढ़ा सकते हैं।

इसी ऐतिहासिक परिस्थिति में वाणिज्यवाद का विकास हुआ। यह आधुनिक अर्थशास्त्र की तरह एक सुव्यवस्थित, एकीकृत सिद्धांत नहीं था, बल्कि आर्थिक विचारों, व्यापारिक नीतियों और राजकीय उपायों का एक व्यापक समूह था। इसका मूल उद्देश्य राज्य की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति को बढ़ाना था। इसके समर्थक सामान्यतः बहुमूल्य धातुओं, विशेष रूप से सोने और चाँदी, के संचय, निर्यात में वृद्धि, आयात पर नियंत्रण, घरेलू उद्योगों के संरक्षण तथा उपनिवेशों के आर्थिक उपयोग पर बल देते थे।

वाणिज्यवाद के अंतर्गत व्यापार को केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे राष्ट्रीय शक्ति प्राप्त करने का साधन माना गया। इस कारण व्यापारिक प्रतिस्पर्धा कई बार राजनीतिक संघर्ष और युद्धों का कारण भी बनी।

यूरोप में फ्रांस, इंग्लैंड, स्पेन, पुर्तगाल और नीदरलैंड जैसे देशों की आर्थिक नीतियों में वाणिज्यवादी विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। यद्यपि इन देशों की नीतियाँ एक जैसी नहीं थीं, फिर भी राष्ट्रीय संपदा, राजकीय नियंत्रण, व्यापारिक एकाधिकार और समुद्री शक्ति को बढ़ाने की प्रवृत्ति उनमें सामान्य रूप से मौजूद थी।

2. मर्कैंटिलिज़्म का अर्थ एवं परिभाषा

मर्कैंटिलिज़्म अंग्रेजी शब्द *Mercantilism* का हिंदी रूप है। इसका संबंध *Merchant* अर्थात व्यापारी और व्यापारिक गतिविधियों से है। इतिहासलेखन में इस शब्द का प्रयोग उस आर्थिक विचारधारा और नीतिगत व्यवस्था के लिए किया जाता है, जिसके अंतर्गत राज्य अपनी संपदा और शक्ति को बढ़ाने के लिए व्यापार, उत्पादन, विदेशी व्यापार और उपनिवेशों पर सक्रिय नियंत्रण स्थापित करता है।

वाणिज्यवाद की एक प्रमुख धारणा यह थी कि किसी देश की शक्ति का आकलन उसकी उपलब्ध आर्थिक संपदा, राजस्व और बहुमूल्य धातुओं के भंडार से किया जा सकता है। इसी कारण कई वाणिज्यवादी लेखकों ने सोने-चाँदी के संचय और व्यापार संतुलन को विशेष महत्त्व दिया।

हालाँकि, वाणिज्यवाद के सभी विचारक यह नहीं मानते थे कि केवल सोना-चाँदी ही संपदा के स्रोत हैं। कुछ विचारकों ने उद्योग, रोजगार, कृषि, जहाजरानी, व्यापारिक संगठन और जनसंख्या को भी राष्ट्रीय समृद्धि के लिए आवश्यक माना।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इसलिए वाणिज्यवाद को केवल सोने-चाँदी के संग्रह तक सीमित करना उचित नहीं है। इसे व्यापक रूप में ऐसी आर्थिक नीति के रूप में समझना चाहिए, जिसमें राज्य राष्ट्रीय आर्थिक हितों की रक्षा और विस्तार के लिए व्यापार तथा उत्पादन को नियंत्रित करने का प्रयास करता है।

3. वाणिज्यवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वाणिज्यवाद का विकास यूरोप में मध्यकालीन व्यवस्था के परिवर्तन के साथ हुआ। इसके उदय के पीछे कई राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारण थे।

3.1 सामंती व्यवस्था का पतन

मध्यकालीन यूरोप में अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और सामंती संबंध थे। भूमि पर नियंत्रण रखने वाले सामंत स्थानीय आर्थिक और राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। अधिकांश उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता था।

समय के साथ नगरों, बाजारों और व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार हुआ। व्यापारियों और शिल्पकारों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने लगी। इससे सामंती अर्थव्यवस्था के स्थान पर मुद्रा, बाजार और व्यापार पर आधारित आर्थिक संबंधों का विकास हुआ।

नए व्यापारिक वर्ग ने ऐसी राजकीय व्यवस्था का समर्थन किया, जो सड़कों, बंदरगाहों, कानून-व्यवस्था और व्यापारिक सुरक्षा को बेहतर बना सके। इसके बदले राजा को कर और ऋण के रूप में आर्थिक सहायता मिल सकती थी।

3.2 केंद्रीकृत राष्ट्र-राज्यों का विकास

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में फ्रांस, इंग्लैंड और स्पेन जैसे राज्यों में केंद्रीय राजसत्ता मजबूत होने लगी। शासकों को स्थायी सेना, प्रशासन और राजनयिक गतिविधियों के लिए नियमित आय की आवश्यकता थी।

व्यापार और उद्योग से प्राप्त कर राजकीय आय का महत्वपूर्ण स्रोत बन सकते थे। इसलिए शासकों ने घरेलू उत्पादन, व्यापारिक गतिविधियों और विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने वाली नीतियाँ अपनाईं।

राज्य की शक्ति और व्यापारिक संपदा के बीच यह संबंध वाणिज्यवाद के विकास का प्रमुख आधार बना।

3.3 भौगोलिक खोजें

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से यूरोपीय समुद्री यात्राओं का विस्तार हुआ। पुर्तगालियों ने अफ्रीका के तटों के माध्यम से हिंद महासागर तक पहुँच बनाई। 1498 में वास्को द गामा भारत पहुँचा। 1492 में क्रिस्टोफर कोलंबस की अटलांटिक यात्रा ने यूरोप और अमेरिका के बीच संपर्क के नए चरण की शुरुआत की।

इन यात्राओं से यूरोपीय व्यापार का भौगोलिक विस्तार हुआ। मसाले, कपड़ा, चीनी, तंबाकू, चाँदी और अन्य वस्तुएँ अंतरराष्ट्रीय व्यापार का हिस्सा बनीं। समुद्री व्यापार से लाभ प्राप्त करने के लिए यूरोपीय देशों में प्रतिस्पर्धा बढ़ी।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

3.4 उपनिवेशवाद का विकास

यूरोपीय शक्तियों ने एशिया, अफ्रीका और अमेरिका में व्यापारिक केंद्र तथा उपनिवेश स्थापित किए। उपनिवेशों से कच्चा माल प्राप्त करना और वहाँ तैयार वस्तुओं के बाजार विकसित करना अनेक यूरोपीय नीतियों का हिस्सा बना।

उपनिवेशों पर नियंत्रण का उद्देश्य केवल भूभाग प्राप्त करना नहीं था। इसके माध्यम से व्यापारिक मार्गों, प्राकृतिक संसाधनों, श्रम और बाजारों पर प्रभाव स्थापित किया जाता था।

इस प्रकार उपनिवेशवाद और वाणिज्यवाद का विकास परस्पर जुड़ी हुई ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ थीं।

3.5 पुनर्जागरण और आर्थिक दृष्टिकोण में परिवर्तन

पुनर्जागरण ने यूरोप में ज्ञान, शिक्षा, मानव क्षमता और सांसारिक जीवन के प्रति नए दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया। नगरों और व्यापारिक वर्ग के विकास के साथ आर्थिक सफलता और सामाजिक प्रतिष्ठा के नए रूप सामने आए।

व्यापारियों, बैंकरों और शहरी उद्यमियों का प्रभाव बढ़ने लगा। इससे धन, निवेश और व्यापारिक लाभ के प्रति समाज का दृष्टिकोण भी बदलने लगा।

3.6 वाणिज्यिक क्रांति

लगभग पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक यूरोप में व्यापार, बैंकिंग, बीमा, ऋण, संयुक्त पूँजी कंपनियों और समुद्री परिवहन का विस्तार हुआ। इस व्यापक परिवर्तन को प्रायः वाणिज्यिक क्रांति कहा जाता है।

वाणिज्यिक क्रांति ने वाणिज्यवाद के लिए आर्थिक आधार तैयार किया। व्यापारिक कंपनियों और बैंकों ने बड़े स्तर पर व्यापार को संभव बनाया, जबकि राजकीय संरक्षण ने विदेशी व्यापार में प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया।

4. वाणिज्यवाद की प्रमुख विशेषताएँ

4.1 बहुमूल्य धातुओं का संचय

वाणिज्यवाद की सबसे प्रसिद्ध विशेषता सोने और चाँदी के संचय पर बल देना था। कई वाणिज्यवादी विचारकों के अनुसार, बहुमूल्य धातुओं के भंडार से राज्य की वित्तीय और सैन्य शक्ति बढ़ती है।

स्पेन को अमेरिका से बड़ी मात्रा में चाँदी प्राप्त हुई। इससे यूरोप में धन के प्रवाह में वृद्धि हुई और अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रभावित हुआ। लेकिन स्पेन का अनुभव यह भी दर्शाता है कि केवल बहुमूल्य धातुओं की उपलब्धता स्थायी आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित नहीं करती।

यदि घरेलू उत्पादन कमजोर हो, आयात पर निर्भरता बढ़े और युद्धों पर अत्यधिक व्यय हो, तो बहुमूल्य धातुओं का संचय भी वित्तीय संकट को दूर नहीं कर सकता।

4.2 अनुकूल व्यापार संतुलन

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

वाणिज्यवादियों ने सामान्यतः निर्यात बढ़ाने और आयात को नियंत्रित करने पर बल दिया। उनका उद्देश्य यह था कि देश विदेशों में अधिक मूल्य की वस्तुएँ बेचे और अपेक्षाकृत कम मूल्य की वस्तुएँ खरीदे।

इस प्रकार व्यापार से प्राप्त अतिरिक्त आय देश में बनी रह सकती थी। इसे सामान्यतः अनुकूल व्यापार संतुलन की नीति कहा जाता है।

हालाँकि, आधुनिक अर्थशास्त्र में व्यापार संतुलन को राष्ट्रीय समृद्धि का एकमात्र मापदंड नहीं माना जाता। आयात से मशीनें, तकनीक, कच्चा माल और अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी प्राप्त हो सकती हैं, जो घरेलू उत्पादन को बढ़ाने में सहायता करती हैं।

4.3 घरेलू उद्योगों का संरक्षण

वाणिज्यवाद के अंतर्गत घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए आयात शुल्क, प्रतिबंध और अन्य उपाय अपनाए जाते थे।

शासकों का उद्देश्य देश में विनिर्माण को प्रोत्साहित करना, रोजगार बढ़ाना और तैयार वस्तुओं के उत्पादन को विकसित करना था।

फ्रांस में जाँ-बातिस्त कोलबेयर ने उद्योग, विनिर्माण और व्यापार को बढ़ावा देने वाली नीतियाँ अपनाईं। इंग्लैंड में भी घरेलू उद्योगों तथा जहाजरानी को संरक्षण देने के लिए विभिन्न कानून बनाए गए।

4.4 राज्य का आर्थिक नियंत्रण

वाणिज्यवाद में राज्य की सक्रिय भूमिका को विशेष महत्त्व प्राप्त था। सरकार व्यापारिक नियम बनाती थी, कुछ उद्योगों को संरक्षण देती थी, आयात-निर्यात को नियंत्रित करती थी और व्यापारिक कंपनियों को विशेष अधिकार प्रदान करती थी।

राजकीय नियंत्रण का उद्देश्य आर्थिक गतिविधियों को राष्ट्रीय हितों के अनुरूप संचालित करना था। लेकिन कई बार अत्यधिक नियंत्रण ने प्रतिस्पर्धा को सीमित किया और विशेषाधिकार प्राप्त व्यापारियों को लाभ पहुँचाया।

4.5 उपनिवेशों का आर्थिक उपयोग

वाणिज्यवादी व्यवस्था में उपनिवेशों को मातृदेश के आर्थिक हितों से जोड़कर देखा जाता था। उपनिवेशों से कच्चा माल प्राप्त किया जाता था और उन्हें मातृदेश में निर्मित वस्तुओं के बाजार के रूप में विकसित किया जाता था।

उपनिवेशों के व्यापारिक मार्गों और संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए यूरोपीय शक्तियों ने कंपनियों, नौसेनाओं और औपनिवेशिक प्रशासन का उपयोग किया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इस व्यवस्था से यूरोपीय व्यापारिक शक्तियों को लाभ मिला, लेकिन उपनिवेशों की अर्थव्यवस्थाओं को अक्सर मातृदेश की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला गया। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय उत्पादन, स्वतंत्र व्यापार और आर्थिक निर्णय लेने की क्षमता सीमित हो सकती थी।

4.6 व्यापारिक कंपनियों को संरक्षण

वाणिज्यवाद के समय कई यूरोपीय देशों ने व्यापारिक कंपनियों को विशेषाधिकार दिए। इन कंपनियों को कुछ क्षेत्रों में व्यापार का एकाधिकार, व्यापारिक केंद्र स्थापित करने और राजकीय संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार मिला।

उदाहरण के लिए, इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1600 में हुई। डच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1602 में हुई। दोनों कंपनियों ने एशियाई समुद्री व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ये कंपनियाँ केवल निजी व्यापारिक संगठन नहीं थीं; उन्हें राज्य से विशेषाधिकार प्राप्त थे और कुछ परिस्थितियों में वे राजनीतिक तथा सैन्य गतिविधियों में भी शामिल हुईं।

4.7 जनसंख्या और श्रम पर बल

कुछ वाणिज्यवादी विचारकों का मानना था कि बड़ी और उत्पादक जनसंख्या राज्य की आर्थिक तथा सैन्य शक्ति को बढ़ा सकती है। अधिक श्रमिक घरेलू उद्योगों में उत्पादन बढ़ा सकते थे और अधिक लोग सेना तथा नौसेना में सेवा दे सकते थे।

हालाँकि, यह दृष्टिकोण श्रम की उपलब्धता पर केंद्रित था। आधुनिक अर्थशास्त्र में जनसंख्या के आकार के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल, उत्पादकता और रोजगार की गुणवत्ता को भी महत्त्व दिया जाता है।

4.8 समुद्री शक्ति का विकास

विदेशी व्यापार और उपनिवेशों की रक्षा के लिए जहाजरानी तथा नौसेना आवश्यक थीं। इसलिए वाणिज्यवादी नीतियों में समुद्री शक्ति को विशेष स्थान मिला।

इंग्लैंड और नीदरलैंड ने जहाज निर्माण, बंदरगाहों और समुद्री व्यापार को प्रोत्साहित किया। समुद्री शक्ति के विकास ने व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा तथा औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5. वाणिज्यवाद और स्पेन

स्पेन वाणिज्यवाद के इतिहास का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। अमेरिका में स्पेनी साम्राज्य के विस्तार के बाद वहाँ से बड़ी मात्रा में सोना और चाँदी यूरोप पहुँची।

स्पेनी शासकों ने बहुमूल्य धातुओं को राजकीय शक्ति का प्रमुख आधार माना। इन संसाधनों से सेना, प्रशासन और यूरोपीय युद्धों के लिए धन उपलब्ध हुआ।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

लेकिन स्पेन की आर्थिक समस्याएँ भी गंभीर थीं। लगातार युद्धों, राजकीय ऋणों, कीमतों में वृद्धि तथा घरेलू उद्योगों की सीमाओं ने अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। आयात पर निर्भरता और उत्पादक आधार की कमजोरियों के कारण अमेरिका से प्राप्त संपदा स्थायी आर्थिक विकास में पूरी तरह परिवर्तित नहीं हो सकी।

स्पेन का अनुभव वाणिज्यवाद की एक महत्त्वपूर्ण सीमा को स्पष्ट करता है—संपदा का संचय और वास्तविक उत्पादन क्षमता दो अलग-अलग बातें हैं।

6. वाणिज्यवाद और फ्रांस

फ्रांस में वाणिज्यवाद का व्यवस्थित रूप विशेष रूप से लुई चौदहवें के शासनकाल में दिखाई देता है। उसके वित्त मंत्री जाँ-बातिस्त कोलबेयर ने उद्योगों, विनिर्माण, व्यापार और नौसेना के विकास को प्रोत्साहित किया।

कोलबेयर की नीतियों में घरेलू उद्योगों को संरक्षण देना, उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार करना, व्यापारिक कंपनियों को प्रोत्साहित करना और राजकीय आय बढ़ाना शामिल था।

फ्रांस ने काँच, वस्त्र, विलासिता की वस्तुओं और अन्य विनिर्मित उत्पादों के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया। सड़क, बंदरगाह और नौसैनिक संरचना के विकास से भी व्यापार को लाभ मिला।

फ्रांसीसी वाणिज्यवाद का उद्देश्य राजकीय शक्ति को आर्थिक संसाधनों से जोड़ना था। लेकिन अत्यधिक राजकीय व्यय, युद्धों और कुछ क्षेत्रों में कठोर नियंत्रण ने इस व्यवस्था की सीमाएँ भी उजागर कीं।

7. वाणिज्यवाद और इंग्लैंड

इंग्लैंड में वाणिज्यवाद का विकास समुद्री व्यापार, जहाजरानी और औपनिवेशिक विस्तार से गहराई से जुड़ा था।

1651 का नेविगेशन एक्ट इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। इसका उद्देश्य इंग्लैंड के व्यापार में अंग्रेजी जहाजों और व्यापारिक हितों को प्राथमिकता देना था। इस प्रकार के कानूनों ने विदेशी प्रतिस्पर्धा को नियंत्रित करने और घरेलू समुद्री व्यापार को मजबूत करने का प्रयास किया।

इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी ने एशिया में व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार किया। आगे चलकर कंपनी ने भारतीय उपमहाद्वीप में राजनीतिक शक्ति भी प्राप्त की।

इंग्लैंड में वाणिज्यवाद ने जहाज निर्माण, व्यापारिक निवेश, वित्तीय संस्थाओं और समुद्री शक्ति के विकास को प्रोत्साहित किया। लेकिन व्यापारिक एकाधिकारों और औपनिवेशिक नीतियों से स्थानीय समाजों और प्रतिस्पर्धी व्यापारियों पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा।

8. वाणिज्यवाद और नीदरलैंड

नीदरलैंड यूरोपीय व्यापारिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था। सत्रहवीं शताब्दी में डच व्यापारियों ने समुद्री परिवहन, बैंकिंग, बीमा और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में उल्लेखनीय प्रगति की।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

1602 में डच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई। इस कंपनी ने एशिया में व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार किया और कई क्षेत्रों में डच व्यापारिक प्रभाव स्थापित किया।

एम्स्टर्डम अंतरराष्ट्रीय व्यापार, वित्त और वस्तुओं के विनिमय का प्रमुख केंद्र बना। नीदरलैंड का अनुभव यह दर्शाता है कि व्यापारिक सफलता केवल बहुमूल्य धातुओं के संचय पर निर्भर नहीं थी; जहाजरानी, वित्तीय संस्थाओं, बाजारों और व्यापारिक संगठन का भी बड़ा योगदान था।

9. वाणिज्यवाद और उपनिवेशवाद

वाणिज्यवाद और उपनिवेशवाद के बीच गहरा संबंध था। यूरोपीय शक्तियाँ उपनिवेशों से कच्चा माल प्राप्त करने, तैयार वस्तुओं के बाजार बनाने तथा व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास करती थीं।

उपनिवेशों को कई बार स्वतंत्र आर्थिक इकाइयों के बजाय मातृदेश की आर्थिक व्यवस्था का हिस्सा बनाया गया। उनके उत्पादन और व्यापार को औपनिवेशिक आवश्यकताओं के अनुसार नियंत्रित किया गया।

अमेरिका में खनिज संपदा का दोहन, बागानी कृषि और दास श्रम पर आधारित उत्पादन औपनिवेशिक अर्थव्यवस्थाओं के महत्वपूर्ण पहलू बने। अटलांटिक दास व्यापार ने अफ्रीकी समाजों को गहरी क्षति पहुँचाई और अमेरिका में दासता-आधारित उत्पादन व्यवस्था के विस्तार में भूमिका निभाई।

एशिया में यूरोपीय कंपनियों ने मसालों, वस्त्रों और अन्य वस्तुओं के व्यापार में प्रभाव स्थापित किया। बाद के काल में कुछ कंपनियाँ व्यापारिक संस्थाओं से क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियों में परिवर्तित हो गईं।

इस प्रकार वाणिज्यवाद ने यूरोपीय आर्थिक विस्तार को प्रोत्साहित किया, लेकिन इसके साथ शोषण, दासता और औपनिवेशिक असमानताओं का इतिहास भी जुड़ा हुआ है।

10. वाणिज्यवाद की उपलब्धियाँ

वाणिज्यवाद के कई ऐतिहासिक परिणाम हुए—

1. **राष्ट्रीय बाजारों का विस्तार:** व्यापार और परिवहन के विकास से विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक संबंध मजबूत हुए।
2. **राजकीय आय में वृद्धि:** करों और व्यापारिक गतिविधियों से राज्य को संसाधन प्राप्त हुए।
3. **घरेलू उद्योगों का विकास:** कुछ देशों में विनिर्माण और शिल्प उत्पादन को संरक्षण मिला।
4. **नौसेना और जहाजरानी का विस्तार:** समुद्री व्यापार के लिए जहाज निर्माण और बंदरगाहों का विकास हुआ।
5. **व्यापारिक संस्थाओं का विकास:** संयुक्त पूँजी कंपनियों, बैंकिंग और बीमा का विस्तार हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

6. **वैश्विक व्यापारिक संपर्क:** यूरोप, एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के बीच वस्तुओं और पूँजी का आदान-प्रदान बढ़ा।
7. **केंद्रीकृत राज्य की मजबूती:** व्यापारिक आय ने सेना, नौकरशाही और राजकीय प्रशासन को संसाधन उपलब्ध कराए।
8. **पूँजीवादी संबंधों का विस्तार:** व्यापारिक निवेश और लाभ की खोज ने आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान दिया।

हालाँकि, इन उपलब्धियों का वितरण समान नहीं था। यूरोपीय राज्यों और व्यापारिक समूहों को मिलने वाले लाभों के साथ औपनिवेशिक समाजों में असमानता और शोषण भी बढ़ा।

11. वाणिज्यवाद की आलोचना

वाणिज्यवाद की आलोचना विशेष रूप से अठारहवीं शताब्दी में शास्त्रीय अर्थशास्त्र के विकास के साथ बढ़ी।

11.1 संपदा की संकीर्ण अवधारणा

वाणिज्यवाद की कुछ धाराओं में सोने और चाँदी को अत्यधिक महत्त्व दिया गया। लेकिन वास्तविक आर्थिक समृद्धि उत्पादन, श्रम, तकनीक, कौशल और संसाधनों के प्रभावी उपयोग पर भी निर्भर करती है।

11.2 व्यापार को शून्य-योग प्रतिस्पर्धा मानना

वाणिज्यवादी नीतियों में कई बार यह धारणा दिखाई देती थी कि एक देश का व्यापारिक लाभ दूसरे देश की हानि है। आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार, व्यापार से दोनों पक्षों को लाभ हो सकता है, यद्यपि लाभ का वितरण असमान हो सकता है।

11.3 एकाधिकारों को संरक्षण

राज्य द्वारा व्यापारिक कंपनियों को विशेषाधिकार देने से प्रतिस्पर्धा सीमित हो सकती थी। इससे कुछ व्यापारियों को अधिक लाभ मिलता था, जबकि दूसरे व्यापारी बाजार से बाहर हो सकते थे।

11.4 उपनिवेशों का शोषण

उपनिवेशों को मातृदेश की आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार नियंत्रित करने से स्थानीय समाजों के आर्थिक विकल्प सीमित हुए। दासता, जबरन श्रम और संसाधनों के असमान दोहन ने गंभीर मानवीय संकट उत्पन्न किए।

11.5 उपभोक्ताओं पर प्रभाव

आयात पर भारी शुल्क या प्रतिबंध लगाने से कुछ घरेलू उद्योगों को लाभ मिला, लेकिन उपभोक्ताओं के लिए वस्तुएँ महँगी हो सकती थीं। संरक्षणवादी नीतियों से प्रतिस्पर्धा कम होने पर उत्पादन की गुणवत्ता और दक्षता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

11.6 राजकीय नियंत्रण की सीमाएँ

अत्यधिक नियंत्रण से व्यापारियों और उत्पादकों की स्वतंत्रता सीमित हो सकती थी। सरकारी विशेषाधिकार और नियम कई बार आर्थिक संसाधनों के प्रभावी उपयोग में बाधा बने।

12. एडम स्मिथ और वाणिज्यवाद की आलोचना

अठारहवीं शताब्दी के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations* (1776) में वाणिज्यवादी नीतियों की आलोचना की।

स्मिथ ने तर्क दिया कि किसी राष्ट्र की संपदा को केवल उसके पास मौजूद सोने-चाँदी की मात्रा से नहीं मापा जाना चाहिए। वास्तविक संपदा का संबंध उस राष्ट्र की उत्पादन क्षमता, श्रम-विभाजन और वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन से है।

उसने व्यापारिक एकाधिकारों और ऐसे प्रतिबंधों की आलोचना की, जो प्रतिस्पर्धा को सीमित करते थे। स्मिथ ने श्रम-विभाजन और बाजार के विस्तार को उत्पादकता बढ़ाने वाले महत्त्वपूर्ण कारक माना।

हालाँकि, स्मिथ के विचारों को आधुनिक मुक्त व्यापार के सभी प्रश्नों का अंतिम उत्तर नहीं माना जा सकता। आधुनिक अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय सुरक्षा, नवोदित उद्योगों, श्रमिक अधिकारों और पर्यावरण जैसे विषयों पर सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता पर भी चर्चा होती है।

13. वाणिज्यवाद का पतन और परिवर्तन

अठारहवीं शताब्दी में शास्त्रीय अर्थशास्त्र के विकास, औद्योगिक क्रांति और बदलती आर्थिक परिस्थितियों के कारण पारंपरिक वाणिज्यवादी नीतियों की आलोचना बढ़ी।

औद्योगिक उत्पादन के विस्तार से आर्थिक शक्ति का आधार केवल व्यापारिक लाभ या बहुमूल्य धातुओं के संचय तक सीमित नहीं रहा। मशीनों, तकनीक, श्रम-उत्पादकता और बड़े पैमाने पर उत्पादन का महत्त्व बढ़ा।

एडम स्मिथ और अन्य शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों ने मुक्त व्यापार और प्रतिस्पर्धा के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किए। इससे पारंपरिक वाणिज्यवाद की बौद्धिक प्रतिष्ठा कमजोर हुई।

फिर भी राज्य का आर्थिक हस्तक्षेप समाप्त नहीं हुआ। आधुनिक काल में भी अनेक सरकारें घरेलू उद्योगों की रक्षा, रणनीतिक क्षेत्रों के विकास, निर्यात को प्रोत्साहित करने और आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए नीतियाँ अपनाती हैं। इसलिए वाणिज्यवाद को केवल समाप्त हो चुकी व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि आधुनिक आर्थिक नीतियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में भी समझना चाहिए।

14. निष्कर्ष

मर्केंटिलिज़्म अथवा वाणिज्यवाद आधुनिक यूरोप के आर्थिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण विचारधारा और नीतिगत व्यवस्था थी। इसका विकास सामंती व्यवस्था के पतन, केंद्रीकृत राष्ट्र-राज्यों के उदय, समुद्री खोजों, औपनिवेशिक विस्तार और व्यापारिक क्रांति के साथ हुआ।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

इस व्यवस्था ने घरेलू उद्योगों, विदेशी व्यापार, नौसेना, व्यापारिक कंपनियों और राजकीय वित्त को महत्त्व दिया। इसके माध्यम से कई यूरोपीय देशों ने अपनी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति बढ़ाने का प्रयास किया।

लेकिन वाणिज्यवाद की सीमाएँ भी थीं। बहुमूल्य धातुओं पर अत्यधिक बल, व्यापारिक एकाधिकार, औपनिवेशिक शोषण और युद्धों पर अत्यधिक व्यय ने इसकी कमजोरियों को उजागर किया। एडम स्मिथ जैसे विचारकों ने इसकी आलोचना करते हुए उत्पादन, श्रम-विभाजन और प्रतिस्पर्धा को आर्थिक समृद्धि के महत्त्वपूर्ण आधार बताया।

अतः वाणिज्यवाद को यूरोप में आधुनिक राज्य, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और वैश्विक व्यापार के विकास की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अवस्था के रूप में देखा जा सकता है। इसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक नीतियाँ केवल धन प्राप्त करने का साधन नहीं होतीं, बल्कि वे राज्य की शक्ति, सामाजिक संबंधों और अंतरराष्ट्रीय राजनीति को भी प्रभावित करती हैं।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

कमर्शियलिज़्म (Commercialism) अथवा वाणिज्य-केंद्रित आर्थिक दृष्टिकोण (वाणिज्यवाद)

1. प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास में व्यापार की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। प्रारंभिक समाजों में वस्तु-विनिमय के माध्यम से आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। कृषि, शिल्प, परिवहन और नगरों के विकास

के साथ व्यापारिक गतिविधियाँ अधिक जटिल होती गईं। मुद्रा, बाजार, ऋण, बैंकिंग और समुद्री परिवहन के विस्तार ने व्यापार को स्थानीय स्तर से निकालकर क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुँचा दिया।

यूरोप में पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार ने समाज और अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए। व्यापारी, बैंकर, जहाज मालिक और व्यापारिक कंपनियाँ आर्थिक जीवन के प्रमुख घटक बन गए। वस्तुओं की खरीद-बिक्री, बाजारों के विस्तार, लाभ प्राप्त करने और पूँजी के निवेश को अधिक महत्त्व मिलने लगा।

इस व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में **कमर्शियलिज़्म (Commercialism)** को व्यापार और वाणिज्य-केंद्रित आर्थिक दृष्टिकोण के रूप में समझा जा सकता है। इसका सामान्य संबंध ऐसी आर्थिक प्रवृत्ति से है, जिसमें व्यापारिक गतिविधियों, बाजारों, वाणिज्यिक लाभ, निवेश और वस्तुओं के वितरण को आर्थिक जीवन में प्रमुख स्थान प्राप्त होता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण अंतर स्पष्ट करना आवश्यक है। *Mercantilism* एक विशिष्ट ऐतिहासिक आर्थिक विचारधारा और राजकीय नीतियों के समूह को दर्शाता है, जबकि *Commercialism* का अर्थ संदर्भ के अनुसार व्यापक व्यापारिक प्रवृत्ति, वाणिज्यिक हितों की प्रधानता या आर्थिक गतिविधियों के व्यापारीकरण से हो सकता है। इतिहास के कुछ पाठ्यक्रमों में इन शब्दों का प्रयोग एक-दूसरे के निकट अर्थ में किया जाता है, लेकिन दोनों को पूरी तरह समान मानना उचित नहीं है।

इस निबंध में कमर्शियलिज़्म का अध्ययन व्यापार के विस्तार, व्यापारिक वर्ग के उदय, वाणिज्यिक संस्थाओं, उपनिवेशवाद, आर्थिक लाभ की अवधारणा और समाज पर व्यापार के प्रभाव के संदर्भ में किया गया है।

2. कमर्शियलिज़्म का अर्थ और अवधारणा

कमर्शियलिज़्म शब्द का संबंध अंग्रेजी के *Commerce* अर्थात वाणिज्य से है। सामान्य अर्थ में वाणिज्य वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय, खरीद-बिक्री तथा वितरण से जुड़ी गतिविधियों को कहा जाता है।

कमर्शियलिज़्म का प्रयोग दो व्यापक अर्थों में किया जा सकता है—

पहला, ऐतिहासिक अर्थ: व्यापारिक गतिविधियों और वाणिज्यिक हितों के विस्तार को महत्त्व देने वाली आर्थिक प्रवृत्ति, जिसने आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्था के विकास में भूमिका निभाई।

दूसरा, व्यापक सामाजिक-आर्थिक अर्थ: ऐसी स्थिति, जिसमें आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक गतिविधियों को मुख्यतः व्यावसायिक लाभ और बाजार की आवश्यकताओं के आधार पर संचालित किया जाता है।

इतिहास के अध्ययन में पहले अर्थ का उपयोग विशेष रूप से तब उपयोगी है, जब हम यूरोप में व्यापारिक क्रांति, व्यापारी वर्ग, संयुक्त पूँजी कंपनियों, समुद्री व्यापार और बाजारों के विस्तार का विश्लेषण करते हैं।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

दूसरे अर्थ का प्रयोग आधुनिक समाज में भी होता है। उदाहरण के लिए, शिक्षा, स्वास्थ्य, कला, खेल और संस्कृति के क्षेत्रों में व्यावसायिक लाभ को अत्यधिक प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति की आलोचना करते समय कमर्शियलिज़्म शब्द का उपयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार कमर्शियलिज़्म का अर्थ केवल वस्तुओं की खरीद-बिक्री नहीं है। यह उस आर्थिक-सामाजिक दृष्टिकोण को भी दर्शा सकता है, जिसमें वाणिज्यिक हित और लाभ की खोज समाज के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करने लगती है।

3. कमर्शियलिज़्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.1 मध्यकालीन व्यापार का विस्तार

मध्यकालीन यूरोप में स्थानीय कृषि और सामंती व्यवस्था का प्रभाव था, लेकिन इसके साथ-साथ नगरों और व्यापारिक केंद्रों का भी विकास हो रहा था। इटली के वेनिस, जेनोआ और फ्लोरेंस जैसे नगर व्यापार, बैंकिंग और वित्तीय गतिविधियों के प्रमुख केंद्र बने।

भूमध्यसागरीय व्यापार के माध्यम से यूरोप का संपर्क एशिया और उत्तरी अफ्रीका से था। मसाले, रेशम, बहुमूल्य वस्तुएँ और अन्य उत्पाद व्यापार का हिस्सा थे।

व्यापार के विस्तार से व्यापारी वर्ग की आर्थिक स्थिति मजबूत हुई। व्यापारियों को पूँजी, लेखांकन, ऋण, बीमा और व्यापारिक अनुबंधों की आवश्यकता थी। इससे वित्तीय और वाणिज्यिक संस्थाओं का विकास हुआ।

3.2 नगरों और व्यापारी वर्ग का उदय

नगरों के विकास ने आर्थिक गतिविधियों को नया आधार दिया। नगरों में शिल्पकार, व्यापारी, बैंकर और परिवहन से जुड़े लोग रहते थे। ये लोग ग्रामीण सामंती व्यवस्था से अपेक्षाकृत अलग आर्थिक गतिविधियों में भाग लेते थे।

व्यापारियों की संपदा भूमि के बजाय पूँजी, व्यापारिक नेटवर्क और बाजारों पर आधारित हो सकती थी। इस कारण आर्थिक शक्ति के नए रूप सामने आए।

व्यापारी वर्ग ने ऐसी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन किया, जिसमें अनुबंधों की सुरक्षा, सड़कों और बंदरगाहों का विकास तथा व्यापारिक विवादों के समाधान के लिए संस्थागत व्यवस्था मौजूद हो।

3.3 पुनर्जागरण और आर्थिक परिवर्तन

पुनर्जागरण के दौरान इटली के नगरों में कला, शिक्षा, बैंकिंग और व्यापार का विकास हुआ। व्यापारिक परिवारों ने कला और स्थापत्य को संरक्षण प्रदान किया। इससे आर्थिक संपदा और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के बीच संबंध मजबूत हुआ।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

फ्लोरेंस जैसे नगरों में व्यापार और बैंकिंग से समृद्ध परिवारों ने सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रक्रिया ने यह स्पष्ट किया कि आर्थिक शक्ति केवल भूमि-स्वामित्व से प्राप्त नहीं होती, बल्कि व्यापार और वित्त से भी उत्पन्न हो सकती है।

3.4 समुद्री खोजें और नए व्यापारिक मार्ग

पंद्रहवीं शताब्दी के अंत और सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीय समुद्री यात्राओं ने वैश्विक व्यापार के नए मार्ग खोले। पुर्तगालियों ने अफ्रीका के तटों के माध्यम से हिंद महासागर में प्रवेश किया। स्पेन ने अमेरिका में उपनिवेश स्थापित किए। आगे चलकर इंग्लैंड और नीदरलैंड ने भी समुद्री व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

समुद्री यात्राओं ने व्यापार की मात्रा और भौगोलिक विस्तार को बढ़ाया। मसाले, वस्त्र, चीनी, तंबाकू, कॉफी और अन्य वस्तुओं के व्यापार से यूरोप और विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक संबंध मजबूत हुए।

लेकिन इन संपर्कों का विकास समानतापूर्ण नहीं था। यूरोपीय साम्राज्यवाद, दास व्यापार और उपनिवेशों के संसाधनों के दोहन ने वैश्विक आर्थिक संबंधों को गहराई से प्रभावित किया।

3.5 बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं का विकास

व्यापार के विस्तार के लिए केवल वस्तुओं का उत्पादन पर्याप्त नहीं था। व्यापारियों को ऋण, निवेश, भुगतान और जोखिम प्रबंधन की सुविधाएँ भी चाहिए थीं।

यूरोप में बैंकिंग, बिल ऑफ एक्सचेंज, बीमा और व्यापारिक ऋण का विस्तार हुआ। इन संस्थाओं ने दूरस्थ बाजारों में व्यापार को आसान बनाया।

वाणिज्यिक गतिविधियों के विस्तार से पूँजी का संचय हुआ और व्यापारिक निवेश के नए अवसर पैदा हुए। यही प्रक्रियाएँ आगे चलकर आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास के महत्त्वपूर्ण आधार बनीं।

4. कमर्शियलिज़्म की प्रमुख विशेषताएँ

4.1 व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार

कमर्शियलिज़्म की सबसे प्रमुख विशेषता व्यापार के विस्तार को महत्त्व देना है। वस्तुओं का उत्पादन तभी आर्थिक लाभ उत्पन्न कर सकता है, जब उन्हें बाजार तक पहुँचाया जाए और उपभोक्ताओं की माँग से जोड़ा जाए।

व्यापारिक नेटवर्क के विकास से उत्पादकों को नए बाजार प्राप्त हुए। इससे उत्पादन के विशेषीकरण और वस्तुओं के वितरण को प्रोत्साहन मिला।

यूरोप में समुद्री व्यापार, नगरों के बाजारों और व्यापारिक मेलों के विस्तार ने आर्थिक गतिविधियों को अधिक व्यापक बनाया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

4.2 लाभ की खोज

वाणिज्यिक गतिविधियों में लाभ प्राप्त करना प्रमुख उद्देश्य होता है। व्यापारी वस्तुओं को खरीदते, उनका परिवहन करते और उन्हें दूसरे बाजारों में बेचकर लाभ अर्जित करते हैं।

व्यापारिक लाभ से पूँजी का पुनर्निवेश किया जा सकता है। इस प्रकार लाभ की खोज व्यापारिक विस्तार और आर्थिक निवेश को प्रोत्साहित करती है।

हालाँकि, यदि लाभ को सामाजिक कल्याण, श्रमिक अधिकारों और पर्यावरण से पूरी तरह अलग कर दिया जाए, तो आर्थिक असमानता तथा शोषण की समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

4.3 बाजारों का विस्तार

कमर्शियलिज़्म का संबंध बाजारों के विस्तार से भी है। व्यापारिक गतिविधियाँ स्थानीय बाज़ारों से आगे बढ़कर क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों को जोड़ती हैं।

नए बाजारों के निर्माण से उत्पादकों को अधिक उपभोक्ता मिलते हैं। लेकिन बाजारों के विस्तार से प्रतिस्पर्धा भी बढ़ती है। जिन उत्पादकों के पास पूँजी, परिवहन और तकनीक के बेहतर साधन होते हैं, वे छोटे उत्पादकों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

4.4 मुद्रा और पूँजी की भूमिका

वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा और पूँजी का महत्त्व अत्यधिक होता है। वस्तु-विनिमय की सीमाओं को मुद्रा दूर करती है और व्यापारिक लेन-देन को सरल बनाती है।

पूँजी के माध्यम से व्यापारी वस्तुएँ खरीद सकते हैं, जहाजों में निवेश कर सकते हैं, गोदाम स्थापित कर सकते हैं और उत्पादन का विस्तार कर सकते हैं।

ऋण तथा निवेश की सुविधाएँ व्यापार के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसी कारण बैंकिंग और वित्तीय संस्थाएँ वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था के प्रमुख घटक बनती हैं।

4.5 परिवहन और संचार का विकास

व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार के लिए वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना आवश्यक है। सड़कें, नहरें, बंदरगाह, जहाज और बाद के काल में रेल तथा आधुनिक परिवहन प्रणालियाँ वाणिज्य के विकास में सहायक बनीं।

बेहतर परिवहन से वस्तुओं की लागत घट सकती है और बाजारों तक पहुँच बढ़ सकती है। इसी प्रकार संचार के साधन व्यापारियों को कीमतों, माँग और आपूर्ति की जानकारी उपलब्ध कराते हैं।

4.6 व्यापारिक संगठन

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

वाणिज्य के विस्तार से व्यापारिक संगठनों का विकास हुआ। इनमें साझेदारी आधारित व्यापारिक संस्थाएँ, संयुक्त पूँजी कंपनियाँ, बैंक और बीमा संगठन शामिल थे।

संयुक्त पूँजी कंपनियों ने अनेक निवेशकों की पूँजी को एकत्र करके बड़े व्यापारिक अभियानों को संभव बनाया। समुद्री व्यापार में जोखिम अधिक होने के कारण पूँजी का साझा निवेश और बीमा विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था।

इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी और डच ईस्ट इंडिया कंपनी इसके प्रमुख ऐतिहासिक उदाहरण हैं।

4.7 अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा

व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार से विभिन्न देशों और कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ी। व्यापारी नए बाजारों, सस्ते कच्चे माल और लाभदायक व्यापारिक मार्गों की खोज करने लगे।

इस प्रतिस्पर्धा ने व्यापार के विस्तार को प्रोत्साहित किया, लेकिन कई बार इसके कारण एकाधिकार, व्यापारिक संघर्ष और सैन्य टकराव भी हुए।

यूरोपीय देशों ने समुद्री मार्गों और उपनिवेशों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए युद्धों और राजनयिक समझौतों का सहारा लिया।

4.8 उत्पादन और बाजार का संबंध

कमर्शियलिज़्म के व्यापक आर्थिक अर्थ में उत्पादन को बाजार की माँग से जोड़ना महत्त्वपूर्ण है। उत्पादक यह विचार करते हैं कि किन वस्तुओं की माँग है, किस कीमत पर उन्हें बेचा जा सकता है और किस प्रकार लागत को कम किया जा सकता है।

इससे उत्पादन की योजना, वस्तुओं की गुणवत्ता और वितरण पर ध्यान बढ़ता है। आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्था में यह संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

लेकिन बाजार की माँग हमेशा सामाजिक आवश्यकता के समान नहीं होती। जिन लोगों के पास क्रय-शक्ति कम है, उनकी आवश्यकताएँ बाजार में पर्याप्त रूप से दिखाई नहीं दे सकतीं। इसलिए केवल बाजार की माँग को सामाजिक कल्याण का पूर्ण मापदंड नहीं माना जा सकता।

5. कमर्शियलिज़्म और यूरोपीय व्यापारिक क्रांति

यूरोप की व्यापारिक क्रांति ने कमर्शियलिज़्म के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के दौरान व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार से आर्थिक संबंधों में व्यापक परिवर्तन हुए।

5.1 भूमध्यसागरीय व्यापार

मध्यकालीन यूरोप में वेनिस और जेनोआ जैसे नगर पूर्वी भूमध्यसागर के व्यापार में महत्त्वपूर्ण थे। इन नगरों के व्यापारी एशिया से आने वाली वस्तुओं के यूरोपीय वितरण में सक्रिय थे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

व्यापार से प्राप्त आय ने इन नगरों में बैंकिंग, जहाजरानी और कला-संरक्षण को प्रोत्साहित किया।

5.2 अटलांटिक व्यापार का विस्तार

अमेरिका की यूरोपीय खोज और उपनिवेशीकरण के बाद अटलांटिक व्यापार का महत्त्व बढ़ा। यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका के बीच वस्तुओं, श्रम और पूँजी का प्रवाह बढ़ा।

चीनी, तंबाकू, कपास और अन्य वस्तुओं के उत्पादन तथा व्यापार में विस्तार हुआ। लेकिन इस व्यवस्था का एक अत्यंत अमानवीय पक्ष अटलांटिक दास व्यापार था, जिसमें लाखों अफ्रीकियों को जबरन अमेरिका ले जाया गया।

5.3 एशियाई व्यापार

एशिया यूरोपीय व्यापारियों के लिए मसालों, वस्त्रों, चाय और अन्य वस्तुओं का महत्त्वपूर्ण स्रोत था। पुर्तगाली, डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारी एशियाई व्यापार में सक्रिय हुए।

यूरोपीय कंपनियों ने व्यापारिक केंद्र स्थापित किए और कई क्षेत्रों में स्थानीय शासकों के साथ समझौते किए। समय के साथ कुछ कंपनियों ने सैन्य और राजनीतिक शक्ति भी प्राप्त कर ली।

इस प्रकार वाणिज्यिक विस्तार केवल आर्थिक प्रक्रिया नहीं रहा, बल्कि उसने औपनिवेशिक शासन और अंतरराष्ट्रीय शक्ति-संतुलन को भी प्रभावित किया।

6. कमर्शियलिज़्म और व्यापारी वर्ग का उदय

कमर्शियलिज़्म के विकास से व्यापारी वर्ग की सामाजिक और राजनीतिक भूमिका बढ़ी। मध्यकालीन व्यवस्था में भूमि-स्वामी सामंतों की प्रतिष्ठा प्रमुख थी, लेकिन व्यापार और बैंकिंग से समृद्ध लोगों ने नए प्रकार की आर्थिक शक्ति प्राप्त की।

व्यापारी वर्ग के पास धन, ऋण देने की क्षमता और दूरस्थ बाजारों से संपर्क था। कई शासक युद्धों और प्रशासनिक खर्चों के लिए व्यापारियों से ऋण लेते थे। इस कारण व्यापारी राज्य की आर्थिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगे।

व्यापारिक परिवारों ने नगरों में भवनों, धार्मिक संस्थाओं, विद्यालयों और कलात्मक गतिविधियों को संरक्षण दिया। इससे आर्थिक शक्ति का सांस्कृतिक प्रभाव भी बढ़ा।

हालाँकि, व्यापारी वर्ग एक समान समूह नहीं था। बड़े व्यापारियों, छोटे दुकानदारों, कारीगरों और वित्तीय संस्थानों के हित अलग-अलग हो सकते थे। इसलिए वाणिज्यिक समाज में भी आर्थिक असमानता मौजूद थी।

7. कमर्शियलिज़्म और उपनिवेशवाद

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

कमर्शियलिज़्म के ऐतिहासिक अध्ययन में उपनिवेशवाद का विश्लेषण आवश्यक है। यूरोपीय व्यापारिक विस्तार ने अनेक क्षेत्रों को वैश्विक बाजार से जोड़ा, लेकिन यह प्रक्रिया अक्सर राजनीतिक प्रभुत्व और आर्थिक असमानता के साथ आगे बढ़ी।

7.1 कच्चे माल की प्राप्ति

यूरोपीय व्यापारिक शक्तियाँ उपनिवेशों से कच्चा माल प्राप्त करने का प्रयास करती थीं। इसमें कपास, चीनी, तंबाकू, मसाले, धातुएँ और अन्य प्राकृतिक संसाधन शामिल थे।

उपनिवेशों में उत्पादन को कई बार मातृदेश की उद्योग-व्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुसार ढाला गया। इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था की स्वतंत्रता सीमित हो सकती थी।

7.2 तैयार वस्तुओं के बाजार

उपनिवेश यूरोपीय वस्तुओं के बाजार भी बने। औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत व्यापारिक नियमों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता था कि मातृदेश के उत्पादकों को लाभ मिले।

इससे स्थानीय उत्पादकों और व्यापारियों को प्रतिस्पर्धा की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय समाजों की प्रतिक्रिया, व्यापारिक समझौते और आर्थिक परिणाम अलग-अलग थे।

7.3 दासता और जबरन श्रम

अमेरिका में बागानी कृषि के विस्तार ने दास श्रम की माँग बढ़ाई। अटलांटिक दास व्यापार में अफ्रीकी लोगों को जबरन पकड़कर या बेचकर अमेरिका पहुँचाया गया।

यह व्यापार यूरोपीय और अमेरिकी अर्थव्यवस्थाओं के कुछ क्षेत्रों के लिए लाभदायक रहा, लेकिन इसके मानवीय परिणाम विनाशकारी थे। परिवार टूटे, समुदायों की सामाजिक संरचना प्रभावित हुई और नस्लीय दासता पर आधारित व्यवस्थाएँ स्थापित हुईं।

इसलिए कमर्शियलिज़्म के ऐतिहासिक विकास को केवल व्यापारिक सफलता के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं है। इसके साथ शोषण, असमानता और मानवाधिकारों के उल्लंघन का इतिहास भी जुड़ा है।

8. कमर्शियलिज़्म और आधुनिक पूँजीवाद

कमर्शियलिज़्म और आधुनिक पूँजीवाद के बीच घनिष्ठ संबंध है, लेकिन दोनों समान नहीं हैं।

पूँजीवाद ऐसी आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व, पूँजी निवेश, बाजार विनिमय और लाभ की खोज महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आधुनिक पूँजीवाद का विकास कई शताब्दियों में हुआ और इसमें औद्योगिक क्रांति, तकनीकी परिवर्तन, श्रम बाजार और वित्तीय संस्थाओं का योगदान रहा।

कमर्शियलिज़्म के विस्तार ने पूँजीवादी संबंधों के विकास के लिए कई आवश्यक परिस्थितियाँ तैयार कीं। व्यापारिक पूँजी का संचय हुआ, निवेश के नए साधन विकसित हुए और बाजारों का विस्तार हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

संयुक्त पूँजी कंपनियों तथा बैंकिंग संस्थाओं ने बड़े पैमाने पर निवेश को संभव बनाया। अंतरराष्ट्रीय व्यापार ने वस्तुओं और पूँजी के प्रवाह को बढ़ाया।

लेकिन आधुनिक पूँजीवाद केवल व्यापार पर आधारित नहीं है। औद्योगिक उत्पादन, तकनीक, श्रम-संगठन और उत्पादन की उत्पादकता भी उसके प्रमुख आधार हैं। इसलिए कमर्शियलिज़्म को पूँजीवाद के विकास की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए, न कि उसके पूर्ण पर्याय के रूप में।

9. कमर्शियलिज़्म के सकारात्मक प्रभाव

वाणिज्य-केंद्रित आर्थिक गतिविधियों के विस्तार से अनेक सकारात्मक परिवर्तन हुए—

9.1 बाजारों का विकास

व्यापारिक नेटवर्क के विस्तार से उत्पादकों को नए बाजार मिले। इससे वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ी और विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक संपर्क मजबूत हुए।

9.2 परिवहन का विकास

व्यापार की आवश्यकताओं ने सड़क, बंदरगाह, जहाजरानी और परिवहन प्रणालियों के विकास को प्रोत्साहित किया। बेहतर परिवहन ने आर्थिक गतिविधियों की लागत घटाने में सहायता की।

9.3 वित्तीय संस्थाओं का विस्तार

बैंकिंग, बीमा, ऋण और निवेश के साधनों ने व्यापार को अधिक संगठित बनाया। इससे बड़े व्यापारिक अभियानों के लिए पूँजी उपलब्ध होने लगी।

9.4 उत्पादन का विशेषीकरण

व्यापार के विस्तार से विभिन्न क्षेत्रों को उन वस्तुओं के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त करने का अवसर मिला, जिनमें उन्हें तुलनात्मक लाभ प्राप्त हो सकता था।

9.5 रोजगार के अवसर

व्यापार, परिवहन, गोदाम, बैंकिंग और उत्पादन से जुड़े क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़े। हालांकि, रोजगार की गुणवत्ता और लाभ का वितरण समान नहीं था।

9.6 सांस्कृतिक संपर्क

व्यापार के माध्यम से विभिन्न समाजों के बीच वस्तुओं के साथ-साथ विचारों, तकनीकों, भाषाओं और सांस्कृतिक प्रथाओं का आदान-प्रदान हुआ।

लेकिन सांस्कृतिक संपर्क कई बार साम्राज्यवादी प्रभुत्व और असमान शक्ति-संबंधों के अंतर्गत भी हुआ।

10. कमर्शियलिज़्म की सीमाएँ और आलोचना

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

कमर्शियलिज़्म के प्रभावों का मूल्यांकन करते समय इसकी सीमाओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

10.1 लाभ को सर्वोच्च प्राथमिकता

जब आर्थिक लाभ को अन्य सभी सामाजिक उद्देश्यों से ऊपर रखा जाता है, तब श्रमिकों, उपभोक्ताओं और पर्यावरण के हितों की उपेक्षा हो सकती है।

10.2 आर्थिक असमानता

व्यापारिक गतिविधियों से प्राप्त लाभ सभी लोगों तक समान रूप से नहीं पहुँचता। बड़े व्यापारियों और पूँजी के मालिकों को छोटे उत्पादकों तथा श्रमिकों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

10.3 एकाधिकार और प्रतिस्पर्धा की कमी

यदि बाजार पर कुछ बड़ी कंपनियों का नियंत्रण हो, तो वे कीमतों, उत्पादन और आपूर्ति पर प्रभाव डाल सकती हैं। इससे छोटे व्यापारियों और उपभोक्ताओं के हित प्रभावित हो सकते हैं।

10.4 उपभोक्तावाद

कमर्शियलिज़्म के आधुनिक सामाजिक अर्थ में वस्तुओं और सेवाओं के व्यावसायिक प्रचार को अत्यधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति शामिल हो सकती है। इससे लोगों में आवश्यकता से अधिक उपभोग की इच्छा बढ़ सकती है।

10.5 पर्यावरणीय समस्याएँ

अत्यधिक उत्पादन, संसाधनों का अनियंत्रित दोहन और वस्तुओं के तेजी से उपभोग से प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ सकता है।

10.6 सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों का व्यापारीकरण

जब शिक्षा, स्वास्थ्य, कला और संस्कृति को मुख्यतः लाभ कमाने के साधन के रूप में देखा जाता है, तब उनकी सामाजिक उपयोगिता और सार्वजनिक हित प्रभावित हो सकते हैं।

हालाँकि, इन क्षेत्रों में निजी उद्यम और व्यापारिक गतिविधियाँ हमेशा नकारात्मक नहीं होतीं। समस्या तब उत्पन्न होती है, जब लाभ की खोज सामाजिक उत्तरदायित्व और सार्वजनिक हित को पूरी तरह पीछे छोड़ देती है।

11. आधुनिक युग में कमर्शियलिज़्म

आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था में कमर्शियलिज़्म के अनेक रूप दिखाई देते हैं। अंतरराष्ट्रीय व्यापार, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, ऑनलाइन बाजार, विज्ञापन और वित्तीय सेवाएँ आज आर्थिक जीवन के प्रमुख घटक हैं।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

डिजिटल तकनीक ने व्यापार के स्वरूप को बदल दिया है। ई-कॉमर्स के माध्यम से उपभोक्ता दूरस्थ बाजारों से वस्तुएँ खरीद सकते हैं। डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन विपणन ने छोटे तथा बड़े व्यापारियों के लिए नए अवसर पैदा किए हैं।

लेकिन डिजिटल व्यापार के साथ डेटा की गोपनीयता, उपभोक्ता अधिकार, बाजार में बड़ी कंपनियों का प्रभुत्व और श्रमिकों की सुरक्षा जैसे प्रश्न भी जुड़े हैं।

आधुनिक कमर्शियलिज़्म की आलोचना में यह चिंता दिखाई देती है कि कहीं बाजार और लाभ की खोज जीवन के सभी क्षेत्रों पर हावी न हो जाए। इस दृष्टिकोण से आर्थिक विकास का मूल्यांकन केवल बिक्री, लाभ और उपभोग से नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, जीवन की गुणवत्ता और पर्यावरणीय स्थिरता से भी किया जाना चाहिए।

12. कमर्शियलिज़्म और भारतीय संदर्भ

भारतीय इतिहास में व्यापार और वाणिज्य की लंबी परंपरा रही है। प्राचीन और मध्यकालीन भारत में कृषि, शिल्प, वस्त्र उत्पादन, धातु-उद्योग, समुद्री व्यापार तथा आंतरिक बाजारों का महत्त्व था।

भारतीय व्यापारी पश्चिम एशिया, मध्य एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और अन्य क्षेत्रों के साथ व्यापार करते थे। मसाले, वस्त्र, रेशम, कीमती पत्थर और अनेक शिल्प उत्पाद अंतरराष्ट्रीय व्यापार का हिस्सा थे।

मध्यकालीन भारत में गुजरात, बंगाल, कोरोमंडल तट और मालाबार तट के बंदरगाह व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र थे। व्यापारी समुदायों ने वित्त, परिवहन और व्यापारिक नेटवर्क में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यूरोपीय कंपनियों के आगमन के बाद भारतीय व्यापार की परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। पुर्तगाली, डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारियों ने भारतीय महासागर के व्यापार में भाग लिया। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी ने धीरे-धीरे व्यापारिक संस्था से राजनीतिक शक्ति का रूप ग्रहण किया।

औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश साम्राज्य के हितों से जोड़ने वाली नीतियाँ अपनाई गईं। भारतीय कच्चे माल का निर्यात और ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं का आयात औपनिवेशिक आर्थिक संरचना के महत्त्वपूर्ण पहलू बने। हालांकि, भारतीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन क्षेत्र, उद्योग और काल के अनुसार अलग-अलग रहे।

भारतीय संदर्भ में कमर्शियलिज़्म का अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि व्यापारिक गतिविधियाँ किस प्रकार आर्थिक समृद्धि, सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक प्रभुत्व से जुड़ सकती हैं।

13. कमर्शियलिज़्म और वाणिज्यवाद में अंतर

कमर्शियलिज़्म और मर्केंटिलिज़्म में कई समानताएँ हैं, लेकिन दोनों की अवधारणाएँ अलग-अलग हैं।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

आधार	मर्कैंटिलिज़्म (Mercantilism)	कमर्शियलिज़्म (Commercialism)
सामान्य अर्थ	राष्ट्रीय संपदा और राज्य की शक्ति बढ़ाने वाली ऐतिहासिक आर्थिक विचारधारा	व्यापार और वाणिज्यिक हितों को महत्त्व देने वाली व्यापक आर्थिक प्रवृत्ति
ऐतिहासिक संदर्भ	विशेष रूप से पंद्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के यूरोप से संबंधित	व्यापक ऐतिहासिक और आधुनिक संदर्भों में प्रयुक्त
प्रमुख उद्देश्य	राजकीय शक्ति, राष्ट्रीय संपदा और अनुकूल व्यापार संतुलन बढ़ाना	व्यापार, बाजार, वाणिज्यिक लाभ और निवेश का विस्तार
राज्य की भूमिका	राज्य का सक्रिय हस्तक्षेप, संरक्षण और व्यापारिक नियंत्रण प्रमुख	संदर्भ के अनुसार राज्य, निजी उद्यम या बाजार की भूमिका प्रमुख हो सकती है
उपनिवेशवाद से संबंध	ऐतिहासिक रूप से औपनिवेशिक नीतियों से निकट संबंध	व्यापारिक विस्तार और बाजार-केंद्रित गतिविधियों से व्यापक संबंध
आर्थिक नियंत्रण	शुल्क, व्यापारिक प्रतिबंध और एकाधिकार प्रमुख साधन हो सकते हैं	प्रतिस्पर्धा, बाजार विस्तार और व्यावसायिक हितों पर बल हो सकता है
आधुनिक उपयोग	ऐतिहासिक आर्थिक नीतियों के अध्ययन में प्रमुख	आधुनिक समाज के व्यापारीकरण और व्यावसायिक प्रवृत्तियों की चर्चा में भी प्रयुक्त
पूँजीवाद से संबंध	पूँजीवादी विकास की प्रारंभिक ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़ा	व्यापार और बाजार-केंद्रित गतिविधियों के व्यापक अध्ययन से जुड़ा

यह ध्यान रखना चाहिए कि कमर्शियलिज़्म कोई सर्वमान्य, सुव्यवस्थित आर्थिक सिद्धांत नहीं है, जिसकी परिभाषा हर इतिहासकार एक समान रूप से स्वीकार करता हो। इसलिए किसी विशेष पाठ्यक्रम में यदि इस शब्द का प्रयोग वाणिज्यवाद के समान अर्थ में किया गया है, तो उत्तर लिखते समय पाठ्यक्रम में दी गई परिभाषा को प्राथमिकता देना उचित होगा।

14. निष्कर्ष

कमर्शियलिज़्म अथवा वाणिज्य-केंद्रित आर्थिक दृष्टिकोण का अध्ययन यूरोप में व्यापारिक समाज के विकास, व्यापारी वर्ग के उदय, बाजारों के विस्तार और आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने में सहायता करता है।

मध्यकालीन व्यापारिक केंद्रों से लेकर समुद्री खोजों, संयुक्त पूँजी कंपनियों और वैश्विक बाजारों तक व्यापार ने आर्थिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन, परिवहन, बैंकिंग और निवेश के नए रूप विकसित हुए।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

लेकिन वाणिज्यिक विस्तार के साथ आर्थिक असमानता, एकाधिकार, औपनिवेशिक शोषण और दासता जैसी समस्याएँ भी सामने आईं। आधुनिक समाज में भी व्यापार और व्यावसायिक गतिविधियाँ विकास के अवसर प्रदान करती हैं, लेकिन उनके प्रभावों का मूल्यांकन सामाजिक न्याय, श्रमिक अधिकारों, उपभोक्ता हितों और पर्यावरणीय स्थिरता के आधार पर करना आवश्यक है।

अतः कमर्शियलिज़्म को केवल व्यापारिक लाभ की खोज के रूप में नहीं, बल्कि आर्थिक गतिविधियों और सामाजिक जीवन के बीच संबंधों की व्यापक प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए। इसका संतुलित अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि व्यापार आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है, लेकिन उसका सामाजिक मूल्य इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसके लाभ किस प्रकार वितरित होते हैं और उसके परिणामों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

वैज्ञानिक क्रांति (Scientific Revolution)

1. प्रस्तावना

वैज्ञानिक क्रांति आधुनिक यूरोप के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक घटना थी। इसका विकास मुख्यतः सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में हुआ। इस काल में प्रकृति, ब्रह्मांड, गति, पदार्थ और मानव शरीर के अध्ययन के पुराने तरीकों में परिवर्तन आया। विद्वानों ने परंपरागत मान्यताओं को बिना परीक्षण स्वीकार करने के बजाय निरीक्षण, प्रयोग, गणितीय गणना और तार्किक विश्लेषण पर बल देना प्रारंभ किया।

मध्यकालीन यूरोप में प्राकृतिक जगत की व्याख्या पर प्राचीन यूनानी विचारों तथा ईसाई धार्मिक संस्थाओं का व्यापक प्रभाव था। अरस्तू के दर्शन और टॉलेमी की भू-केंद्रित ब्रह्मांड संबंधी अवधारणा को लंबे समय तक महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा। लेकिन पुनर्जागरण, मुद्रण कला, समुद्री यात्राओं और नए बौद्धिक वातावरण ने प्रकृति के अध्ययन के प्रति नई जिज्ञासा उत्पन्न की।

निकोलस कोपरनिकस, जोहानेस केप्लर, गैलीलियो गैलीली, फ्रांसिस बेकन, रेने देकार्त और आइज़ैक न्यूटन जैसे विद्वानों ने वैज्ञानिक चिंतन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनके कार्यों ने आधुनिक विज्ञान के लिए आधार तैयार किया।

वैज्ञानिक क्रांति केवल कुछ आविष्कारों का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति में परिवर्तन का प्रतीक थी। इसने आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तकनीकी विकास और औद्योगिक समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2. वैज्ञानिक क्रांति का अर्थ

वैज्ञानिक क्रांति से आशय उस व्यापक परिवर्तन से है, जिसके अंतर्गत यूरोप में प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन और व्याख्या के तरीकों में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया।

इस क्रांति में ज्ञान प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रियाओं को विशेष महत्त्व दिया गया—

1. प्रकृति का प्रत्यक्ष निरीक्षण।
2. नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोग।
3. गणितीय विश्लेषण।
4. तर्क और प्रमाण का उपयोग।
5. स्थापित मान्यताओं की आलोचनात्मक समीक्षा।
6. वैज्ञानिक सिद्धांतों का परीक्षण।
7. नए उपकरणों के माध्यम से अवलोकन की क्षमता का विस्तार।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

वैज्ञानिक क्रांति का अर्थ यह नहीं है कि इससे पहले विज्ञान या तकनीक का अस्तित्व नहीं था। प्राचीन भारत, चीन, यूनान, अरब और अन्य सभ्यताओं में गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा तथा तकनीकी ज्ञान का विकास हुआ था। यूरोप की वैज्ञानिक क्रांति को समझने के लिए इन व्यापक वैश्विक ज्ञान-परंपराओं के योगदान को भी स्वीकार करना आवश्यक है।

3. वैज्ञानिक क्रांति की पृष्ठभूमि

3.1 पुनर्जागरण का प्रभाव

पुनर्जागरण ने यूरोप में प्राचीन साहित्य, दर्शन, कला और ज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। मानव क्षमता, तर्क और अनुभव के प्रति रुचि बढ़ी।

विद्वानों ने प्राचीन ग्रंथों का पुनः अध्ययन किया और उनकी व्याख्याओं की समीक्षा प्रारंभ की। इससे बौद्धिक जीवन में प्रश्न पूछने और नए निष्कर्ष निकालने की प्रवृत्ति मजबूत हुई।

3.2 मुद्रण कला का विकास

पंद्रहवीं शताब्दी में यूरोप में मुद्रण तकनीक के विस्तार से पुस्तकों का प्रसार बढ़ा। वैज्ञानिक विचारों और खोजों को पहले की तुलना में अधिक व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाना संभव हुआ।

मुद्रित पुस्तकों और चित्रों ने वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार, विचारों की तुलना और प्रयोगों के परिणामों को साझा करने में सहायता की।

3.3 समुद्री यात्राएँ और भौगोलिक खोजें

यूरोपीय समुद्री यात्राओं ने खगोलशास्त्र, भूगोल, मानचित्र निर्माण और नौवहन संबंधी ज्ञान की आवश्यकता बढ़ाई। नाविकों को दिशा निर्धारित करने, समुद्री मार्गों का अध्ययन करने और समय तथा स्थान का अनुमान लगाने के लिए अधिक सटीक तकनीकों की जरूरत थी।

इन आवश्यकताओं ने गणितीय और खगोलीय ज्ञान के विकास को प्रोत्साहित किया।

3.4 धार्मिक सुधार आंदोलन

सोलहवीं शताब्दी के धर्म-सुधार आंदोलन ने यूरोप में धार्मिक प्राधिकार और परंपरागत संस्थाओं के प्रति नए प्रश्न उठाए। वैज्ञानिक क्रांति का प्रत्यक्ष कारण केवल धर्म-सुधार नहीं था, लेकिन उस समय के व्यापक बौद्धिक वातावरण में स्थापित मान्यताओं की समीक्षा की प्रवृत्ति को महत्त्व मिला।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अनेक वैज्ञानिक स्वयं धार्मिक विश्वास रखते थे। इसलिए वैज्ञानिक क्रांति को धर्म और विज्ञान के बीच एक सरल, निरंतर संघर्ष के रूप में देखना ऐतिहासिक दृष्टि से पर्याप्त नहीं है।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

3.5 वैज्ञानिक उपकरणों का विकास

दूरबीन, सूक्ष्मदर्शी और अन्य उपकरणों के विकास ने प्राकृतिक जगत के अध्ययन को अधिक सूक्ष्म बनाया। इन उपकरणों ने ऐसी घटनाओं का निरीक्षण संभव किया, जिन्हें सामान्य दृष्टि से देखना कठिन था।

नए उपकरणों ने पुराने वैज्ञानिक विचारों की जाँच करने तथा नए निष्कर्ष प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4. वैज्ञानिक क्रांति की प्रमुख विशेषताएँ

4.1 निरीक्षण और प्रयोग पर बल

वैज्ञानिक क्रांति की एक प्रमुख विशेषता अनुभव और प्रयोग पर आधारित ज्ञान को महत्त्व देना था। किसी घटना की व्याख्या के लिए केवल प्राचीन प्राधिकारों का उल्लेख पर्याप्त नहीं माना जाने लगा।

वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक घटनाओं का निरीक्षण किया, प्रयोगों से प्राप्त परिणामों का अध्ययन किया और उनके आधार पर निष्कर्ष निकाले।

4.2 गणितीय पद्धति का उपयोग

प्रकृति की घटनाओं को गणितीय नियमों के माध्यम से समझने की प्रवृत्ति मजबूत हुई। गति, खगोलीय पिंडों की स्थिति और भौतिक घटनाओं के अध्ययन में गणित का उपयोग बढ़ा।

इससे वैज्ञानिक सिद्धांतों को अधिक व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने और उनकी भविष्यवाणी करने की क्षमता विकसित हुई।

4.3 भू-केंद्रित अवधारणा को चुनौती

मध्यकालीन यूरोप में टॉलेमी की भू-केंद्रित व्यवस्था का व्यापक प्रभाव था। इस व्यवस्था में पृथ्वी को ब्रह्मांड का केंद्र माना जाता था।

कोपरनिकस ने सूर्य-केंद्रित मॉडल प्रस्तुत करके इस धारणा को चुनौती दी। बाद के खगोलविदों के अवलोकनों और गणितीय अध्ययनों ने इस परिवर्तन को आगे बढ़ाया।

4.4 प्रकृति को नियमबद्ध व्यवस्था के रूप में देखना

वैज्ञानिक क्रांति के दौरान यह विचार मजबूत हुआ कि प्राकृतिक घटनाओं को व्यवस्थित नियमों के आधार पर समझा जा सकता है।

इस दृष्टिकोण ने भौतिकी, खगोलशास्त्र और अन्य प्राकृतिक विज्ञानों के विकास को प्रोत्साहित किया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

4.5 ज्ञान की संस्थागत व्यवस्था

वैज्ञानिक ज्ञान का विकास धीरे-धीरे व्यक्तिगत विद्वानों की गतिविधियों से आगे बढ़कर संस्थागत रूप लेने लगा। वैज्ञानिक समाजों, अकादमियों और पत्रिकाओं ने शोध के परिणामों को साझा करने तथा विचारों की समीक्षा करने में सहायता की।

1660 में स्थापित रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन और 1666 में स्थापित फ्रांसीसी विज्ञान अकादमी इस प्रक्रिया के प्रमुख उदाहरण हैं।

5. वैज्ञानिक क्रांति के प्रमुख वैज्ञानिक

5.1 निकोलस कोपरनिकस (1473–1543)

कोपरनिकस पोलैंड के खगोलविद थे। उन्होंने ब्रह्मांड की सूर्य-केंद्रित व्यवस्था का सिद्धांत प्रस्तुत किया।

उनकी प्रसिद्ध पुस्तक *De revolutionibus orbium coelestium* 1543 में प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने प्रस्तावित किया कि पृथ्वी सहित ग्रह सूर्य के चारों ओर गति करते हैं।

उनके विचार ने भू-केंद्रित ब्रह्मांड संबंधी पारंपरिक अवधारणा को चुनौती दी। इसे वैज्ञानिक क्रांति के आरंभिक महत्त्वपूर्ण पड़ावों में गिना जाता है।

5.2 जोहानेस केप्लर (1571–1630)

केप्लर जर्मन खगोलविद और गणितज्ञ थे। उन्होंने ग्रहों की गति के संबंध में तीन महत्त्वपूर्ण नियम प्रस्तुत किए।

उनके अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि ग्रह सूर्य के चारों ओर पूर्ण वृत्ताकार नहीं, बल्कि दीर्घवृत्ताकार कक्षाओं में गति करते हैं।

केप्लर के नियमों ने खगोलीय घटनाओं को गणितीय आधार पर समझने में सहायता की और आगे न्यूटन के कार्य के लिए आधार तैयार किया।

5.3 गैलीलियो गैलीली (1564–1642)

गैलीलियो इटली के वैज्ञानिक थे। उन्होंने दूरबीन के माध्यम से आकाश का निरीक्षण किया और बृहस्पति के चार बड़े उपग्रहों, चंद्रमा की सतह पर पर्वतों तथा शुक्र की कलाओं का अध्ययन किया।

इन अवलोकनों ने ब्रह्मांड संबंधी पारंपरिक मान्यताओं पर प्रश्न उठाए। उन्होंने गति और यांत्रिकी के अध्ययन में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

गैलीलियो के कार्यों ने निरीक्षण, प्रयोग और गणितीय विश्लेषण के महत्त्व को मजबूत किया।

Dr RAkesh Mohan NatiyaL

5.4 फ्रांसिस बेकन (1561–1626)

फ्रांसिस बेकन अंग्रेज दार्शनिक और विचारक थे। उन्होंने व्यवस्थित निरीक्षण, प्रयोग और अनुभव के आधार पर ज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया।

उनका मानना था कि प्रकृति के अध्ययन में पूर्वाग्रहों और बिना परीक्षण स्वीकार की गई धारणाओं से बचना चाहिए।

बेकन ने वैज्ञानिक अनुसंधान को उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने का साधन माना। उनके विचारों ने अनुभववादी पद्धति के विकास में योगदान दिया।

5.5 रेने देकार्त (1596–1650)

देकार्त फ्रांसीसी दार्शनिक और गणितज्ञ थे। उन्होंने तार्किक विश्लेषण, संदेह और व्यवस्थित चिंतन पर बल दिया।

उनकी पद्धति का उद्देश्य ज्ञान के आधारों की जाँच करना था। गणित और दर्शन के क्षेत्र में उनके कार्यों ने आधुनिक बौद्धिक परंपरा को प्रभावित किया।

देकार्त का दृष्टिकोण बेकन की अनुभववादी पद्धति से अलग था, लेकिन दोनों ने ज्ञान की व्यवस्थित खोज को महत्व दिया।

5.6 आइज़ैक न्यूटन (1642–1727)

न्यूटन वैज्ञानिक क्रांति के सबसे प्रभावशाली वैज्ञानिकों में से एक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक *Philosophiæ Naturalis Principia Mathematica* 1687 में प्रकाशित हुई।

इस पुस्तक में उन्होंने गति के तीन नियम और सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इन सिद्धांतों ने पृथ्वी पर वस्तुओं की गति और आकाशीय पिंडों की गति को एक व्यापक गणितीय ढाँचे में समझाने में सहायता की।

न्यूटन के कार्यों ने शास्त्रीय भौतिकी के विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया।

6. वैज्ञानिक क्रांति का खगोलशास्त्र पर प्रभाव

वैज्ञानिक क्रांति ने खगोलशास्त्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। कोपरनिकस ने सूर्य-केंद्रित मॉडल प्रस्तुत किया, केप्लर ने ग्रहों की गति के नियम विकसित किए और गैलीलियो के दूरबीन संबंधी अवलोकनों ने आकाशीय पिंडों के बारे में नए तथ्य सामने रखे।

न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण और गति के नियमों के माध्यम से खगोलीय घटनाओं की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

इन परिवर्तनों से ब्रह्मांड की प्रकृति के संबंध में मानव समझ में वृद्धि हुई। खगोलशास्त्र अधिक गणितीय और निरीक्षण-आधारित विषय बना।

7. वैज्ञानिक क्रांति का चिकित्सा और शरीर-विज्ञान पर प्रभाव

वैज्ञानिक क्रांति के व्यापक बौद्धिक वातावरण में मानव शरीर के अध्ययन में भी परिवर्तन आए।

आंद्रेयास वेसालियस ने शरीर रचना विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी पुस्तक *De humani corporis fabrica* 1543 में प्रकाशित हुई, जिसमें मानव शरीर की संरचना का विस्तृत वर्णन था।

विलियम हार्वे ने रक्त परिसंचरण के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1628 में प्रकाशित उनके ग्रंथ ने हृदय और रक्त प्रवाह की वैज्ञानिक समझ को विकसित किया।

इन अध्ययनों ने चिकित्सा को निरीक्षण और प्रमाण पर आधारित बनाने की दिशा में योगदान दिया। हालाँकि, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का विकास अनेक सदियों में हुआ और इसमें विभिन्न सभ्यताओं की परंपराओं का योगदान रहा।

8. वैज्ञानिक क्रांति का समाज पर प्रभाव

वैज्ञानिक क्रांति ने यूरोपीय समाज में ज्ञान के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित किया। तर्क, निरीक्षण और प्रमाण के महत्त्व में वृद्धि हुई।

शिक्षा और बौद्धिक संस्थाओं में गणित तथा प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन को प्रोत्साहन मिला। वैज्ञानिक ज्ञान ने तकनीकी आविष्कारों और व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए नए अवसर प्रदान किए।

इस प्रक्रिया ने आगे चलकर प्रबोधन आंदोलन को भी प्रभावित किया। प्रबोधन के विचारकों ने तर्क, आलोचनात्मक चिंतन और मानव समाज में सुधार की संभावनाओं पर बल दिया।

फिर भी वैज्ञानिक क्रांति के लाभ तत्काल सभी लोगों तक नहीं पहुँचे। शिक्षा और वैज्ञानिक संस्थाओं तक पहुँच सामाजिक स्थिति, आर्थिक संसाधनों और लिंग के आधार पर असमान थी।

9. वैज्ञानिक क्रांति और औद्योगिक विकास

वैज्ञानिक क्रांति ने प्रकृति की घटनाओं को समझने के नए तरीके विकसित किए। इनसे तकनीकी विकास के लिए बौद्धिक आधार तैयार हुआ।

हालाँकि, वैज्ञानिक क्रांति और औद्योगिक क्रांति के बीच संबंध को सरल रूप में नहीं समझना चाहिए। औद्योगिक क्रांति के कई आविष्कार व्यावहारिक अनुभव, कारीगरों के कौशल, व्यापारिक आवश्यकताओं और तकनीकी प्रयोगों से विकसित हुए थे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इसके बावजूद वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीकी नवाचारों का पारस्परिक संबंध समय के साथ मजबूत होता गया। भौतिकी, रसायन विज्ञान और इंजीनियरिंग के विकास ने औद्योगिक उत्पादन में नए अवसर उत्पन्न किए।

10. वैज्ञानिक क्रांति की सीमाएँ

वैज्ञानिक क्रांति ने ज्ञान की नई संभावनाएँ विकसित कीं, लेकिन इसकी सीमाएँ भी थीं।

पहली, वैज्ञानिक संस्थाओं और शिक्षा तक पहुँच समाज के सभी वर्गों के लिए समान नहीं थी।

दूसरी, प्रारंभिक आधुनिक विज्ञान का विकास यूरोप के भीतर तथा बाहर पहले से मौजूद ज्ञान-परंपराओं से प्रभावित था। इसलिए इसे केवल यूरोप की पूर्णतः स्वतंत्र उपलब्धि के रूप में देखना उचित नहीं है।

तीसरी, वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग हमेशा मानव कल्याण के लिए नहीं हुआ। आधुनिक इतिहास में विज्ञान और तकनीक का उपयोग युद्ध, हथियारों और औपनिवेशिक प्रभुत्व को मजबूत करने के लिए भी किया गया।

11. निष्कर्ष

वैज्ञानिक क्रांति आधुनिक विश्व के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन थी। इसने प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन में निरीक्षण, प्रयोग, गणित और तर्क को महत्त्व दिया।

कोपरनिकस, केप्लर, गैलीलियो, बेकन, देकार्त और न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों ने आधुनिक विज्ञान के विकास में योगदान दिया। उनके कार्यों ने खगोलशास्त्र, भौतिकी, शरीर-विज्ञान और अन्य विषयों को नई दिशा प्रदान की।

वैज्ञानिक क्रांति ने यूरोप में बौद्धिक परिवर्तन को प्रोत्साहित किया और आगे चलकर प्रबोधन तथा तकनीकी विकास के लिए आधार तैयार किया। इसलिए इसे आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अवस्था माना जाता है।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

कृषि क्रांति (Agricultural Revolution)

1. प्रस्तावना

कृषि मानव सभ्यता की आधारभूत गतिविधियों में से एक है। भोजन की उपलब्धता, जनसंख्या का विकास, स्थायी बस्तियों का निर्माण और सामाजिक संगठन का विस्तार कृषि पर निर्भर रहा है। आधुनिक यूरोप के इतिहास में कृषि क्रांति का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसने खेती की तकनीकों, भूमि-प्रबंधन, फसल उत्पादन और ग्रामीण समाज की संरचना में परिवर्तन किए।

यूरोप में विशेष रूप से सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के दौरान कृषि उत्पादन में सुधार के अनेक प्रयास हुए। इंग्लैंड में भूमि के उपयोग, फसल चक्र, पशुपालन, बीज चयन और कृषि उपकरणों में परिवर्तन दिखाई दिए। इन परिवर्तनों ने कई क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सहायता की।

कृषि क्रांति का संबंध केवल खेती की नई तकनीकों से नहीं था। इसके साथ भूमि पर अधिकार, ग्रामीण श्रम, सामुदायिक संसाधनों और सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन हुए। कुछ किसानों को उत्पादन के नए अवसर मिले, जबकि अनेक छोटे कृषकों के लिए भूमि और आजीविका तक पहुँच कठिन हुई।

कृषि क्रांति ने औद्योगिक क्रांति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाने में योगदान दिया। बढ़े हुए कृषि उत्पादन ने कुछ क्षेत्रों में भोजन की उपलब्धता बढ़ाई, जबकि कृषि में श्रम की आवश्यकता और भूमि व्यवस्था में परिवर्तन ने ग्रामीण जनसंख्या की गतिशीलता को प्रभावित किया।

2. कृषि क्रांति का अर्थ

कृषि क्रांति से आशय कृषि उत्पादन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हुए उन व्यापक परिवर्तनों से है, जिनके कारण खेती की तकनीकों, भूमि-उपयोग, फसल उत्पादन और पशुपालन की प्रणालियों में महत्त्वपूर्ण सुधार हुए।

कृषि क्रांति की प्रमुख प्रक्रियाओं में निम्नलिखित शामिल थीं—

1. फसल चक्र में सुधार।
2. बेहतर बीजों का उपयोग।
3. पशुपालन की तकनीकों में परिवर्तन।
4. कृषि उपकरणों का विकास।
5. भूमि के बड़े और अधिक व्यवस्थित खेतों में पुनर्गठन।
6. कृषि उत्पादन को बाजार से जोड़ना।
7. खाद और भूमि-सुधार के तरीकों का उपयोग।
8. कृषि श्रम के संगठन में परिवर्तन।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

कृषि क्रांति का विकास सभी यूरोपीय देशों में एक ही समय पर या समान गति से नहीं हुआ। इंग्लैंड में इसके कुछ प्रमुख परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देते हैं, लेकिन अन्य क्षेत्रों में भी कृषि सुधार हुए।

इसलिए कृषि क्रांति को एक लंबी और असमान ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए।

3. कृषि क्रांति की पृष्ठभूमि

3.1 मध्यकालीन कृषि व्यवस्था

मध्यकालीन यूरोप की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि था। अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती थी और खेती से जीवनयापन करती थी।

कई क्षेत्रों में सामंती संबंधों के अंतर्गत किसान भूमि पर खेती करते थे और बदले में सामंतों को कर, उपज या श्रम देना पड़ता था।

खेती की तकनीकें क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग थीं। अनेक स्थानों पर कृषि उत्पादकता कम थी और मौसम, मिट्टी तथा पारंपरिक तकनीकों पर निर्भरता अधिक थी।

3.2 जनसंख्या में वृद्धि

कुछ यूरोपीय क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ने से खाद्यान्न की माँग में वृद्धि हुई। बढ़ती माँग ने किसानों और भूमि-स्वामियों को उत्पादन बढ़ाने के उपाय खोजने के लिए प्रेरित किया।

हालाँकि, जनसंख्या और कृषि उत्पादन का संबंध जटिल था। युद्ध, महामारियाँ, अकाल और जलवायु परिवर्तन कई बार कृषि उत्पादन को प्रभावित करते थे।

3.3 बाजारों का विस्तार

नगरों और व्यापारिक गतिविधियों के विकास से कृषि उत्पादों के बाजार बढ़े। अब किसान केवल स्थानीय आवश्यकताओं के लिए ही नहीं, बल्कि बाजार में बेचने के लिए भी उत्पादन करने लगे।

कृषि उत्पादन का बाजार से बढ़ता संबंध भूमि-प्रबंधन, फसल चयन और पशुपालन की पद्धतियों में बदलाव का कारण बना।

3.4 तकनीकी सुधार

कृषि उपकरणों, बीज चयन, भूमि की तैयारी और पशुपालन के तरीकों में सुधार ने कृषि उत्पादन बढ़ाने की संभावनाएँ उत्पन्न कीं।

इन सुधारों का प्रसार अलग-अलग क्षेत्रों में अलग गति से हुआ। कुछ तकनीकें लंबे समय से मौजूद थीं, लेकिन उनके उपयोग और विस्तार में परिवर्तन आया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

4. कृषि क्रांति की प्रमुख विशेषताएँ

4.1 फसल चक्र में सुधार

पारंपरिक खेती में कई क्षेत्रों में भूमि को कुछ समय के लिए खाली छोड़ने की व्यवस्था थी, ताकि उसकी उर्वरता बनी रहे। कुछ यूरोपीय क्षेत्रों में कृषि सुधारकों ने ऐसी फसल प्रणालियों को बढ़ावा दिया, जिनमें भूमि का अधिक नियमित उपयोग किया जा सके।

इंग्लैंड में चार-फसली चक्र की एक प्रसिद्ध प्रणाली विकसित हुई, जिसमें गेहूँ, शलजम, जौ और तिपतिया घास जैसी फसलों का क्रमिक उपयोग किया जाता था।

इस प्रणाली के लाभों में शामिल थे—

- भूमि का अधिक नियमित उपयोग।
- पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता।
- मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायता।
- कृषि उत्पादन में संभावित वृद्धि।

हालाँकि, फसल चक्र की प्रणालियाँ क्षेत्रीय परिस्थितियों और मिट्टी के प्रकार के अनुसार अलग-अलग थीं।

4.2 शलजम और चारे वाली फसलों का विस्तार

कृषि सुधारों के दौरान शलजम और तिपतिया घास जैसी फसलों का महत्व बढ़ा। इनसे पशुओं को अतिरिक्त चारा प्राप्त हुआ।

पहले कुछ क्षेत्रों में सर्दियों के दौरान पशुओं के लिए पर्याप्त चारे की कमी होती थी। चारे वाली फसलों के विस्तार से अधिक पशुओं को वर्षभर पालना संभव हुआ।

पशुपालन में सुधार से दूध, मांस, खाद और अन्य उत्पादों की उपलब्धता बढ़ाने में सहायता मिली।

4.3 पशुपालन में सुधार

कृषि क्रांति के दौरान पशुओं की नस्लों के चयन और प्रजनन पर अधिक ध्यान दिया गया। कुछ कृषकों ने ऐसे पशुओं के प्रजनन को प्रोत्साहित किया, जिनसे अधिक मांस, दूध या अन्य उपयोगी उत्पाद प्राप्त किए जा सकते थे।

रॉबर्ट बेकवेल को इंग्लैंड में पशुधन के व्यवस्थित प्रजनन से जुड़े प्रमुख कृषि सुधारकों में गिना जाता है।

पशुपालन में सुधार ने कृषि उत्पादन और ग्रामीण बाजारों को प्रभावित किया। लेकिन इन सुधारों के लाभ सभी कृषकों को समान रूप से नहीं मिले, क्योंकि बेहतर नस्लों और पशुधन में निवेश के लिए पूँजी की आवश्यकता होती थी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

4.4 कृषि उपकरणों में सुधार

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए उपकरणों में भी परिवर्तन हुए। बेहतर हल, बीज बोने की तकनीकें और अन्य उपकरण खेती को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक हुए।

जेथ्रो टुल ने बीज बोने की मशीन के विकास और कृषि सुधारों के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी पुस्तक *The New Horse-Hoeing Husbandry* 1731 में प्रकाशित हुई।

बीज बोने की मशीन से बीजों को अधिक व्यवस्थित ढंग से बोना संभव हुआ। इससे बीजों के उपयोग में दक्षता बढ़ सकती थी और फसल प्रबंधन बेहतर हो सकता था।

4.5 भूमि का घेराबंदीकरण

इंग्लैंड की कृषि क्रांति में *Enclosure Movement* अर्थात भूमि के घेराबंदीकरण की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण थी।

कई ग्रामीण क्षेत्रों में पहले सामुदायिक भूमि और खुले खेतों की व्यवस्था थी। समय के साथ इन भूमि क्षेत्रों को सीमांकित करके व्यक्तिगत स्वामित्व या नियंत्रण के अंतर्गत व्यवस्थित किया गया।

घेराबंदीकरण के समर्थकों का मानना था कि इससे भूमि का अधिक प्रभावी उपयोग और कृषि सुधार संभव होंगे। लेकिन इस प्रक्रिया के सामाजिक परिणाम जटिल थे।

कुछ बड़े भूमि-स्वामियों और किसानों को भूमि के व्यवस्थित प्रबंधन से लाभ हुआ, जबकि अनेक छोटे किसानों और ग्रामीण परिवारों की सामुदायिक संसाधनों तक पहुँच सीमित हो गई।

4.6 कृषि का व्यावसायीकरण

कृषि क्रांति के दौरान खेती का बाजार से संबंध मजबूत हुआ। कई कृषकों ने बाजार की माँग के अनुसार फसलें उगाना और पशुपालन करना प्रारंभ किया।

कृषि उत्पादों की बिक्री से आय अर्जित करने की प्रवृत्ति बढ़ी। इससे खेती में निवेश और उत्पादन बढ़ाने के अवसर पैदा हुए।

लेकिन व्यावसायिक कृषि के विकास से छोटे कृषकों पर प्रतिस्पर्धा का दबाव भी बढ़ा। बाजार में कीमतों के उतार-चढ़ाव का प्रभाव किसानों की आय पर पड़ने लगा।

5. कृषि क्रांति के प्रमुख सुधारक

5.1 जेथ्रो टुल (1674–1741)

जेथ्रो टुल अंग्रेज कृषि सुधारक थे। उन्होंने बीज बोने की मशीन और व्यवस्थित खेती की तकनीकों को बढ़ावा दिया।

उनका उद्देश्य बीजों का अधिक प्रभावी उपयोग करना और खेती की उत्पादकता में सुधार लाना था।

Dr. RAkesh Mohan NatiyaL

टुल के विचारों ने इंग्लैंड में कृषि सुधारों की चर्चा को प्रोत्साहित किया। हालाँकि, उनकी सभी तकनीकें तत्काल सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से स्वीकार नहीं की गईं।

5.2 लॉर्ड टाउनशेंड (1674–1738)

चार्ल्स टाउनशेंड को कृषि सुधारों के संदर्भ में फसल चक्र और शलजम की खेती को प्रोत्साहित करने के कारण याद किया जाता है।

उनके नाम से जुड़ी चार-फसली प्रणाली में गेहूँ, शलजम, जौ और तिपतिया घास जैसी फसलों का उपयोग किया जाता था।

इस प्रकार की फसल प्रणालियों ने भूमि के अधिक नियमित उपयोग और पशुपालन को प्रोत्साहित किया।

5.3 रॉबर्ट बेकवेल (1725–1795)

रॉबर्ट बेकवेल पशुधन के चयनात्मक प्रजनन से जुड़े प्रमुख कृषि सुधारक थे। उन्होंने ऐसे पशुओं के प्रजनन पर बल दिया, जिनसे उपयोगी कृषि उत्पाद अधिक मात्रा में प्राप्त किए जा सकें।

उनके कार्यों ने पशुधन सुधार और व्यवस्थित प्रजनन के विकास में योगदान दिया।

5.4 थॉमस कोक

थॉमस कोक इंग्लैंड के कृषि सुधारों से जुड़े एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। उन्होंने कृषि प्रदर्शन, भूमि प्रबंधन और आधुनिक खेती की पद्धतियों के प्रचार में योगदान दिया।

उनके प्रयासों से कृषि संबंधी प्रयोगों और बेहतर उत्पादन प्रणालियों पर ध्यान बढ़ा।

6. कृषि क्रांति और भूमि व्यवस्था में परिवर्तन

कृषि क्रांति के दौरान भूमि पर स्वामित्व, नियंत्रण और उपयोग के तरीकों में परिवर्तन हुआ। विशेष रूप से इंग्लैंड में घेराबंदीकरण ने ग्रामीण समाज की संरचना को प्रभावित किया।

खुले खेतों और सामुदायिक भूमि की व्यवस्था में ग्रामीण परिवारों को कुछ संसाधनों तक पहुँच प्राप्त थी। घेराबंदीकरण के बाद इन संसाधनों पर व्यक्तिगत नियंत्रण बढ़ा।

कुछ बड़े कृषकों ने नई तकनीकों और बेहतर प्रबंधन के माध्यम से उत्पादन बढ़ाया। लेकिन छोटे किसानों के लिए भूमि तक पहुँच बनाए रखना कठिन हो सकता था।

भूमि से वंचित होने वाले कुछ ग्रामीण परिवारों ने मजदूरी, घरेलू उद्योगों या नगरों में रोजगार की तलाश की। इस प्रक्रिया ने ग्रामीण श्रम की गतिशीलता को प्रभावित किया।

हालाँकि, यह कहना उचित नहीं होगा कि सभी ग्रामीण लोग एक ही प्रक्रिया से भूमि से वंचित हुए। भूमि व्यवस्था में परिवर्तन अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय और परिस्थितियों में हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

7. कृषि क्रांति का खाद्यान्न उत्पादन पर प्रभाव

कृषि तकनीकों में सुधार, फसल चक्र, पशुपालन और भूमि प्रबंधन ने अनेक क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बढ़ाने में योगदान दिया।

खाद्यान्न की उपलब्धता में सुधार से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि को समर्थन मिला। पशुपालन से खाद और चारे की उपलब्धता बढ़ी, जबकि बेहतर कृषि प्रबंधन से भूमि की उत्पादकता में सुधार हुआ।

फिर भी कृषि उत्पादन हमेशा स्थिर नहीं रहा। मौसम, फसल रोग, युद्ध, कीमतों में उतार-चढ़ाव और सामाजिक असमानता खाद्य उपलब्धता को प्रभावित करते रहे।

इसलिए कृषि क्रांति के परिणामों का मूल्यांकन करते समय उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्न के वितरण और किसानों की आर्थिक स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए।

8. कृषि क्रांति और जनसंख्या वृद्धि

कृषि उत्पादन में सुधार ने यूरोप के कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि को समर्थन दिया। भोजन की बेहतर उपलब्धता और कृषि उत्पादन में वृद्धि से समाज को अधिक लोगों का भरण-पोषण करने में सहायता मिली।

लेकिन जनसंख्या वृद्धि के कारण केवल कृषि क्रांति नहीं थी। मृत्यु-दर, महामारी, विवाह की आयु, आय, प्रवासन और अन्य सामाजिक कारकों ने भी भूमिका निभाई।

जनसंख्या में वृद्धि से वस्तुओं की माँग बढ़ी। इससे बाजारों, परिवहन और उत्पादन के विस्तार के लिए अवसर पैदा हुए।

9. कृषि क्रांति और औद्योगिक क्रांति का संबंध

कृषि क्रांति ने औद्योगिक क्रांति के विकास में कई प्रकार से योगदान दिया।

पहला, कृषि उत्पादन में वृद्धि से कुछ क्षेत्रों में बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन की उपलब्धता बढ़ी।

दूसरा, भूमि व्यवस्था और कृषि तकनीकों में परिवर्तन से ग्रामीण श्रम की गतिशीलता प्रभावित हुई। कुछ लोग कृषि से निकलकर उद्योगों और नगरों में रोजगार खोजने लगे।

तीसरा, कृषि से प्राप्त आय और भूमि-स्वामियों की पूँजी ने कुछ परिस्थितियों में उद्योगों, परिवहन और व्यापार में निवेश के अवसर पैदा किए।

चौथा, कृषि उत्पादों की बढ़ती माँग और बाजारों के विस्तार ने वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित किया।

फिर भी कृषि क्रांति को औद्योगिक क्रांति का एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता। औद्योगिक क्रांति के विकास में कोयले और लोहे की उपलब्धता, तकनीकी नवाचार, पूँजी निवेश, व्यापारिक नेटवर्क, श्रम और राजनीतिक संस्थाओं ने भी भूमिका निभाई।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

10. कृषि क्रांति के सकारात्मक परिणाम

कृषि क्रांति के प्रमुख सकारात्मक परिणाम निम्नलिखित थे—

1. **कृषि उत्पादन में वृद्धि:** बेहतर खेती की पद्धतियों ने उत्पादन बढ़ाने में योगदान दिया।
2. **फसल चक्र में सुधार:** भूमि का अधिक नियमित उपयोग संभव हुआ।
3. **पशुपालन का विकास:** पशुधन के चयन और चारे की उपलब्धता में सुधार हुआ।
4. **कृषि उपकरणों में सुधार:** बीज बोने और भूमि प्रबंधन की तकनीकों का विकास हुआ।
5. **बाजार का विस्तार:** कृषि उत्पादों का व्यापार बढ़ा।
6. **ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन:** कृषि उत्पादन और व्यापार के बीच संबंध मजबूत हुए।
7. **औद्योगिक विकास को समर्थन:** भोजन, श्रम और पूँजी की उपलब्धता ने कुछ क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित किया।

11. कृषि क्रांति के नकारात्मक परिणाम

कृषि क्रांति के लाभ सभी सामाजिक वर्गों को समान रूप से प्राप्त नहीं हुए।

11.1 छोटे किसानों की कठिनाइयाँ

भूमि के घेराबंदीकरण और कृषि के व्यावसायीकरण से कुछ छोटे किसानों की सामुदायिक भूमि तक पहुँच सीमित हुई। उनके लिए स्वतंत्र कृषक के रूप में बने रहना कठिन हो सकता था।

11.2 ग्रामीण असमानता

भूमि और पूँजी पर नियंत्रण रखने वाले लोगों को नई कृषि तकनीकों से अधिक लाभ मिल सकता था। इसके परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्रों में आर्थिक असमानता बढ़ी।

11.3 ग्रामीण श्रम का विस्थापन

भूमि व्यवस्था में परिवर्तन और खेती के नए तरीकों से कुछ ग्रामीण परिवारों को वैकल्पिक रोजगार की तलाश करनी पड़ी। इससे नगरों की ओर प्रवासन बढ़ सकता था।

11.4 बाजार पर निर्भरता

कृषि का व्यावसायीकरण बढ़ने से किसान बाजार की कीमतों और माँग पर अधिक निर्भर हुए। कीमतों में गिरावट या फसल खराब होने पर उनकी आय प्रभावित हो सकती थी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

12. निष्कर्ष

कृषि क्रांति आधुनिक यूरोप के आर्थिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया थी। इसने खेती की तकनीकों, फसल चक्र, पशुपालन, भूमि प्रबंधन और कृषि उत्पादन में परिवर्तन किए।

जेथ्रो टुल, लॉर्ड टाउनशेंड और रॉबर्ट बेकवेल जैसे सुधारकों ने कृषि संबंधी प्रयोगों तथा तकनीकों के विकास में योगदान दिया। विशेष रूप से इंग्लैंड में कृषि सुधारों और भूमि के घेराबंदीकरण ने ग्रामीण समाज की संरचना को प्रभावित किया।

कृषि क्रांति ने भोजन की उपलब्धता, बाजारों के विस्तार और औद्योगिक विकास के लिए कुछ अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार कीं। लेकिन इसके परिणाम समान नहीं थे। जहाँ कुछ कृषकों और भूमि-स्वामियों को लाभ मिला, वहीं अनेक छोटे किसानों को भूमि, संसाधनों और आजीविका से संबंधित कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

अतः कृषि क्रांति को केवल उत्पादन बढ़ाने की प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज, भूमि संबंधों और आधुनिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन लाने वाली व्यापक ऐतिहासिक घटना के रूप में समझना चाहिए।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution)

1. प्रस्तावना

औद्योगिक क्रांति आधुनिक विश्व इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक घटनाओं में से एक थी। इसका प्रारंभ अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन में हुआ और बाद में यह यूरोप, उत्तरी अमेरिका तथा विश्व के अन्य भागों में फैल गई।

औद्योगिक क्रांति से पहले अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन घरेलू उद्योगों, छोटे कार्यशालाओं और हस्तशिल्प के माध्यम से किया जाता था। उत्पादन की गति श्रमिकों के कौशल, पारंपरिक उपकरणों और प्राकृतिक ऊर्जा पर निर्भर थी। औद्योगिक क्रांति के दौरान मशीनों, भाप की शक्ति, कारखानों और नए उत्पादन संगठनों का विस्तार हुआ।

इस परिवर्तन ने उत्पादन की मात्रा और गति में वृद्धि की। वस्त्र उद्योग, लौह उद्योग, कोयला खनन, परिवहन और मशीन निर्माण में उल्लेखनीय बदलाव हुए। रेलवे और भाप के जहाजों ने परिवहन तथा व्यापार को नई दिशा प्रदान की।

औद्योगिक क्रांति का प्रभाव केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं रहा। इससे नगरों का विस्तार, श्रमिक वर्ग का उदय, सामाजिक संबंधों में परिवर्तन और आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ। इसके साथ ही लंबे कार्य-दिवस, बाल श्रम, अस्वास्थ्यकर कार्यस्थल और आर्थिक असमानता जैसी समस्याएँ भी सामने आईं।

इसलिए औद्योगिक क्रांति का अध्ययन आधुनिक समाज के निर्माण तथा उसकी चुनौतियों को समझने के लिए आवश्यक है।

2. औद्योगिक क्रांति का अर्थ

औद्योगिक क्रांति से आशय उत्पादन की पद्धतियों में हुए उस व्यापक परिवर्तन से है, जिसके अंतर्गत हस्तशिल्प और घरेलू उत्पादन की तुलना में मशीनों, कारखानों तथा यांत्रिक ऊर्जा पर आधारित उत्पादन का विस्तार हुआ।

इस प्रक्रिया में उत्पादन के साधनों, श्रम-संगठन, परिवहन, बाजारों और आर्थिक संबंधों में परिवर्तन आया।

औद्योगिक क्रांति की प्रमुख विशेषताएँ थीं—

1. मशीनों का बढ़ता उपयोग।
2. कारखाना प्रणाली का विकास।
3. भाप की शक्ति का उपयोग।
4. वस्त्र उद्योग में तकनीकी परिवर्तन।
5. कोयला और लोहे के उत्पादन का विस्तार।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

6. रेलवे तथा भाप के जहाजों का विकास।
7. शहरीकरण और श्रमिक वर्ग का विस्तार।
8. पूँजीवादी औद्योगिक अर्थव्यवस्था का विकास।

औद्योगिक क्रांति कोई एक घटना या एक आविष्कार नहीं थी। यह कई दशकों में विकसित हुई ऐसी प्रक्रिया थी, जिसने उत्पादन और समाज की संरचना को बदल दिया।

3. औद्योगिक क्रांति की पृष्ठभूमि

3.1 ब्रिटेन की भौगोलिक परिस्थितियाँ

औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ में ब्रिटेन की भौगोलिक परिस्थितियों का महत्त्व था। देश के अनेक क्षेत्रों में कोयला और लौह अयस्क उपलब्ध थे। कोयला ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण स्रोत बना, जबकि लोहा मशीनों, औजारों और परिवहन के विकास में उपयोगी था।

ब्रिटेन की तटीय स्थिति और बंदरगाहों ने समुद्री व्यापार को प्रोत्साहित किया। नदियों, नहरों और बाद में रेलवे के विकास से माल का परिवहन आसान हुआ।

हालाँकि, प्राकृतिक संसाधन अकेले औद्योगिक क्रांति की व्याख्या नहीं करते। पूँजी, तकनीकी नवाचार, श्रम, बाजार और राजनीतिक संस्थाओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3.2 कृषि क्रांति

कृषि क्रांति ने कुछ क्षेत्रों में खाद्य उत्पादन बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बदलने में योगदान दिया। इससे बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन उपलब्ध कराने में सहायता मिली।

ग्रामीण समाज में परिवर्तन के कारण कुछ लोग उद्योगों और नगरों में रोजगार की तलाश करने लगे। इससे औद्योगिक केंद्रों में श्रमिकों की उपलब्धता बढ़ी।

फिर भी औद्योगिक श्रम की आपूर्ति केवल कृषि परिवर्तन का परिणाम नहीं थी। जनसंख्या वृद्धि, प्रवासन, मजदूरी के अवसर और अन्य आर्थिक परिस्थितियाँ भी इसके लिए जिम्मेदार थीं।

3.3 पूँजी का संचय

औद्योगिक उत्पादन के लिए मशीनों, भवनों, कच्चे माल और श्रमिकों पर निवेश आवश्यक था। ब्रिटेन में व्यापार, बैंकिंग, वित्तीय संस्थाओं और अन्य आर्थिक गतिविधियों से पूँजी उपलब्ध हुई।

व्यापार से जुड़े कुछ लोगों ने उद्योगों में निवेश किया। बैंकिंग और ऋण की सुविधाओं ने भी औद्योगिक उद्यमों के विकास में योगदान दिया।

3.4 व्यापारिक विस्तार

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

ब्रिटेन के घरेलू और विदेशी बाजारों के विस्तार से वस्तुओं की माँग बढ़ी। वस्त्रों और अन्य उत्पादों के लिए बड़े बाजार उपलब्ध हुए।

बाजार की बढ़ती माँग ने उत्पादन की गति और मात्रा बढ़ाने की आवश्यकता उत्पन्न की। मशीनों और कारखानों के माध्यम से इस माँग को पूरा करने का प्रयास किया गया।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि औपनिवेशिक व्यापार और साम्राज्यवादी संबंधों ने ब्रिटिश औद्योगिक विकास को प्रभावित किया। लेकिन इन संबंधों का प्रभाव विभिन्न उद्योगों और कालखंडों में अलग-अलग था।

3.5 तकनीकी आविष्कार

औद्योगिक क्रांति के विकास में तकनीकी आविष्कारों ने केंद्रीय भूमिका निभाई। वस्त्र उद्योग में सूत कातने और कपड़ा बुनने की मशीनों ने उत्पादन क्षमता बढ़ाई।

भाप इंजन के विकास ने कारखानों और खदानों में ऊर्जा के नए स्रोत उपलब्ध कराए। लौह उत्पादन की तकनीकों में सुधार से मशीनों और परिवहन उपकरणों का निर्माण आसान हुआ।

4. औद्योगिक क्रांति के प्रमुख आविष्कार

4.1 फ्लाइंग शटल

जॉन के द्वारा विकसित फ्लाइंग शटल का उपयोग कपड़ा बुनने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए किया गया। इसका प्रयोग अठारहवीं शताब्दी में वस्त्र उद्योग में हुआ।

इस तकनीक से एक बुनकर पहले की तुलना में अधिक चौड़े कपड़े को अपेक्षाकृत तेजी से बुन सकता था। इससे सूत कातने और बुनाई के बीच उत्पादन की गति में असंतुलन पैदा हुआ, जिसने आगे नए आविष्कारों को प्रोत्साहित किया।

4.2 स्पिनिंग जेनी

जेम्स हारग्रीव्स से संबंधित स्पिनिंग जेनी ने एक श्रमिक को एक साथ कई धागे कातने की सुविधा प्रदान की।

इस मशीन ने सूत उत्पादन की क्षमता बढ़ाई। इससे वस्त्र उद्योग में उत्पादन की प्रक्रिया तेज हुई और मशीनों के उपयोग का विस्तार हुआ।

4.3 वाटर फ्रेम

रिचर्ड आर्कराइट ने वाटर फ्रेम के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह मशीन जल-शक्ति से संचालित होती थी और मजबूत सूत तैयार करने में उपयोगी थी।

जल-शक्ति के उपयोग के कारण उत्पादन को उन स्थानों पर केंद्रित करना संभव हुआ, जहाँ उपयुक्त जलस्रोत उपलब्ध थे। इससे कारखाना प्रणाली के विकास को प्रोत्साहन मिला।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

4.4 स्पिनिंग म्यूल

सैमुअल क्रॉम्पटन ने स्पिनिंग म्यूल का विकास किया। इस मशीन ने सूत उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार किया।

इससे विभिन्न प्रकार के सूत का उत्पादन अधिक प्रभावी ढंग से संभव हुआ। वस्त्र उद्योग में मशीनों के विस्तार में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान था।

4.5 पावर लूम

एडमंड कार्टराइट ने यांत्रिक करघे के विकास में योगदान दिया। पावर लूम ने कपड़ा बुनने की प्रक्रिया को यांत्रिक बनाया।

इससे वस्त्र उत्पादन की गति बढ़ी और कारखानों में उत्पादन का विस्तार हुआ। लेकिन मशीनों के बढ़ते उपयोग ने पारंपरिक बुनकरों की आजीविका को भी प्रभावित किया।

4.6 भाप इंजन

भाप इंजन के विकास में कई वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का योगदान था। थॉमस न्यूकॉमन ने अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में खदानों से पानी निकालने के लिए भाप इंजन विकसित किया।

जेम्स वाट ने भाप इंजन में महत्त्वपूर्ण सुधार किए। उनके कार्यों ने ऊर्जा के अधिक प्रभावी उपयोग की संभावनाएँ बढ़ाईं।

भाप इंजन का उपयोग खदानों, कारखानों और बाद में परिवहन में किया गया। इससे उद्योगों को जलस्रोतों पर निर्भरता कम करने और ऊर्जा के नए साधनों का उपयोग करने में सहायता मिली।

4.7 लौह उद्योग में सुधार

लौह उत्पादन में तकनीकी सुधारों ने औद्योगिक विकास को गति दी। अब्राहम डार्बी ने कोक के उपयोग से लौह उत्पादन की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

लौह उत्पादन की लागत और क्षमता में परिवर्तन से मशीनों, औजारों, पुलों तथा अन्य संरचनाओं के निर्माण को सहायता मिली।

4.8 रेलवे का विकास

उन्नीसवीं शताब्दी में रेलवे का विकास औद्योगिक क्रांति का महत्त्वपूर्ण परिणाम बना। भाप इंजन से चलने वाली रेलगाड़ियों ने माल और यात्रियों के परिवहन को तेज किया।

रेलवे ने कोयला, लोहा, वस्त्र और अन्य वस्तुओं के परिवहन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे बाजारों का विस्तार हुआ और औद्योगिक केंद्रों का एक-दूसरे से संपर्क मजबूत हुआ।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

5. वस्त्र उद्योग में परिवर्तन

औद्योगिक क्रांति के प्रारंभिक चरण में वस्त्र उद्योग सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्रों में से एक था।

पहले सूत कातने और कपड़ा बुनने का कार्य घरों या छोटी कार्यशालाओं में किया जाता था। उत्पादन की गति श्रमिकों के कौशल और उपलब्ध उपकरणों पर निर्भर थी।

नई मशीनों ने सूत कातने और कपड़ा बुनने की प्रक्रिया को तेज कर दिया। उत्पादन धीरे-धीरे बड़े कारखानों में केंद्रित होने लगा।

कारखानों में मशीनों के उपयोग से अधिक मात्रा में वस्त्र तैयार करना संभव हुआ। इससे वस्त्रों की कीमतों और उपलब्धता में परिवर्तन आया तथा घरेलू और विदेशी बाजारों का विस्तार हुआ।

लेकिन मशीनों के विकास से पारंपरिक कारीगरों और घरेलू उत्पादकों को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। कुछ लोगों ने नए कारखानों में रोजगार प्राप्त किया, जबकि अन्य की पारंपरिक आजीविका प्रभावित हुई।

6. कारखाना प्रणाली का विकास

औद्योगिक क्रांति से पहले उत्पादन का बड़ा हिस्सा घरेलू उद्योगों और छोटी कार्यशालाओं में होता था। इस व्यवस्था में व्यापारी कच्चा माल उपलब्ध कराते थे और ग्रामीण परिवार अपने घरों में वस्तुएँ तैयार करते थे। इसे प्रायः घरेलू या पुटिंग-आउट प्रणाली कहा जाता है।

मशीनों और यांत्रिक ऊर्जा के विकास के बाद उत्पादन को बड़े कारखानों में केंद्रित करना अधिक उपयोगी होने लगा।

कारखाना प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ थीं—

1. मशीनों का केंद्रीकृत उपयोग।
2. श्रमिकों का एक स्थान पर कार्य करना।
3. कार्य के समय और गति पर नियंत्रण।
4. उत्पादन की प्रक्रियाओं का विभाजन।
5. पूँजी और मशीनों पर मालिकों का नियंत्रण।
6. बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन।

कारखाना प्रणाली ने उत्पादन बढ़ाया, लेकिन श्रमिकों के जीवन में नए अनुशासन और नियंत्रण भी स्थापित किए। कार्य के समय, मजदूरी और कार्यस्थल की परिस्थितियों को लेकर श्रमिकों और मालिकों के बीच संघर्ष उत्पन्न होने लगे।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

7. कोयला और लौह उद्योग का विकास

औद्योगिक क्रांति में कोयला और लोहा महत्त्वपूर्ण संसाधन थे। कोयले का उपयोग ऊर्जा उत्पादन तथा भाप इंजनों के संचालन में किया जाता था।

लौह उद्योग ने मशीनों, रेल पटरियों, पुलों, औजारों और अन्य औद्योगिक संरचनाओं के निर्माण को संभव बनाया।

औद्योगिक उत्पादन के विस्तार से कोयले और लोहे की माँग बढ़ी। इसके परिणामस्वरूप खनन, धातु उत्पादन और परिवहन में सुधार की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

कोयला खदानों और लौह उद्योग के विकास ने औद्योगिक नगरों के विस्तार को प्रोत्साहित किया।

8. औद्योगिक क्रांति और परिवहन

औद्योगिक उत्पादन के विस्तार के लिए कच्चे माल और तैयार वस्तुओं का परिवहन आवश्यक था। इस कारण नहरों, सड़कों, बंदरगाहों और रेलवे का विकास हुआ।

रेलवे ने औद्योगिक केंद्रों को बाजारों और बंदरगाहों से जोड़ा। भाप के जहाजों ने समुद्री परिवहन को प्रभावित किया और लंबी दूरी के व्यापार को अधिक प्रभावी बनाया।

परिवहन में सुधार से वस्तुओं की लागत कम करने, बाजारों का विस्तार करने और उत्पादन को बढ़ाने में सहायता मिली।

परिवहन क्रांति ने औद्योगिक समाज को अधिक परस्पर जुड़ा हुआ बनाया। इसके साथ ही लोगों का प्रवासन और नगरों का विस्तार भी बढ़ा।

9. औद्योगिक क्रांति और नगरीकरण

औद्योगिक क्रांति के दौरान कारखानों और खदानों के आसपास नए औद्योगिक नगर विकसित हुए। रोजगार की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से लोग नगरों की ओर आने लगे।

मैनचेस्टर, बर्मिंघम और लिवरपूल जैसे ब्रिटिश नगर औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र बने।

नगरीकरण के कारण जनसंख्या का बड़ा हिस्सा कृषि से हटकर उद्योगों, परिवहन और सेवाओं में कार्य करने लगा।

लेकिन नगरों का तेजी से विस्तार कई समस्याएँ भी लेकर आया। आवास की कमी, गंदगी, प्रदूषित जल, खराब स्वच्छता और भीड़भाड़ अनेक औद्योगिक नगरों की प्रमुख समस्याएँ थीं।

समय के साथ नगर प्रशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य और आवास सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया जाने लगा।

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

10. औद्योगिक क्रांति और श्रमिक वर्ग

औद्योगिक क्रांति ने आधुनिक श्रमिक वर्ग के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कारखानों में काम करने वाले श्रमिक अपनी मजदूरी पर निर्भर थे और उत्पादन के साधनों पर उनका नियंत्रण सीमित था।

श्रमिकों की प्रमुख समस्याएँ थीं—

- लंबे कार्य-दिवस।
- कम मजदूरी।
- असुरक्षित मशीनें।
- अस्वास्थ्यकर कार्यस्थल।
- बाल श्रम और महिला श्रम का शोषण।
- रोजगार की अनिश्चितता।
- दुर्घटनाओं और बीमारियों का खतरा।

इन परिस्थितियों ने श्रमिकों में असंतोष को जन्म दिया। समय के साथ श्रमिक संगठन, ट्रेड यूनियन और मजदूर आंदोलनों का विकास हुआ।

श्रमिकों ने बेहतर मजदूरी, कम कार्य-समय और सुरक्षित कार्यस्थलों की माँग की। उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न देशों में श्रम कानूनों और सामाजिक सुधारों के लिए आंदोलन हुए।

11. बाल श्रम और महिला श्रमिक

प्रारंभिक औद्योगिक काल में अनेक कारखानों और खदानों में महिलाओं तथा बच्चों से काम कराया जाता था। कुछ उद्योगों में बच्चों को इसलिए नियुक्त किया जाता था, क्योंकि उन्हें कम मजदूरी दी जा सकती थी और वे छोटे स्थानों में काम कर सकते थे।

बाल श्रमिकों को लंबे समय तक काम करना पड़ता था। उनके स्वास्थ्य, शिक्षा और सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था।

महिलाएँ भी वस्त्र उद्योग सहित विभिन्न उद्योगों में काम करती थीं। उन्हें कई बार पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी दी जाती थी।

इन परिस्थितियों ने श्रमिक सुधारों और सरकारी हस्तक्षेप की माँग को बढ़ाया। उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में फैक्टरी कानूनों के माध्यम से बाल श्रम और कार्य-परिस्थितियों को नियंत्रित करने के प्रयास किए गए।

हालाँकि, श्रमिकों की स्थिति में सुधार एक लंबी प्रक्रिया थी और सभी क्षेत्रों में एक साथ परिवर्तन नहीं आया।

Dr. RAkesh Mohan NautiyaL

12. औद्योगिक क्रांति और पूँजीवाद

औद्योगिक क्रांति ने आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था के विकास को गति दी। कारखानों, मशीनों और कच्चे माल में निवेश करने वाले उद्योगपतियों की आर्थिक भूमिका बढ़ी।

उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व और मजदूरी पर आधारित श्रम-संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण हुए। उद्योगपति उत्पादन की योजना बनाते थे और बाजार में वस्तुएँ बेचकर लाभ अर्जित करते थे।

पूँजीवादी औद्योगिक व्यवस्था ने उत्पादन क्षमता और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया। लेकिन इसके साथ पूँजी और श्रम के बीच असमान संबंध भी विकसित हुए।

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स जैसे विचारकों ने औद्योगिक समाज में वर्ग-संघर्ष, श्रमिक शोषण और पूँजी के केंद्रीकरण का विश्लेषण किया।

दूसरी ओर, कुछ उदारवादी विचारकों ने औद्योगिक उत्पादन, व्यापार और बाजार की स्वतंत्रता को आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण आधार माना।

इस प्रकार औद्योगिक क्रांति ने आधुनिक आर्थिक विचारधाराओं और सामाजिक आंदोलनों को भी प्रभावित किया।

13. औद्योगिक क्रांति के सामाजिक परिणाम

औद्योगिक क्रांति ने समाज की संरचना में व्यापक परिवर्तन किए।

13.1 नए सामाजिक वर्गों का विकास

औद्योगिक समाज में उद्योगपतियों, व्यापारियों, कारखाना मालिकों और मजदूरी पर निर्भर श्रमिकों की भूमिका बढ़ी।

मध्यम वर्ग का विस्तार हुआ, जिसमें व्यापारी, इंजीनियर, प्रबंधक, शिक्षक और अन्य पेशेवर शामिल थे।

13.2 ग्रामीण समाज में परिवर्तन

औद्योगिक रोजगार और नगरों के विस्तार से ग्रामीण जीवन पर प्रभाव पड़ा। कुछ लोग कृषि छोड़कर उद्योगों में काम करने लगे।

13.3 परिवार और कार्य के संबंधों में परिवर्तन

घरेलू उत्पादन की तुलना में कारखाना प्रणाली ने कार्यस्थल और निवास के बीच अंतर को बढ़ाया। परिवार के सदस्य अलग-अलग कार्यस्थलों पर काम करने लगे।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

13.4 शिक्षा और कौशल का महत्त्व

मशीनों और तकनीकी उत्पादन के विकास से कुछ उद्योगों में तकनीकी कौशल तथा औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता बढ़ी। आगे चलकर तकनीकी संस्थानों और व्यावसायिक शिक्षा का महत्त्व बढ़ा।

14. औद्योगिक क्रांति के आर्थिक परिणाम

औद्योगिक क्रांति के प्रमुख आर्थिक परिणाम निम्नलिखित थे—

1. **उत्पादन में वृद्धि:** मशीनों ने अनेक वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव बनाया।
2. **उत्पादन लागत में परिवर्तन:** यांत्रिक उत्पादन से कई वस्तुओं की प्रति इकाई लागत कम हुई।
3. **बाजारों का विस्तार:** परिवहन और उत्पादन में सुधार से घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय बाजारों का विस्तार हुआ।
4. **पूँजी निवेश में वृद्धि:** उद्योगों और मशीनों में निवेश आर्थिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण भाग बना।
5. **तकनीकी विकास:** नई मशीनों और उत्पादन प्रणालियों ने तकनीकी नवाचार को प्रोत्साहित किया।
6. **श्रम विभाजन:** उत्पादन की प्रक्रियाओं को अलग-अलग कार्यों में बाँटा गया।
7. **व्यापार का विस्तार:** औद्योगिक उत्पादन और परिवहन के विकास से व्यापार बढ़ा।
8. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि:** औद्योगिक देशों की उत्पादन क्षमता में दीर्घकालीन वृद्धि हुई, हालाँकि इसका लाभ समाज में समान रूप से वितरित नहीं हुआ।

15. औद्योगिक क्रांति के नकारात्मक परिणाम

औद्योगिक क्रांति ने अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न कीं।

15.1 श्रमिक शोषण

प्रारंभिक औद्योगिक काल में श्रमिकों को कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता था। लंबे कार्य-दिवस और कम मजदूरी उनकी प्रमुख समस्याएँ थीं।

15.2 आर्थिक असमानता

उद्योगों से प्राप्त लाभ का बड़ा हिस्सा पूँजी और उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण रखने वाले लोगों के पास जा सकता था। इससे आर्थिक असमानता बढ़ी।

15.3 पर्यावरण प्रदूषण

कोयले के व्यापक उपयोग, कारखानों और शहरी विस्तार से वायु तथा जल प्रदूषण बढ़ा। प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव भी बढ़ा।

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

15.4 पारंपरिक कारीगरों की कठिनाइयाँ

मशीनों से बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के कारण कुछ पारंपरिक कारीगरों और घरेलू उत्पादकों को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। अनेक क्षेत्रों में उनके रोजगार और आय पर प्रभाव पड़ा।

15.5 शहरी समस्याएँ

तेजी से बढ़ते औद्योगिक नगरों में आवास, स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य की समस्याएँ गंभीर थीं।

इन समस्याओं ने सामाजिक सुधारों, श्रमिक आंदोलनों और सरकारी नीतियों के विकास को प्रोत्साहित किया।

16. औद्योगिक क्रांति का यूरोप में प्रसार

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के प्रारंभिक विकास के बाद यह अन्य यूरोपीय देशों में फैली।

16.1 बेल्जियम

बेल्जियम महाद्वीपीय यूरोप के प्रारंभिक औद्योगिक देशों में था। कोयला, लोहा और वस्त्र उद्योग के विकास ने उसके औद्योगिकीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

16.2 फ्रांस

फ्रांस में औद्योगिकीकरण ब्रिटेन की तुलना में अलग गति से हुआ। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, परिवहन और अन्य क्षेत्रों में विकास हुआ, लेकिन क्षेत्रीय तथा संस्थागत अंतर बने रहे।

16.3 जर्मनी

उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी के औद्योगिक विकास को कोयला, लोहा, रेलवे, तकनीकी शिक्षा और बड़े औद्योगिक उद्यमों से सहायता मिली।

16.4 संयुक्त राज्य अमेरिका

संयुक्त राज्य अमेरिका में औद्योगिकीकरण के विस्तार में प्राकृतिक संसाधनों, घरेलू बाजार, आविष्कारों, रेलवे और श्रम की उपलब्धता ने भूमिका निभाई।

इस प्रकार औद्योगिक क्रांति एक वैश्विक ऐतिहासिक प्रक्रिया बनी, यद्यपि विभिन्न देशों में इसका समय, स्वरूप और प्रभाव अलग-अलग था।

17. औद्योगिक क्रांति और भारत

भारत में औद्योगिक क्रांति का प्रभाव ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के संदर्भ में समझना आवश्यक है।

भारत में औद्योगिक क्रांति के समय वस्त्र उत्पादन, धातु-कर्म और शिल्प की समृद्ध परंपराएँ मौजूद थीं। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश मशीन-निर्मित वस्त्रों के आयात, व्यापारिक नीतियों और औपनिवेशिक आर्थिक संरचना ने भारतीय हस्तशिल्प तथा उद्योगों को प्रभावित किया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

भारत से कच्चे कपास और अन्य कच्चे माल का निर्यात बढ़ा, जबकि ब्रिटेन में निर्मित वस्त्र भारतीय बाजारों में आने लगे। इस प्रक्रिया के परिणाम क्षेत्र और उद्योग के अनुसार अलग-अलग थे, लेकिन अनेक पारंपरिक उत्पादकों को प्रतिस्पर्धा की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में आधुनिक कपड़ा मिलों और अन्य उद्योगों का भी विकास हुआ। मुंबई और अहमदाबाद वस्त्र उद्योग के प्रमुख केंद्र बने, जबकि जमशेदपुर जैसे औद्योगिक केंद्र बाद के काल में विकसित हुए।

भारत में औद्योगिकीकरण को केवल तकनीकी परिवर्तन के रूप में नहीं देखा जा सकता। इसे औपनिवेशिक शासन, व्यापारिक नीतियों, पूँजी, श्रम और स्थानीय उद्यमशीलता के संदर्भ में समझना आवश्यक है।

18. औद्योगिक क्रांति और आधुनिक विश्व

औद्योगिक क्रांति ने आधुनिक विश्व की आर्थिक तथा सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। मशीनों, कारखानों और परिवहन प्रणालियों ने उत्पादन तथा व्यापार के विस्तार को संभव बनाया।

औद्योगिक देशों की आर्थिक शक्ति बढ़ी और वैश्विक बाजारों का विस्तार हुआ। औद्योगिक विकास ने आधुनिक बैंकिंग, तकनीकी शिक्षा, शहरी प्रशासन और श्रम कानूनों के विकास को भी प्रभावित किया।

लेकिन औद्योगिकीकरण ने औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा, संसाधनों के दोहन और आर्थिक असमानताओं को भी बढ़ाया। इसलिए औद्योगिक क्रांति का इतिहास विकास और शोषण, दोनों पक्षों को समाहित करता है।

19. निष्कर्ष

औद्योगिक क्रांति आधुनिक इतिहास की निर्णायक घटनाओं में से एक थी। इसका प्रारंभ अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन में हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी में यह अन्य क्षेत्रों में फैल गई।

मशीनों, भाप इंजन, वस्त्र उद्योग, कोयला, लोहा और रेलवे के विकास ने उत्पादन की प्रक्रिया को बदल दिया। कारखाना प्रणाली के विस्तार से आधुनिक औद्योगिक समाज और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन क्षमता, परिवहन और व्यापार को बढ़ाया, लेकिन इसके साथ श्रमिक शोषण, बाल श्रम, पर्यावरण प्रदूषण और आर्थिक असमानता जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं।

अतः औद्योगिक क्रांति को केवल तकनीकी आविष्कारों की श्रृंखला के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के रूप में समझना चाहिए। इसने आधुनिक विश्व की संरचना, आर्थिक संबंधों और सामाजिक संघर्षों को गहराई से प्रभावित किया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

तीनों क्रांतियों का तुलनात्मक अध्ययन

तुलना का आधार	वैज्ञानिक क्रांति	कृषि क्रांति	औद्योगिक क्रांति
प्रमुख काल	मुख्यतः 16वीं–17वीं शताब्दी	विशेष रूप से 17वीं–18वीं शताब्दी में अनेक यूरोपीय क्षेत्रों में	18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से, विशेषकर ब्रिटेन में
प्रमुख क्षेत्र	खगोलशास्त्र, भौतिकी, चिकित्सा और प्राकृतिक विज्ञान	खेती, पशुपालन और भूमि प्रबंधन	उद्योग, उत्पादन, परिवहन और ऊर्जा
प्रमुख व्यक्तित्व	कोपरनिकस, केप्लर, गैलीलियो, न्यूटन	जेथ्रो टुल, रॉबर्ट बेकवेल, लॉर्ड टाउनशेंड	जेम्स वाट, रिचर्ड आर्कराइट, जेम्स हारग्रीव्स
प्रमुख परिवर्तन	निरीक्षण, प्रयोग और गणित पर आधारित ज्ञान का विस्तार	कृषि तकनीकों और उत्पादन पद्धतियों में सुधार	मशीनों और कारखानों पर आधारित उत्पादन का विस्तार
आर्थिक प्रभाव	वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीकी विकास को आधार	खाद्य उत्पादन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन	बड़े पैमाने पर उत्पादन और औद्योगिक अर्थव्यवस्था का विकास
सामाजिक प्रभाव	तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विस्तार	ग्रामीण समाज और भूमि संबंधों में परिवर्तन	शहरीकरण और श्रमिक वर्ग का विस्तार
दीर्घकालीन महत्त्व	आधुनिक विज्ञान का विकास	आधुनिक कृषि और खाद्य उत्पादन प्रणालियों का विकास	आधुनिक औद्योगिक समाज और पूँजीवाद का विस्तार

समग्र निष्कर्ष

वैज्ञानिक, कृषि और औद्योगिक क्रांतियाँ आधुनिक विश्व के निर्माण की परस्पर संबंधित प्रक्रियाएँ थीं। वैज्ञानिक क्रांति ने प्रकृति और ब्रह्मांड को समझने की पद्धतियों में परिवर्तन किया। कृषि क्रांति ने खेती की तकनीकों, भूमि व्यवस्था और उत्पादन क्षमता को प्रभावित किया। औद्योगिक क्रांति ने मशीनों, कारखानों और यांत्रिक ऊर्जा के माध्यम से उत्पादन की संरचना बदल दी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इन तीनों क्रांतियों ने आधुनिक अर्थव्यवस्था, समाज, शिक्षा, तकनीक और राजनीति पर दीर्घकालीन प्रभाव डाला। इनके परिणामस्वरूप उत्पादन और व्यापार का विस्तार हुआ, नए सामाजिक वर्ग विकसित हुए तथा आधुनिक राष्ट्रों की आर्थिक शक्ति में परिवर्तन आया।

लेकिन इन क्रांतियों के लाभ सभी वर्गों और क्षेत्रों को समान रूप से प्राप्त नहीं हुए। कृषि भूमि के पुनर्गठन, औद्योगिक श्रमिकों की कठिन परिस्थितियों, उपनिवेशवाद और पर्यावरणीय समस्याओं ने इनके नकारात्मक पक्षों को भी उजागर किया।

इसलिए इन क्रांतियों का समग्र अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि आधुनिक विश्व का विकास केवल आविष्कारों और उत्पादन वृद्धि का इतिहास नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक प्रतिस्पर्धा, असमानता और मानव जीवन की परिस्थितियों में बदलाव का इतिहास भी है।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

गौरवशाली क्रांति (1688): पृष्ठभूमि, घटनाएँ और परिणाम

प्रस्तावना

इंग्लैंड के इतिहास में 1688 ई. की गौरवशाली क्रांति (Glorious Revolution) एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। इस क्रांति ने इंग्लैंड में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना के प्रयासों को निर्णायक चुनौती दी तथा संवैधानिक राजतंत्र और संसदीय सर्वोच्चता के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इस क्रांति के परिणामस्वरूप इंग्लैंड में राजा की शक्तियों पर संसद का नियंत्रण स्थापित होने लगा और नागरिकों के अधिकारों को अधिक स्पष्ट रूप से मान्यता मिली।

इस क्रांति को 'गौरवशाली' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इंग्लैंड में सत्ता परिवर्तन अपेक्षाकृत कम रक्तपात के साथ हुआ। हालाँकि इंग्लैंड में सत्ता परिवर्तन के दौरान व्यापक युद्ध नहीं हुआ, लेकिन आयरलैंड और स्कॉटलैंड में इसके कारण संघर्ष और हिंसा हुई। इस क्रांति के फलस्वरूप स्टुअर्ट वंश के राजा जेम्स द्वितीय को इंग्लैंड छोड़ना पड़ा और हॉलैंड के शासक विलियम ऑफ ऑरेंज तथा उनकी पत्नी मैरी को संयुक्त रूप से इंग्लैंड का शासक बनाया गया।

गौरवशाली क्रांति केवल राजवंश परिवर्तन नहीं थी, बल्कि यह इंग्लैंड में राजसत्ता और संसद के बीच अधिकारों के संघर्ष का निर्णायक पड़ाव थी। इसने आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाओं तथा संवैधानिक शासन के विकास को प्रभावित किया।

1. गौरवशाली क्रांति की पृष्ठभूमि

गौरवशाली क्रांति की पृष्ठभूमि को समझने के लिए इंग्लैंड में सत्रहवीं शताब्दी के राजनीतिक, धार्मिक और संवैधानिक घटनाक्रम का अध्ययन आवश्यक है। इस समय इंग्लैंड में राजसत्ता और संसद के बीच संघर्ष, धार्मिक मतभेद तथा निरंकुश शासन की प्रवृत्तियाँ प्रमुख थीं।

1.1 स्टुअर्ट वंश और राजाओं की निरंकुश प्रवृत्ति

1603 ई. में महारानी एलिजाबेथ प्रथम की मृत्यु के बाद स्कॉटलैंड के राजा जेम्स षष्ठम इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम बने। उनके साथ इंग्लैंड में स्टुअर्ट वंश का शासन प्रारंभ हुआ। जेम्स प्रथम और उनके उत्तराधिकारी चार्ल्स प्रथम का विश्वास था कि राजा की सत्ता ईश्वर द्वारा प्रदत्त है तथा उसे संसद के नियंत्रण में नहीं रखा जाना चाहिए।

इस विचारधारा को 'राजाओं के दैवी अधिकार का सिद्धांत' (Divine Right of Kings) कहा जाता है। इसके अनुसार राजा अपनी सत्ता के लिए ईश्वर के प्रति उत्तरदायी होता है, न कि संसद या जनता के प्रति।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

राजाओं की इस धारणा का संसद ने विरोध किया। संसद का तर्क था कि राजा कर लगाने, कानून बनाने तथा शासन चलाने में संसद की सहमति की उपेक्षा नहीं कर सकता। इस संघर्ष ने इंग्लैंड में संवैधानिक संकट उत्पन्न कर दिया।

चार्ल्स प्रथम के शासनकाल में यह संघर्ष इतना बढ़ गया कि 1642 ई. में इंग्लैंड में गृहयुद्ध प्रारंभ हुआ। अंततः चार्ल्स प्रथम को पराजित किया गया और 1649 ई. में उसे मृत्युदंड दिया गया। इसके बाद इंग्लैंड में राजतंत्र समाप्त करके गणतांत्रिक शासन स्थापित किया गया।

1.2 क्रॉमवेल का शासन और राजतंत्र की पुनर्स्थापना

चार्ल्स प्रथम की मृत्यु के बाद इंग्लैंड में गणतांत्रिक व्यवस्था स्थापित हुई। ओलिवर क्रॉमवेल ने इस व्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभाई। 1653 ई. में वह 'लॉर्ड प्रोटेक्टर' बना और उसके शासनकाल में सेना तथा प्रशासन पर उसका प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया।

क्रॉमवेल की मृत्यु 1658 ई. में हो गई। उसके बाद गणतांत्रिक शासन कमजोर पड़ने लगा। राजनीतिक अस्थिरता के कारण 1660 ई. में राजतंत्र की पुनर्स्थापना हुई और चार्ल्स द्वितीय इंग्लैंड का राजा बना।

चार्ल्स द्वितीय ने संसद के साथ सहयोग की नीति अपनाने का प्रयास किया, लेकिन उसके शासनकाल में भी धार्मिक और राजनीतिक मतभेद बने रहे। विशेष रूप से कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों के अधिकारों को लेकर विवाद गहराता गया। इसी वातावरण में उसके भाई जेम्स द्वितीय का शासन प्रारंभ हुआ।

1.3 जेम्स द्वितीय का सिंहासनारोहण

1685 ई. में चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका भाई जेम्स द्वितीय इंग्लैंड का राजा बना। जेम्स द्वितीय कैथोलिक था, जबकि इंग्लैंड की अधिकांश राजनीतिक व्यवस्था और प्रभावशाली वर्ग प्रोटेस्टेंट थे। इस कारण उसके सिंहासनारोहण के समय से ही धार्मिक तनाव मौजूद था।

जेम्स द्वितीय की नीतियों ने इस तनाव को और बढ़ा दिया। वह राजसत्ता को मजबूत करना चाहता था और संसद की सीमाओं को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। उसने सेना और प्रशासन में कैथोलिकों को महत्त्वपूर्ण पद देने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त, उसने कुछ ऐसे अधिकारों का प्रयोग किया जिनसे संसद और प्रोटेस्टेंट वर्ग को आशंका हुई कि राजा देश में कैथोलिक प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है।

जेम्स द्वितीय की धार्मिक नीति ने इंग्लैंड के राजनीतिक अभिजात वर्ग, चर्च ऑफ इंग्लैंड और संसद के अनेक सदस्यों को उसके विरुद्ध कर दिया।

1.4 जेम्स द्वितीय की धार्मिक नीति

जेम्स द्वितीय की धार्मिक नीति गौरवशाली क्रांति का एक प्रमुख कारण थी। इंग्लैंड में लंबे समय से कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों के बीच संघर्ष चलता रहा था। इंग्लैंड का राजतंत्र और संसद मुख्यतः प्रोटेस्टेंट राजनीतिक व्यवस्था से जुड़े थे।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

जेम्स द्वितीय कैथोलिकों को अधिक धार्मिक स्वतंत्रता देना चाहता था। देखने में यह नीति धार्मिक सहिष्णुता से संबंधित थी, लेकिन उसके विरोधियों को संदेह था कि राजा धार्मिक स्वतंत्रता के नाम पर संसद द्वारा स्थापित कानूनों को निष्प्रभावी करना चाहता है और कैथोलिकों को शासन में विशेष प्रभाव देना चाहता है।

1687 ई. में जेम्स द्वितीय ने धार्मिक सहिष्णुता से संबंधित घोषणा जारी की। 1688 ई. में उसने इस घोषणा को दोबारा जारी किया और चर्चों में इसे पढ़ने का आदेश दिया। चर्च ऑफ इंग्लैंड के सात बिशपों ने इस आदेश का विरोध किया। राजा ने उन पर मुकदमा चलाया, लेकिन न्यायालय ने उन्हें निर्दोष घोषित कर दिया।

इस घटना ने राजा की लोकप्रियता को और कम कर दिया। प्रोटेस्टेंट वर्ग को लगा कि जेम्स द्वितीय की नीतियाँ इंग्लैंड की स्थापित धार्मिक और संवैधानिक व्यवस्था के लिए खतरा बन रही हैं।

1.5 संसद के अधिकारों की अवहेलना

जेम्स द्वितीय का विश्वास था कि राजा को शासन चलाने के लिए व्यापक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। उसने संसद की सहमति के बिना शासन में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए। वह कानूनों के निलंबन और उनसे छूट देने की राजकीय शक्तियों का प्रयोग करता था।

उसने संसद की भूमिका को सीमित करने तथा प्रशासन और सेना में अपने समर्थकों को स्थापित करने का प्रयास किया। इससे संसद के सदस्य और राजनीतिक अभिजात वर्ग चिंतित हो गए।

इंग्लैंड के अनेक नेताओं को आशंका थी कि यदि जेम्स द्वितीय की नीतियाँ जारी रहीं, तो इंग्लैंड में फ्रांस की तरह निरंकुश राजतंत्र स्थापित हो सकता है। फ्रांस का राजा लुई चौदहवाँ उस समय यूरोप में निरंकुश राजसत्ता का प्रमुख उदाहरण माना जाता था।

इस प्रकार, संसद के अधिकारों की अवहेलना और राजकीय शक्तियों के मनमाने प्रयोग ने जेम्स द्वितीय के विरुद्ध विरोध को बढ़ावा दिया।

1.6 उत्तराधिकारी के जन्म से उत्पन्न संकट

गौरवशाली क्रांति की तत्कालीन पृष्ठभूमि में 10 जून 1688 को जेम्स द्वितीय की पत्नी मैरी ऑफ मोडेना के यहाँ पुत्र जेम्स फ्रांसिस एडवर्ड का जन्म महत्त्वपूर्ण घटना थी।

जेम्स द्वितीय की बड़ी पुत्री मैरी और दूसरी पुत्री ऐन प्रोटेस्टेंट थीं। पहले यह आशा की जा रही थी कि जेम्स द्वितीय के बाद मैरी और उनके पति विलियम ऑफ ऑरेंज के शासन से इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट व्यवस्था बनी रहेगी।

लेकिन पुत्र के जन्म से यह संभावना बदल गई। अब कैथोलिक उत्तराधिकारी के इंग्लैंड का राजा बनने की आशंका उत्पन्न हो गई। इससे जेम्स द्वितीय के विरोधियों को लगा कि कैथोलिक शासन केवल अस्थायी नहीं रहेगा, बल्कि आगे भी जारी रह सकता है।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

इस घटना ने राजा के विरुद्ध विरोधी शक्तियों को एकजुट होने का अवसर प्रदान किया।

1.7 विलियम ऑफ ऑरेंज को आमंत्रण

जेम्स द्वितीय की नीतियों से चिंतित इंग्लैंड के कुछ प्रमुख राजनीतिक नेताओं ने हॉलैंड के शासक विलियम ऑफ ऑरेंज को इंग्लैंड आने का निमंत्रण दिया। विलियम, जेम्स द्वितीय की प्रोटेस्टेंट पुत्री मैरी का पति था और यूरोप में फ्रांस के कैथोलिक शासक लुई चौदहवें की शक्ति का विरोध कर रहा था।

इंग्लैंड के नेताओं का उद्देश्य था कि विलियम के आगमन से देश में प्रोटेस्टेंट धर्म और संसद के अधिकारों की रक्षा हो सके। विलियम को भेजे गए आमंत्रण में यह विश्वास व्यक्त किया गया कि इंग्लैंड की जनता और सेना उसका समर्थन करेंगी।

इस प्रकार, इंग्लैंड में आंतरिक राजनीतिक संकट को यूरोपीय राजनीति से भी जोड़ दिया गया। विलियम का इंग्लैंड आना गौरवशाली क्रांति की निर्णायक घटना सिद्ध हुआ।

2. गौरवशाली क्रांति की प्रमुख घटनाएँ

गौरवशाली क्रांति की घटनाएँ मुख्यतः 1688 ई. में घटित हुईं। इन घटनाओं के परिणामस्वरूप जेम्स द्वितीय की सत्ता समाप्त हुई और विलियम तथा मैरी का शासन स्थापित हुआ।

2.1 विलियम ऑफ ऑरेंज का इंग्लैंड आगमन

नवंबर 1688 में विलियम ऑफ ऑरेंज अपनी सेना के साथ इंग्लैंड पहुँचा। उसका उद्देश्य जेम्स द्वितीय को हटाकर इंग्लैंड में ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था जिसमें प्रोटेस्टेंट धर्म और संसद के अधिकार सुरक्षित रहें।

विलियम के इंग्लैंड पहुँचने के बाद जेम्स द्वितीय को अपेक्षित जनसमर्थन नहीं मिला। सेना के अनेक अधिकारी और राजनीतिक नेता विलियम के पक्ष में चले गए। जेम्स द्वितीय की स्थिति लगातार कमजोर होती गई।

विलियम का आगमन केवल सैन्य अभियान नहीं था; उसे इंग्लैंड के अनेक प्रभावशाली वर्गों का समर्थन प्राप्त था। यही कारण था कि जेम्स द्वितीय की सरकार शीघ्र ही राजनीतिक रूप से अलग-थलग पड़ गई।

2.2 जेम्स द्वितीय की शक्ति का पतन

विलियम के आगमन के बाद जेम्स द्वितीय की सेना में असंतोष फैल गया। कई प्रमुख सैन्य अधिकारियों ने उसका साथ छोड़ दिया। इनमें जॉन चर्चिल भी शामिल था, जो बाद में ड्यूक ऑफ मार्लबरो के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

राजा की पुत्री ऐन ने भी उसका साथ नहीं दिया। जब जेम्स द्वितीय ने देखा कि सेना और राजनीतिक नेतृत्व का बड़ा हिस्सा उसके नियंत्रण से बाहर हो रहा है, तो उसकी स्थिति अत्यंत कमजोर हो गई।

उसने कुछ समझौते करने तथा राजनीतिक संकट को नियंत्रित करने का प्रयास किया, लेकिन तब तक उसके विरोधियों की शक्ति बढ़ चुकी थी। अब इंग्लैंड में जेम्स द्वितीय का शासन बनाए रखना कठिन हो गया था।

2.3 जेम्स द्वितीय का पलायन

दिसंबर 1688 में जेम्स द्वितीय ने इंग्लैंड छोड़ने का प्रयास किया। उसका पहला प्रयास सफल नहीं हुआ और उसे वापस पकड़ लिया गया। बाद में उसे देश छोड़ने दिया गया और वह फ्रांस चला गया।

जेम्स द्वितीय का पलायन इंग्लैंड में उसके शासन के अंत का संकेत था। यद्यपि उसने स्वयं औपचारिक रूप से सिंहासन त्यागने की घोषणा नहीं की थी, लेकिन उसके देश छोड़ने से शासन का संकट उत्पन्न हो गया।

इस स्थिति में यह प्रश्न उठा कि इंग्लैंड का राजा कौन होगा और शासन की वैधता किस आधार पर निर्धारित की जाएगी।

2.4 कन्वेंशन संसद की बैठक

जनवरी 1689 में इंग्लैंड में कन्वेंशन संसद की बैठक हुई। यह संसद सामान्य राजकीय प्रक्रिया के अंतर्गत नहीं, बल्कि असाधारण राजनीतिक परिस्थितियों में बुलाई गई थी।

संसद के सामने मुख्य प्रश्न यह था कि जेम्स द्वितीय की स्थिति को किस प्रकार परिभाषित किया जाए तथा नए शासक की नियुक्ति किस आधार पर हो।

संसद ने यह निष्कर्ष निकाला कि जेम्स द्वितीय ने देश छोड़कर शासन से अपने को अलग कर लिया है और अपने कार्यों से राज्य की संवैधानिक व्यवस्था को संकट में डाल दिया है। इस आधार पर सिंहासन रिक्त मानने की दिशा में कदम उठाया गया।

संसद ने विलियम और मैरी को संयुक्त रूप से इंग्लैंड का शासक बनाने का निर्णय लिया। यह निर्णय राजसत्ता के अधिकारों पर संसद की भूमिका को स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण था।

2.5 अधिकारों की घोषणा (Declaration of Rights)

फरवरी 1689 में विलियम और मैरी को शासन स्वीकार करने के लिए आमंत्रित किया गया। इसके साथ संसद ने एक अधिकार-घोषणा प्रस्तुत की, जिसे आगे चलकर अधिकार विधेयक (Bill of Rights) के रूप में कानूनी मान्यता मिली।

अधिकारों की घोषणा का मुख्य उद्देश्य राजा की शक्तियों को सीमित करना और संसद के अधिकारों को सुरक्षित करना था। इसमें स्पष्ट किया गया कि राजा संसद की सहमति के बिना कानूनों को निलंबित नहीं कर सकता, कर नहीं लगा सकता और सामान्य परिस्थितियों में संसद की अनुमति के बिना स्थायी सेना नहीं रख सकता।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इस घोषणा ने यह सिद्धांत मजबूत किया कि राजा कानून से ऊपर नहीं है तथा शासन को देश के स्थापित कानूनों और संसद की स्वीकृति के अनुसार चलना चाहिए।

2.6 विलियम तृतीय और मैरी द्वितीय का राज्यारोहण

फरवरी 1689 में विलियम और मैरी ने इंग्लैंड का शासन स्वीकार किया। विलियम तृतीय और मैरी द्वितीय के संयुक्त शासन की स्थापना गौरवशाली क्रांति का प्रमुख परिणाम थी।

विलियम और मैरी को सिंहासन संसद द्वारा निर्धारित शर्तों के अंतर्गत प्राप्त हुआ। इस प्रकार, राजसत्ता की वैधता के प्रश्न में संसद की भूमिका पहले की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई।

दिसंबर 1689 में अधिकार विधेयक को कानून का रूप दिया गया। इसने इंग्लैंड की संवैधानिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया और भविष्य में संसद तथा राजसत्ता के संबंधों के विकास का आधार तैयार किया।

3. गौरवशाली क्रांति के प्रमुख परिणाम

गौरवशाली क्रांति के परिणाम राजनीतिक, संवैधानिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में दिखाई दिए। इस क्रांति ने इंग्लैंड में शासन की प्रकृति को बदलने की प्रक्रिया को तेज किया।

3.1 निरंकुश राजतंत्र पर अंकुश

गौरवशाली क्रांति का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह था कि इंग्लैंड में राजा की निरंकुश शक्तियों पर प्रभावी अंकुश लगा। इससे पहले स्टुअर्ट वंश के राजा दैवी अधिकार के सिद्धांत के आधार पर व्यापक राजकीय शक्तियों का दावा करते थे।

क्रांति के बाद यह स्पष्ट हो गया कि राजा मनमाने ढंग से शासन नहीं कर सकता। उसे संसद द्वारा स्वीकृत कानूनों और संवैधानिक परंपराओं का पालन करना होगा।

इस परिवर्तन ने इंग्लैंड में संवैधानिक राजतंत्र के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। हालाँकि राजसत्ता तत्काल समाप्त नहीं हुई, लेकिन राजा की शक्तियों की सीमाएँ अधिक स्पष्ट हो गईं।

3.2 संसद की सर्वोच्चता की स्थापना

गौरवशाली क्रांति ने संसद की स्थिति को मजबूत किया। अधिकार विधेयक ने यह सुनिश्चित किया कि राजा संसद की सहमति के बिना कानूनों को निलंबित करने, कर लगाने या स्थायी सेना बनाए रखने जैसी शक्तियों का मनमाना प्रयोग नहीं कर सकता।

संसद की नियमित बैठक और उसके अधिकारों का सम्मान संवैधानिक शासन के महत्त्वपूर्ण अंग बन गए। वित्तीय मामलों में संसद की भूमिका विशेष रूप से मजबूत हुई, क्योंकि राजस्व और कराधान के प्रश्न पर उसकी स्वीकृति आवश्यक मानी जाने लगी।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इससे इंग्लैंड में ऐसी राजनीतिक व्यवस्था का विकास हुआ जिसमें राजा और संसद के अधिकारों का संबंध संवैधानिक नियमों से निर्धारित होने लगा।

3.3 अधिकार विधेयक, 1689

गौरवशाली क्रांति का एक स्थायी परिणाम 1689 ई. का अधिकार विधेयक था। यह इंग्लैंड के संवैधानिक इतिहास का प्रमुख दस्तावेज है।

इसके मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थे—

1. राजा संसद की सहमति के बिना कानूनों को निलंबित नहीं कर सकता था।
2. राजा संसद की स्वीकृति के बिना कर नहीं लगा सकता था।
3. सामान्य परिस्थितियों में संसद की सहमति के बिना स्थायी सेना रखना अनुचित माना गया।
4. संसद के चुनाव स्वतंत्र होने चाहिए।
5. संसद में वाद-विवाद और कार्यवाही की स्वतंत्रता सुरक्षित की गई।
6. नागरिकों को राजा के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने के अधिकार को मान्यता दी गई।
7. अत्यधिक जमानत, अत्यधिक जुर्माने और क्रूर तथा असामान्य दंड पर रोक लगाने के सिद्धांत को स्वीकार किया गया।

इन प्रावधानों ने इंग्लैंड में संवैधानिक शासन की नींव को मजबूत किया। हालांकि अधिकार विधेयक के अधिकार आधुनिक अर्थों में सभी नागरिकों के लिए समान लोकतांत्रिक अधिकार नहीं थे, फिर भी इसने राजसत्ता पर कानूनी नियंत्रण स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3.4 संवैधानिक राजतंत्र का विकास

गौरवशाली क्रांति के बाद इंग्लैंड में संवैधानिक राजतंत्र का विकास तेज हुआ। संवैधानिक राजतंत्र ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें राजा या रानी राष्ट्र का प्रमुख होता है, लेकिन उसकी शक्तियाँ संविधान, कानूनों और स्थापित राजनीतिक परंपराओं से सीमित होती हैं।

इस व्यवस्था में राजा की इच्छा ही शासन का अंतिम आधार नहीं रहती। संसद और कानून शासन संचालन में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 1688-89 की घटनाओं के तुरंत बाद आधुनिक संसदीय लोकतंत्र पूरी तरह स्थापित नहीं हो गया था। मताधिकार सीमित था और राजनीतिक शक्ति समाज के कुछ प्रभावशाली वर्गों के हाथों में केंद्रित थी। फिर भी इस क्रांति ने संसदीय शासन के विकास के लिए आवश्यक संवैधानिक आधार प्रदान किया।

3.5 धार्मिक नीति में परिवर्तन

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

गौरवशाली क्रांति का एक प्रमुख उद्देश्य इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट राजनीतिक व्यवस्था को सुरक्षित रखना था। जेम्स द्वितीय की कैथोलिक नीतियों के प्रति विरोध ने इस क्रांति को व्यापक समर्थन दिलाया।

1689 ई. के टॉलरation एक्ट (Toleration Act) ने अनेक गैर-अनुरूपतावादी प्रोटेस्टेंटों को सीमित धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। हालांकि यह स्वतंत्रता सभी धार्मिक समुदायों के लिए समान नहीं थी। कैथोलिकों और कुछ अन्य समूहों पर प्रतिबंध बने रहे।

इस प्रकार, क्रांति के बाद धार्मिक सहिष्णुता के क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई, लेकिन पूर्ण धार्मिक समानता स्थापित नहीं हुई। इंग्लैंड की राजनीतिक व्यवस्था में प्रोटेस्टेंट धर्म की प्रमुख स्थिति बनी रही।

3.6 राजनीतिक दलों का विकास

गौरवशाली क्रांति से पहले इंग्लैंड में व्हिग और टोरी नामक राजनीतिक समूह उभर चुके थे। क्रांति के दौरान इन समूहों के अनेक नेताओं ने जेम्स द्वितीय की नीतियों का विरोध किया, हालाँकि उनके विचार और उद्देश्य पूरी तरह समान नहीं थे।

व्हिग सामान्यतः संसद के अधिकारों और सीमित राजसत्ता का समर्थन करते थे। टोरी परंपरागत राजतंत्र और स्थापित चर्च के समर्थक थे, लेकिन जेम्स द्वितीय की नीतियों के विरोध में टोरी नेताओं का एक हिस्सा भी विलियम और मैरी के पक्ष में आ गया।

क्रांति के बाद संसद की भूमिका बढ़ने से राजनीतिक दलों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनीं। आगे चलकर इंग्लैंड में संसदीय बहस, मंत्रिमंडलीय शासन और दलगत राजनीति अधिक व्यवस्थित हुई।

3.7 वित्तीय और आर्थिक परिवर्तन

गौरवशाली क्रांति के बाद संसद की वित्तीय शक्तियों को अधिक महत्त्व मिला। सरकार के लिए कराधान और सार्वजनिक ऋण के संबंध में संसद का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता गया।

1694 ई. में बैंक ऑफ इंग्लैंड की स्थापना हुई। यह गौरवशाली क्रांति के बाद विकसित हुए वित्तीय ढाँचे का एक महत्त्वपूर्ण अंग थी। इस संस्था ने सरकार को ऋण उपलब्ध कराने और सार्वजनिक वित्त को व्यवस्थित करने में भूमिका निभाई।

संसद के नियंत्रण और अपेक्षाकृत स्थिर राजनीतिक व्यवस्था ने इंग्लैंड की वित्तीय संस्थाओं के विकास में योगदान दिया। आगे चलकर यह व्यवस्था ब्रिटेन की व्यापारिक और औद्योगिक शक्ति के विस्तार के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुई।

हालाँकि औद्योगिक क्रांति के विकास को केवल गौरवशाली क्रांति का परिणाम मानना उचित नहीं होगा। इसके पीछे तकनीकी नवाचार, पूँजी संचय, व्यापार, उपनिवेशों, श्रम और प्राकृतिक संसाधनों सहित अनेक कारण कार्यरत थे।

3.8 यूरोपीय राजनीति पर प्रभाव

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

गौरवशाली क्रांति का प्रभाव इंग्लैंड की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रहा। विलियम तृतीय यूरोप में फ्रांस के राजा लुई चौदहवें की विस्तारवादी नीति का विरोध कर रहा था। इंग्लैंड की सत्ता प्राप्त करने के बाद वह फ्रांस के विरुद्ध यूरोपीय गठबंधनों में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाने लगा।

इसके परिणामस्वरूप इंग्लैंड की विदेश नीति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इंग्लैंड यूरोप की शक्ति-संतुलन व्यवस्था में सक्रिय भागीदार बन गया। फ्रांस की शक्ति को सीमित करने के प्रयासों में इंग्लैंड की भूमिका बढ़ी।

इस प्रकार, गौरवशाली क्रांति ने इंग्लैंड की आंतरिक संवैधानिक व्यवस्था के साथ-साथ यूरोपीय कूटनीति को भी प्रभावित किया।

3.9 आयरलैंड और स्कॉटलैंड में संघर्ष

गौरवशाली क्रांति को प्रायः अपेक्षाकृत कम रक्तपात वाली क्रांति कहा जाता है, लेकिन यह विवरण मुख्यतः इंग्लैंड की घटनाओं पर लागू होता है। आयरलैंड और स्कॉटलैंड में जेम्स द्वितीय के समर्थकों तथा विलियम के समर्थकों के बीच संघर्ष हुआ।

आयरलैंड में 1689 से 1691 के बीच विलियमाइट युद्ध चला। 1690 ई. में बॉयने का युद्ध इस संघर्ष की प्रमुख घटना थी। 1691 ई. में लिमरिक की संधि के बाद आयरलैंड में जेम्स द्वितीय के पक्ष की सैन्य स्थिति निर्णायक रूप से कमजोर हुई।

स्कॉटलैंड में भी जेम्स द्वितीय के समर्थक जैकोबाइट आंदोलन के रूप में सामने आए। इस प्रकार, गौरवशाली क्रांति के परिणाम पूरे ब्रिटिश द्वीपसमूह में समान रूप से शांतिपूर्ण नहीं थे।

3.10 आधुनिक लोकतंत्र के विकास में योगदान

गौरवशाली क्रांति को आधुनिक लोकतांत्रिक शासन के विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। इसने यह सिद्धांत मजबूत किया कि शासक की शक्ति कानून से सीमित होनी चाहिए और शासन के महत्त्वपूर्ण निर्णयों में प्रतिनिधि संस्था की भूमिका आवश्यक है।

इस क्रांति ने भविष्य में संसदीय लोकतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता और संवैधानिक शासन की अवधारणाओं को प्रभावित किया। बाद के राजनीतिक विचारकों तथा संवैधानिक व्यवस्थाओं के विकास में इंग्लैंड के अनुभव का उल्लेख मिलता है।

फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि 1688-89 की क्रांति का उद्देश्य सार्वभौमिक मताधिकार या सामाजिक समानता स्थापित करना नहीं था। इसके प्रमुख समर्थक धार्मिक, राजनीतिक और संपत्तिगत हितों से भी प्रेरित थे। इसलिए इसे आधुनिक लोकतंत्र की पूर्ण स्थापना के बजाय उसके विकास की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अवस्था के रूप में देखना अधिक उचित है।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

4. गौरवशाली क्रांति का ऐतिहासिक महत्त्व

गौरवशाली क्रांति का महत्त्व इंग्लैंड के संवैधानिक विकास और आधुनिक राजनीतिक इतिहास में विशेष स्थान रखता है।

पहला, इसने राजा के दैवी अधिकार के सिद्धांत को व्यावहारिक चुनौती दी। राजा की सत्ता को संसद और कानूनों के अधीन रखने का विचार अधिक मजबूत हुआ।

दूसरा, इसने संसद की भूमिका को बढ़ाया। कराधान, कानून और शासन से संबंधित मामलों में संसद की स्वीकृति का महत्त्व स्थापित हुआ।

तीसरा, इसने संवैधानिक राजतंत्र के विकास को गति दी। राजा का पद बना रहा, लेकिन शासन की प्रकृति अधिक संवैधानिक होती गई।

चौथा, अधिकार विधेयक ने राजसत्ता की सीमाओं को स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे इंग्लैंड में कानूनी शासन की अवधारणा को बल मिला।

पाँचवाँ, इसने राजनीतिक स्थिरता और वित्तीय संस्थाओं के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं। आगे चलकर इंग्लैंड की व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रगति में अनेक संस्थागत कारकों का योगदान रहा।

छठा, इसने यूरोपीय राजनीति में इंग्लैंड की भूमिका को प्रभावित किया। विलियम तृतीय के शासनकाल में फ्रांस के विरुद्ध शक्ति-संतुलन की नीति अधिक सक्रिय हुई।

सातवाँ, इसने भविष्य में लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण संवैधानिक परंपराएँ स्थापित कीं। हालांकि उस समय राजनीतिक अधिकार सीमित वर्गों तक केंद्रित थे, फिर भी इस क्रांति ने निरंकुश सत्ता पर नियंत्रण की धारणा को मजबूत किया।

5. गौरवशाली क्रांति की सीमाएँ

गौरवशाली क्रांति के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इसकी सीमाओं को समझना भी आवश्यक है।

1. **सार्वभौमिक मताधिकार का अभाव:** इस क्रांति के बाद सभी वयस्क नागरिकों को मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। राजनीतिक भागीदारी मुख्यतः संपत्ति और सामाजिक स्थिति से प्रभावित थी।
2. **धार्मिक समानता की अपूर्णता:** प्रोटेस्टेंटों को प्राथमिकता मिली, लेकिन कैथोलिकों और कुछ अन्य धार्मिक समूहों पर प्रतिबंध बने रहे।
3. **सामाजिक संरचना में सीमित परिवर्तन:** क्रांति ने इंग्लैंड की सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को समाप्त नहीं किया। भूमि तथा संपत्ति पर प्रभावशाली वर्गों का नियंत्रण बना रहा।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

4. **पूरे ब्रिटिश द्वीपसमूह में हिंसा:** इंग्लैंड में सत्ता परिवर्तन अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण रहा, लेकिन आयरलैंड और स्कॉटलैंड में सैन्य संघर्ष हुए।

5. **आधुनिक लोकतंत्र की तत्काल स्थापना नहीं:** संसद की शक्ति बढ़ने के बावजूद शासन पूर्ण रूप से जनप्रतिनिधिक और लोकतांत्रिक नहीं बना। आधुनिक संसदीय लोकतंत्र का विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था।

इन सीमाओं के बावजूद गौरवशाली क्रांति का ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं होता। इसने शासन में कानून और संसद की भूमिका को मजबूत करने की दिशा में निर्णायक कदम उठाया।

निष्कर्ष

गौरवशाली क्रांति, 1688-89, इंग्लैंड के राजनीतिक और संवैधानिक इतिहास की एक निर्णायक घटना थी। इसकी पृष्ठभूमि में स्टुअर्ट राजाओं की निरंकुश प्रवृत्ति, संसद के अधिकारों की अवहेलना, जेम्स द्वितीय की धार्मिक नीतियाँ और कैथोलिक उत्तराधिकारी के जन्म से उत्पन्न आशंकाएँ प्रमुख थीं। विलियम ऑफ ऑरेंज के इंग्लैंड आगमन, जेम्स द्वितीय के पलायन और विलियम तथा मैरी के राज्यारोहण ने इस संकट को निर्णायक रूप दिया।

इस क्रांति का सबसे स्थायी परिणाम राजसत्ता पर संसदीय और कानूनी नियंत्रण का मजबूत होना था। 1689 ई. के अधिकार विधेयक ने राजा की शक्तियों को सीमित किया और संसद के अधिकारों को अधिक स्पष्ट रूप से स्थापित किया। इसके अतिरिक्त, क्रांति ने संवैधानिक राजतंत्र, वित्तीय संस्थाओं और आधुनिक संसदीय शासन के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार कीं।

यद्यपि इस क्रांति ने तत्काल सार्वभौमिक लोकतंत्र या धार्मिक समानता स्थापित नहीं की, फिर भी इसने निरंकुश राजतंत्र से संवैधानिक शासन की ओर संक्रमण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसलिए गौरवशाली क्रांति को इंग्लैंड में संसदीय सर्वोच्चता के विकास तथा आधुनिक संवैधानिक व्यवस्था की स्थापना की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है।

Dr. RAKesh Mohan Nautiyal

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम: कारण, घटनाएँ, 1776 की क्रांति, अधिकारों की घोषणा और परिणाम

1. प्रस्तावना

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम अठारहवीं शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक क्रांति थी, जिसने उत्तरी अमेरिका के तेरह ब्रिटिश उपनिवेशों को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र कराकर संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। यह संघर्ष मुख्यतः 1775 से 1783 ई. तक चला, जबकि 4 जुलाई 1776 को स्वतंत्रता की घोषणा ने इसे एक स्पष्ट राजनीतिक और वैचारिक लक्ष्य प्रदान किया।

इस क्रांति का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाए गए करों, व्यापारिक प्रतिबंधों और राजनीतिक नियंत्रण का विरोध करना था। उपनिवेशों के निवासियों का तर्क था कि जब उन्हें ब्रिटिश संसद में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है, तो संसद को उन पर कर लगाने का अधिकार नहीं होना चाहिए। धीरे-धीरे यह विरोध केवल कराधान तक सीमित न रहकर स्वशासन, प्राकृतिक अधिकारों और राजनीतिक स्वतंत्रता की माँग में बदल गया।

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने आधुनिक विश्व को स्वतंत्रता, समानता, जनसहमति पर आधारित शासन और प्राकृतिक अधिकारों जैसी अवधारणाओं से गहराई से प्रभावित किया। इसने फ्रांसीसी क्रांति सहित अनेक बाद के राजनीतिक आंदोलनों को प्रेरणा दी। हालाँकि स्वतंत्रता की घोषणा में सभी मनुष्यों की समानता का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया, लेकिन उस समय दासप्रथा समाप्त नहीं हुई थी और महिलाओं तथा मूल अमेरिकी समुदायों को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इसलिए अमेरिकी क्रांति को स्वतंत्रता और समानता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण, लेकिन अपूर्ण, ऐतिहासिक परिवर्तन के रूप में समझना चाहिए।

2. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि

2.1 उत्तरी अमेरिका में ब्रिटिश उपनिवेशों की स्थापना

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में ब्रिटेन ने उत्तरी अमेरिका के अटलांटिक तट पर अनेक उपनिवेश स्थापित किए। 1770 के दशक तक ब्रिटिश शासन के अधीन तेरह प्रमुख उपनिवेश विकसित हो चुके थे। इनमें वर्जीनिया, मैसाचुसेट्स, न्यूयॉर्क, पेनसिल्वेनिया, मैरीलैंड, जॉर्जिया और अन्य उपनिवेश शामिल थे।

इन उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना में पर्याप्त विविधता थी। उत्तरी क्षेत्रों में व्यापार, जहाज निर्माण, मत्स्य उद्योग और छोटे कृषक प्रमुख थे, जबकि दक्षिणी उपनिवेशों में तंबाकू, चावल और अन्य नकदी फसलों पर आधारित बागान अर्थव्यवस्था विकसित हुई थी। दक्षिण के अनेक बागानों में अफ्रीकी मूल के लोगों को दास बनाकर काम कराया जाता था।

उपनिवेशों में स्थानीय विधानसभाएँ और स्वशासन की कुछ संस्थाएँ भी विकसित हो गई थीं। समय के साथ उपनिवेशवासियों को अपने स्थानीय मामलों का निर्णय स्वयं लेने की आदत पड़ गई। जब ब्रिटिश सरकार ने उनके राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर अधिक नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया, तो असंतोष बढ़ने लगा।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

2.2 फ्रांसीसी और भारतीय युद्ध का प्रभाव

1754 से 1763 ई. तक उत्तरी अमेरिका में ब्रिटेन और फ्रांस के बीच औपनिवेशिक प्रभुत्व को लेकर संघर्ष हुआ, जिसे फ्रांसीसी और भारतीय युद्ध (French and Indian War) कहा जाता है। यह व्यापक सात वर्षीय युद्ध का उत्तरी अमेरिकी भाग था।

1763 ई. में पेरिस की संधि के बाद फ्रांस ने उत्तरी अमेरिका में अपने अधिकांश महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय अधिकार ब्रिटेन को सौंप दिए। इस युद्ध में विजय से ब्रिटेन की औपनिवेशिक शक्ति बढ़ी, लेकिन युद्ध के कारण ब्रिटिश सरकार पर भारी ऋण भी चढ़ गया।

ब्रिटिश सरकार ने इस ऋण का कुछ हिस्सा वसूलने तथा उत्तरी अमेरिका में सेना और प्रशासन का खर्च पूरा करने के लिए उपनिवेशों पर नए कर लगाने शुरू किए। उपनिवेशवासियों ने इन करों का विरोध किया, क्योंकि उन्हें ब्रिटिश संसद में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था।

इस प्रकार, फ्रांसीसी और भारतीय युद्ध की समाप्ति अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में एक महत्त्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई।

2.3 उपनिवेशों में स्वशासन की परंपरा

ब्रिटिश उपनिवेशों में स्थानीय विधानसभाएँ लंबे समय से कराधान और प्रशासन से संबंधित विषयों पर भूमिका निभाती रही थीं। उपनिवेशवासी अपने स्थानीय प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन में भाग लेने के अभ्यस्त हो गए थे।

ब्रिटिश सरकार द्वारा नए कर लगाए जाने और प्रशासनिक नियंत्रण बढ़ाने से उन्हें लगा कि उनके पारंपरिक अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। उनका तर्क था कि कर लगाने का अधिकार उन प्रतिनिधियों के पास होना चाहिए जिन्हें कर देने वाले लोग चुनते हैं।

इस विचार ने आगे चलकर अमेरिकी क्रांति के प्रमुख नारे को जन्म दिया—"प्रतिनिधित्व के बिना कराधान नहीं" (No Taxation Without Representation)।

3. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख कारण

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम किसी एक घटना का परिणाम नहीं था। इसके पीछे आर्थिक शोषण, राजनीतिक अधिकारों का प्रश्न, व्यापारिक नियंत्रण, बौद्धिक विचारधाराएँ और ब्रिटिश सरकार की दमनात्मक नीतियाँ सम्मिलित थीं।

3.1 आर्थिक शोषण और व्यापारिक प्रतिबंध

ब्रिटिश सरकार उपनिवेशों को अपनी आर्थिक व्यवस्था के अधीन रखना चाहती थी। ब्रिटिश व्यापारिक नीति का उद्देश्य था कि उपनिवेश कच्चा माल उपलब्ध कराएँ और ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के लिए बाजार बने रहें।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

व्यापार और नौवहन से संबंधित कानूनों के माध्यम से ब्रिटेन ने उपनिवेशों के समुद्री व्यापार को नियंत्रित करने का प्रयास किया। कुछ वस्तुओं के व्यापार और उनके परिवहन पर प्रतिबंध लगाए गए। इससे उपनिवेशों के व्यापारियों में असंतोष पैदा हुआ।

उपनिवेशों के आर्थिक हित धीरे-धीरे ब्रिटिश व्यापारिक नीतियों से टकराने लगे। व्यापारी और कृषक वर्ग अपने आर्थिक निर्णयों में अधिक स्वतंत्रता चाहता था। इस कारण आर्थिक नियंत्रण स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख कारण बन गया।

3.2 शुगर एक्ट, 1764

1764 ई. में ब्रिटिश संसद ने शुगर एक्ट (Sugar Act) पारित किया। इस कानून का उद्देश्य चीनी और कुछ अन्य वस्तुओं के व्यापार पर शुल्क लगाकर ब्रिटिश राजस्व बढ़ाना तथा तस्करी पर नियंत्रण करना था।

उपनिवेशवासियों ने इस कानून का विरोध किया, क्योंकि उन्हें लगा कि ब्रिटिश सरकार उनकी सहमति के बिना आर्थिक बोझ बढ़ा रही है। शुगर एक्ट ने कराधान और प्रतिनिधित्व के प्रश्न को अधिक गंभीर बना दिया।

3.3 स्टाम्प एक्ट, 1765

1765 ई. में ब्रिटिश संसद ने स्टाम्प एक्ट (Stamp Act) पारित किया। इसके अंतर्गत समाचारपत्रों, कानूनी दस्तावेजों, अनुबंधों, पर्चों और अन्य मुद्रित सामग्रियों पर कर लगाया गया।

यह कर उपनिवेशों के शिक्षित वर्ग, वकीलों, व्यापारियों, मुद्रकों और सामान्य नागरिकों को सीधे प्रभावित करता था। इसके विरोध में सभाएँ आयोजित की गईं और ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन चलाया गया।

अक्टूबर 1765 में न्यूयॉर्क में स्टाम्प एक्ट कांग्रेस की बैठक हुई। इसमें कई उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और ब्रिटिश संसद द्वारा लगाए गए करों के विरोध में अपने अधिकारों की बात कही।

व्यापक विरोध के कारण ब्रिटिश संसद ने 1766 ई. में स्टाम्प एक्ट वापस ले लिया। लेकिन उसी समय पारित डिक्लेरेटरी एक्ट के माध्यम से संसद ने यह दावा बनाए रखा कि उसे उपनिवेशों के लिए कानून बनाने का अधिकार है।

इस प्रकार, स्टाम्प एक्ट विवाद ने उपनिवेशों और ब्रिटिश सरकार के बीच राजनीतिक संघर्ष को और गहरा कर दिया।

3.4 टाउनशेंड एक्ट, 1767

1767 ई. में ब्रिटिश संसद ने टाउनशेंड एक्ट्स पारित किए। इनके अंतर्गत काँच, सीसा, कागज, रंग और चाय जैसी वस्तुओं के आयात पर शुल्क लगाए गए।

Dr. Rakesh Mohan Naithyal

उपनिवेशवासियों ने इन करों को भी प्रतिनिधित्व के अभाव में अनुचित माना। इसके विरोध में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का अभियान चलाया गया। व्यापारियों, महिलाओं और स्थानीय राजनीतिक संगठनों ने भी इन आंदोलनों में भाग लिया।

ब्रिटिश सरकार ने कुछ शुल्क हटा दिए, लेकिन चाय पर कर बनाए रखा। इससे चाय का प्रश्न आगे चलकर एक बड़े राजनीतिक विवाद का केंद्र बन गया।

3.5 बोस्टन नरसंहार, 1770

5 मार्च 1770 को बोस्टन में ब्रिटिश सैनिकों और स्थानीय निवासियों के बीच तनाव हिंसक हो गया। सैनिकों की गोलीबारी में पाँच उपनिवेशवासी मारे गए, जिनमें क्रिस्पस अटक्स भी शामिल था।

इस घटना को बोस्टन नरसंहार (Boston Massacre) कहा जाता है। अमेरिकी स्वतंत्रता आंदोलन के समर्थकों ने इस घटना का उपयोग ब्रिटिश सैनिकों की उपस्थिति और शासन के विरुद्ध जनमत तैयार करने के लिए किया।

हालाँकि इस घटना की परिस्थितियों और सैनिकों की कार्रवाई को लेकर ऐतिहासिक बहस रही है, लेकिन इसने उपनिवेशों में ब्रिटिश शासन के प्रति अविश्वास को बढ़ाया।

3.6 बोस्टन टी पार्टी, 1773

ब्रिटिश सरकार ने 1773 ई. में टी एक्ट (Tea Act) पारित किया। इसका उद्देश्य ईस्ट इंडिया कंपनी को आर्थिक सहायता देना और अमेरिकी बाजार में उसकी चाय की बिक्री को बढ़ावा देना था। चाय पर कर बना रहा, जिससे उपनिवेशवासियों में असंतोष फैल गया।

16 दिसंबर 1773 को बोस्टन में कुछ उपनिवेशवासियों ने मोहॉक मूल अमेरिकी लोगों जैसी वेशभूषा धारण कर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के जहाजों से चाय की पेटियाँ समुद्र में फेंक दीं। यह घटना बोस्टन टी पार्टी (Boston Tea Party) के नाम से प्रसिद्ध हुई।

यह विरोध केवल चाय के कर के विरुद्ध नहीं था, बल्कि ब्रिटिश संसद के अधिकार और औपनिवेशिक स्वायत्तता से संबंधित व्यापक विवाद का प्रतीक बन गया।

3.7 असहनीय कानून, 1774

बोस्टन टी पार्टी के बाद ब्रिटिश सरकार ने 1774 ई. में कठोर दंडात्मक कानून लागू किए, जिन्हें उपनिवेशवासियों ने 'असहनीय कानून' (Intolerable Acts) कहा। ब्रिटिश सरकार इन्हें दंडात्मक कानून मानती थी, जबकि उपनिवेशवासी इन्हें अपने अधिकारों पर हमला समझते थे।

इन कानूनों के माध्यम से बोस्टन बंदरगाह को चाय के नुकसान की भरपाई होने तक बंद किया गया। मैसाचुसेट्स की स्थानीय स्वशासन व्यवस्था पर प्रतिबंध लगाए गए और ब्रिटिश अधिकारियों की स्थिति मजबूत की गई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

इन कानूनों ने अन्य उपनिवेशों को भी चिंतित कर दिया। उन्हें लगा कि यदि मैसाचुसेट्स के अधिकार समाप्त किए जा सकते हैं, तो भविष्य में अन्य उपनिवेश भी इसी प्रकार के नियंत्रण का सामना कर सकते हैं।

3.8 प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस, 1774

सितंबर 1774 में फिलाडेल्फिया में प्रथम महाद्वीपीय कांग्रेस (First Continental Congress) की बैठक हुई। इसमें जॉर्जिया को छोड़कर बारह उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की दमनात्मक नीतियों का विरोध किया और उपनिवेशों के अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त कार्रवाई की आवश्यकता पर बल दिया। ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार तथा उपनिवेशों के बीच सहयोग को प्रोत्साहित किया गया।

इस बैठक ने उपनिवेशों में राजनीतिक एकता की भावना को मजबूत किया। अब उनका विरोध केवल स्थानीय स्तर तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामूहिक राजनीतिक आंदोलन का रूप लेने लगा।

3.9 प्रबोधन विचारधारा का प्रभाव

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के पीछे प्रबोधन युग (Enlightenment) के राजनीतिक विचारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस काल के विचारकों ने तर्क, प्राकृतिक अधिकार, स्वतंत्रता, कानून के शासन और जनसहमति पर आधारित सरकार का समर्थन किया।

जॉन लॉक ने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति को प्राकृतिक अधिकारों के रूप में प्रस्तुत किया। उसके अनुसार सरकार का उद्देश्य इन अधिकारों की रक्षा करना है। यदि सरकार अपने दायित्वों का उल्लंघन करती है, तो जनता को उसे बदलने का अधिकार है।

मॉन्टेस्क्यू के विचारों ने सत्ता के विभाजन की अवधारणा को प्रभावित किया। रिपब्लिकन राजनीतिक परंपरा ने नागरिक सद्गुण, प्रतिनिधिक संस्थाओं और सार्वजनिक हित पर बल दिया।

इन विचारों ने उपनिवेशवासियों को ब्रिटिश शासन की वैधता पर प्रश्न उठाने और स्वतंत्र शासन की कल्पना करने के लिए प्रेरित किया।

3.10 राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का केंद्रीय प्रश्न यह था कि क्या ब्रिटिश संसद को उन उपनिवेशों पर कर लगाने और कानून लागू करने का अधिकार है, जिनके प्रतिनिधि संसद में उपस्थित नहीं हैं।

ब्रिटिश सरकार का तर्क था कि संसद पूरे ब्रिटिश साम्राज्य के हितों का प्रतिनिधित्व करती है। इसे 'आभासी प्रतिनिधित्व' (Virtual Representation) की अवधारणा से जोड़ा जाता था।

इसके विपरीत, उपनिवेशवासी प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व और स्थानीय विधानसभाओं के अधिकारों पर बल देते थे। उनका मानना था कि कर लगाने के लिए उन प्रतिनिधियों की सहमति आवश्यक है, जिन्हें करदाता स्वयं चुनते हैं।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

यही विवाद आगे चलकर स्वशासन और पूर्ण स्वतंत्रता की माँग में बदल गया।

4. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख घटनाएँ

4.1 लेक्सिंगटन और कॉनकॉर्ड का युद्ध, 1775

19 अप्रैल 1775 को मैसाचुसेट्स में लेक्सिंगटन और कॉनकॉर्ड के निकट ब्रिटिश सैनिकों तथा औपनिवेशिक मिलिशिया के बीच संघर्ष हुआ। ब्रिटिश सैनिक औपनिवेशिक हथियारों और सैन्य सामग्री को जब्त करने के उद्देश्य से आगे बढ़े थे।

इन झड़पों ने अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के सशस्त्र चरण की शुरुआत कर दी। ब्रिटिश सैनिकों को स्थानीय प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और संघर्ष तेजी से फैल गया।

इस घटना के बाद उपनिवेशवासियों का विरोध संगठित सैन्य आंदोलन में बदलने लगा।

4.2 द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस, 1775

मई 1775 में द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस की बैठक हुई। इसने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जारी संघर्ष का नेतृत्व संभाला और महाद्वीपीय सेना के गठन का निर्णय लिया।

जॉर्ज वाशिंगटन को महाद्वीपीय सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। वह वर्जीनिया का एक अनुभवी सैन्य अधिकारी था और आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेताओं में शामिल हुआ।

शुरुआत में अनेक उपनिवेशवासी ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर अपने अधिकारों की बहाली चाहते थे, लेकिन युद्ध बढ़ने के साथ पूर्ण स्वतंत्रता की माँग मजबूत होती गई।

4.3 बंकर हिल का युद्ध, 1775

17 जून 1775 को बोस्टन के निकट बंकर हिल का युद्ध हुआ। ब्रिटिश सेना ने औपनिवेशिक सैनिकों के ठिकानों पर आक्रमण किया। ब्रिटिश सेना ने अंततः क्षेत्र पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया, लेकिन उसे भारी जनहानि उठानी पड़ी।

इस युद्ध ने दिखाया कि औपनिवेशिक सैनिक ब्रिटिश सेना का प्रभावी प्रतिरोध कर सकते हैं। इससे अमेरिकी पक्ष का मनोबल बढ़ा।

4.4 स्वतंत्रता की माँग का विकास

युद्ध शुरू होने के बाद भी कुछ नेता ब्रिटेन के साथ समझौते की आशा रखते थे। लेकिन ब्रिटिश सरकार द्वारा विद्रोह को दबाने के प्रयासों और सैन्य संघर्ष के विस्तार ने स्वतंत्रता समर्थकों की स्थिति मजबूत की।

1776 की शुरुआत में थॉमस पेन की पुस्तिका *कॉमन सेंस* (Common Sense) प्रकाशित हुई। इसमें राजतंत्र की आलोचना की गई और अमेरिका के लिए स्वतंत्र गणतंत्र की स्थापना का समर्थन किया गया।

इस पुस्तिका ने आम पाठकों के बीच स्वतंत्रता के विचार को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

5. अमेरिकी क्रांति, 1776

1776 ई. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का निर्णायक वर्ष था। इसी वर्ष उपनिवेशों ने ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होने का औपचारिक निर्णय लिया और स्वतंत्रता की घोषणा जारी की।

5.1 स्वतंत्रता की दिशा में निर्णायक कदम

1776 की शुरुआत तक उपनिवेशों में यह विचार मजबूत हो गया था कि ब्रिटेन के साथ राजनीतिक समझौता अब पर्याप्त नहीं है। ब्रिटिश सरकार और औपनिवेशिक नेतृत्व के बीच अविश्वास गहरा चुका था।

थॉमस पेन की *कॉमन सेंस* ने राजतंत्र के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किए और स्वतंत्र गणतंत्र की आवश्यकता पर बल दिया। इसने राजनीतिक बहस को अधिक व्यापक बनाया।

जून 1776 में वर्जीनिया के प्रतिनिधि रिचर्ड हेनरी ली ने महाद्वीपीय कांग्रेस में उपनिवेशों की स्वतंत्रता का प्रस्ताव रखा। इसके बाद स्वतंत्रता की औपचारिक घोषणा तैयार करने की प्रक्रिया आगे बढ़ी।

5.2 स्वतंत्रता की घोषणा, 4 जुलाई 1776

4 जुलाई 1776 को महाद्वीपीय कांग्रेस ने स्वतंत्रता की घोषणा (Declaration of Independence) को स्वीकार किया। इसकी प्रारूप-समिति में थॉमस जेफरसन, जॉन एडम्स, बेंजामिन फ्रैंकलिन, रोजर शेरमन और रॉबर्ट लिविंगस्टन शामिल थे। घोषणा का मुख्य प्रारूप थॉमस जेफरसन ने तैयार किया।

इस घोषणा में कहा गया कि सभी मनुष्य समान पैदा किए गए हैं और उन्हें कुछ अविच्छिन्न अधिकार प्राप्त हैं। इनमें जीवन, स्वतंत्रता और सुख की खोज के अधिकार को विशेष रूप से उल्लेखित किया गया।

घोषणा के अनुसार सरकारें जनता की सहमति से अपनी वैध शक्ति प्राप्त करती हैं। यदि कोई सरकार लोगों के अधिकारों का विनाश करती है, तो जनता को उसे बदलने या समाप्त करने का अधिकार है।

घोषणा में ब्रिटिश राजा जॉर्ज तृतीय के विरुद्ध अनेक आरोप लगाए गए और तेरह उपनिवेशों को स्वतंत्र तथा संप्रभु राज्यों के रूप में घोषित किया गया।

5.3 स्वतंत्रता की घोषणा का दार्शनिक आधार

स्वतंत्रता की घोषणा में जॉन लॉक के प्राकृतिक अधिकारों और जनसहमति पर आधारित शासन के विचारों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि सरकार का उद्देश्य लोगों के अधिकारों की रक्षा करना है।

यदि सरकार निरंतर अधिकारों का उल्लंघन करती है, तो जनता को उसे बदलने का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार, घोषणा ने राजनीतिक सत्ता की वैधता को वंशानुगत राजसत्ता के स्थान पर जनता की सहमति से जोड़ने का प्रयास किया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

घोषणा का एक प्रसिद्ध विचार यह है कि सरकारें अपनी न्यायसंगत शक्तियाँ शासितों की सहमति से प्राप्त करती हैं। यह सिद्धांत आगे चलकर लोकतांत्रिक राजनीतिक विचारधारा के विकास में प्रभावशाली रहा।

हालाँकि घोषणा में समानता का सिद्धांत प्रस्तुत करने के बावजूद उस समय दासप्रथा समाप्त नहीं की गई। महिलाओं और मूल अमेरिकी समुदायों को भी समान राजनीतिक अधिकार नहीं मिले। इस विरोधाभास ने अमेरिकी इतिहास में स्वतंत्रता और समानता के विचारों तथा सामाजिक वास्तविकताओं के बीच अंतर को उजागर किया।

5.4 स्वतंत्रता की घोषणा का महत्त्व

स्वतंत्रता की घोषणा का महत्त्व निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है—

1. इसने ब्रिटेन से अलग होने के निर्णय को औपचारिक रूप दिया।
2. इसने तेरह उपनिवेशों को एक साझा राजनीतिक उद्देश्य प्रदान किया।
3. इसने प्राकृतिक अधिकारों और जनसहमति पर आधारित शासन की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया।
4. इसने गणतांत्रिक शासन के विचार को बल दिया।
5. इसने आगे चलकर फ्रांसीसी क्रांति तथा अन्य स्वतंत्रता आंदोलनों को वैचारिक प्रेरणा प्रदान की।
6. इसने आधुनिक मानवाधिकार विमर्श के विकास में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

6. पुरुषों के अधिकारों की घोषणा: ऐतिहासिक संदर्भ और स्पष्टता

अमेरिकी क्रांति के संदर्भ में 'पुरुषों के अधिकारों की घोषणा' शब्द का प्रयोग करते समय दो अलग-अलग ऐतिहासिक दस्तावेजों में अंतर करना आवश्यक है।

अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा, 1776 में सभी मनुष्यों की समानता तथा जीवन, स्वतंत्रता और सुख की खोज के अधिकार का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया। इसके विपरीत, **मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा (Declaration of the Rights of Man and of the Citizen), 1789** फ्रांसीसी क्रांति से संबंधित दस्तावेज है।

इसलिए यदि प्रश्न अमेरिकी क्रांति के संदर्भ में है, तो मुख्य रूप से 1776 की अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा का अध्ययन करना चाहिए। यदि प्रश्न में 'पुरुषों के अधिकारों की घोषणा' से आशय फ्रांसीसी क्रांति की घोषणा है, तो उसका वर्ष 1789 है।

6.1 अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में अधिकारों का विचार

4 जुलाई 1776 की घोषणा में अधिकारों से संबंधित प्रमुख विचार निम्नलिखित थे—

1. समानता का सिद्धांत: घोषणा में कहा गया कि सभी मनुष्य समान पैदा किए गए हैं। यह विचार वंशानुगत विशेषाधिकार और निरंकुश राजसत्ता के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक आधार था।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

2. प्राकृतिक अधिकार: जीवन, स्वतंत्रता और सुख की खोज को ऐसे अधिकारों के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिन्हें मनुष्यों से मनमाने ढंग से छीना नहीं जाना चाहिए।

3. जनसहमति पर आधारित शासन: सरकार की न्यायसंगत शक्ति जनता की सहमति से प्राप्त होती है। यह सिद्धांत शासन की वैधता को जनता से जोड़ता है।

4. सरकार बदलने का अधिकार: यदि सरकार लोगों के अधिकारों का हनन करती है, तो जनता को सरकार में परिवर्तन करने का अधिकार है।

5. राजनीतिक स्वतंत्रता: घोषणा ने तेरह उपनिवेशों को ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्र राज्य घोषित किया और उन्हें युद्ध, शांति, गठबंधन तथा व्यापार से संबंधित निर्णय लेने का अधिकार दिया।

6.2 अधिकारों की घोषणा की सीमाएँ

यद्यपि अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में समानता और स्वतंत्रता के आदर्श प्रस्तुत किए गए, लेकिन इन आदर्शों का तत्काल सभी लोगों पर समान रूप से लागू होना संभव नहीं हुआ।

- दासप्रथा दक्षिणी राज्यों सहित अनेक क्षेत्रों में बनी रही।
- महिलाओं को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हुए।
- मूल अमेरिकी समुदायों के अधिकारों और भूमि पर औपनिवेशिक विस्तार का गंभीर प्रभाव पड़ा।
- राजनीतिक भागीदारी अनेक स्थानों पर संपत्ति, लिंग और सामाजिक स्थिति से प्रभावित थी।

इसलिए अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा को एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक उपलब्धि के साथ-साथ अधूरे सामाजिक परिवर्तन के दस्तावेज के रूप में भी देखना चाहिए।

7. स्वतंत्रता संग्राम के बाद युद्ध की प्रमुख घटनाएँ

1776 की स्वतंत्रता की घोषणा के बाद युद्ध समाप्त नहीं हुआ। ब्रिटेन ने उपनिवेशों पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए सैन्य अभियान जारी रखा।

7.1 न्यूयॉर्क अभियान, 1776

1776 में ब्रिटिश सेना ने न्यूयॉर्क क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सैन्य अभियान चलाया। जॉर्ज वाशिंगटन के नेतृत्व वाली महाद्वीपीय सेना को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उसे पीछे हटना पड़ा।

इन पराजयों के बावजूद अमेरिकी सेना का संगठन समाप्त नहीं हुआ। वाशिंगटन ने सैनिकों को संगठित रखा और संघर्ष जारी रखा।

7.2 ट्रेंटन और प्रिंसटन की विजय

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

दिसंबर 1776 में वाशिंगटन ने डेलावेयर नदी पार करके ट्रेंटन में हेसियन सैनिकों पर अचानक आक्रमण किया। इसके बाद जनवरी 1777 में प्रिंसटन में अमेरिकी पक्ष को एक और महत्त्वपूर्ण सफलता मिली।

इन विजयों ने अमेरिकी सेना का मनोबल बढ़ाया और स्वतंत्रता आंदोलन के भविष्य के प्रति विश्वास मजबूत किया।

7.3 साराटोगा का युद्ध, 1777

1777 में साराटोगा के युद्ध में अमेरिकी सेना ने ब्रिटिश जनरल जॉन बर्गोयन की सेना को पराजित कर आत्मसमर्पण के लिए विवश किया।

यह विजय निर्णायक सिद्ध हुई, क्योंकि इससे विदेशी शक्तियों को यह विश्वास हुआ कि अमेरिकी उपनिवेश ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध जीतने की वास्तविक क्षमता रखते हैं।

7.4 फ्रांस का सहयोग

1778 में फ्रांस ने अमेरिका के साथ औपचारिक गठबंधन किया। फ्रांस ने अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम को सैनिक, नौसैनिक और आर्थिक सहायता प्रदान की। स्पेन ने भी बाद में ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया, यद्यपि उसकी भूमिका अमेरिकी पक्ष के साथ प्रत्यक्ष औपचारिक गठबंधन से भिन्न थी।

फ्रांस की सहायता ने युद्ध का स्वरूप बदल दिया। अब ब्रिटेन को केवल उत्तरी अमेरिका में ही नहीं, बल्कि व्यापक अंतरराष्ट्रीय संघर्ष में भी संसाधन लगाने पड़े।

7.5 यॉर्कटाउन का युद्ध, 1781

1781 में वर्जीनिया के यॉर्कटाउन में ब्रिटिश जनरल लॉर्ड कॉर्नवालिस की सेना अमेरिकी और फ्रांसीसी सेनाओं से घिर गई। फ्रांसीसी नौसेना की सहायता ने ब्रिटिश सेना के लिए बच निकलना कठिन बना दिया।

अक्टूबर 1781 में कॉर्नवालिस ने आत्मसमर्पण कर दिया। यॉर्कटाउन की पराजय ने ब्रिटेन में युद्ध जारी रखने के राजनीतिक समर्थन को कमजोर कर दिया।

हालाँकि इसके बाद भी युद्ध औपचारिक रूप से समाप्त नहीं हुआ, लेकिन यॉर्कटाउन की घटना को अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का निर्णायक सैन्य मोड़ माना जाता है।

7.6 पेरिस की संधि, 1783

3 सितंबर 1783 को ब्रिटेन और अमेरिका के बीच पेरिस की संधि हुई। इस संधि में ब्रिटेन ने संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता को मान्यता दी।

इस संधि के साथ अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का औपचारिक अंत हुआ। अमेरिका को मिसिसिपी नदी तक फैले विस्तृत क्षेत्र में स्वतंत्रता और संप्रभुता की मान्यता मिली।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इस प्रकार, 1776 की स्वतंत्रता की घोषणा से शुरू हुई राजनीतिक प्रक्रिया 1783 की संधि के साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त स्वतंत्र राज्य की स्थापना में परिणत हुई।

8. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक, सामाजिक और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से दिखाई दिए।

8.1 संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का सबसे प्रत्यक्ष परिणाम संयुक्त राज्य अमेरिका का एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उदय था। ब्रिटिश शासन से अलग होकर तेरह उपनिवेशों ने अपनी राजनीतिक संप्रभुता स्थापित की।

पेरिस की संधि, 1783 ने इस स्वतंत्रता को अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्रदान की। इसके साथ उत्तरी अमेरिका में ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के एक महत्त्वपूर्ण भाग का अंत हुआ।

8.2 गणतांत्रिक शासन की स्थापना

अमेरिकी क्रांति ने वंशानुगत राजतंत्र के स्थान पर गणतांत्रिक शासन की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। स्वतंत्रता के बाद अमेरिका में ऐसी व्यवस्था विकसित करने का प्रयास किया गया जिसमें राजनीतिक सत्ता जनता से प्राप्त होती है और निर्वाचित प्रतिनिधि शासन चलाते हैं।

इस विचार ने राजसत्ता की वैधता को वंश या दैवी अधिकार के बजाय जनसहमति से जोड़ने में योगदान दिया।

8.3 परिसंघ के अनुच्छेद और संविधान

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान और उसके बाद नए राष्ट्र को शासन संबंधी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। 1777 में परिसंघ के अनुच्छेद (Articles of Confederation) तैयार किए गए, जो 1781 में प्रभावी हुए।

इस व्यवस्था में केंद्रीय सरकार अपेक्षाकृत कमजोर थी। उसे कर वसूलने और राज्यों के बीच समन्वय स्थापित करने में कठिनाइयाँ आती थीं। इन समस्याओं के कारण अधिक प्रभावी केंद्रीय व्यवस्था की आवश्यकता महसूस हुई।

1787 में फिलाडेल्फिया में संवैधानिक सम्मेलन हुआ। इसके परिणामस्वरूप अमेरिकी संविधान तैयार किया गया, जिसे 1788 में आवश्यक राज्यों द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद 1789 में नई संघीय सरकार के गठन के साथ लागू किया गया।

अमेरिकी संविधान ने संघीय शासन, शक्तियों के विभाजन और नियंत्रण-संतुलन की व्यवस्था स्थापित की। 1791 में अधिकारों का विधेयक (Bill of Rights) अपनाया गया, जिसने संघीय सरकार की शक्तियों पर कुछ महत्त्वपूर्ण संवैधानिक सीमाएँ निर्धारित कीं और नागरिक स्वतंत्रताओं को सुरक्षा प्रदान की।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

8.4 प्राकृतिक अधिकारों और जनसहमति की अवधारणा का प्रसार

अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा ने प्राकृतिक अधिकारों और जनसहमति पर आधारित शासन के सिद्धांतों को व्यापक पहचान दिलाई।

इसने यह विचार मजबूत किया कि सरकार का उद्देश्य नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना है और उसकी शक्ति जनता की सहमति से वैध बनती है।

इन सिद्धांतों ने आगे चलकर उदारवाद, लोकतंत्र और मानवाधिकार संबंधी विचारों के विकास को प्रभावित किया। हालाँकि इन सिद्धांतों का व्यावहारिक विस्तार लंबे समय तक संघर्ष और सामाजिक आंदोलनों पर निर्भर रहा।

8.5 फ्रांसीसी क्रांति पर प्रभाव

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने फ्रांसीसी क्रांति के वैचारिक वातावरण को प्रभावित किया। फ्रांस ने अमेरिकी युद्ध में भाग लेकर ब्रिटेन को कमजोर करने का प्रयास किया, लेकिन इस युद्ध में हुए भारी व्यय ने फ्रांस की वित्तीय समस्याओं को भी बढ़ाया।

अमेरिकी क्रांति के स्वतंत्रता, प्रतिनिधित्व और जनसहमति संबंधी विचारों ने फ्रांस के अनेक राजनीतिक विचारकों और क्रांतिकारियों को प्रेरित किया। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति में इन विचारों का प्रभाव दिखाई देता है।

हालाँकि फ्रांसीसी क्रांति के अपने विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारण थे, इसलिए उसे केवल अमेरिकी क्रांति का परिणाम नहीं माना जा सकता।

8.6 ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने ब्रिटिश साम्राज्य की प्रतिष्ठा को चुनौती दी। तेरह उपनिवेशों का स्वतंत्र होना ब्रिटेन के लिए महत्त्वपूर्ण राजनीतिक और आर्थिक क्षति थी।

इस घटना ने अन्य उपनिवेशों और राजनीतिक आंदोलनों को यह दिखाया कि औपनिवेशिक शासन का विरोध संगठित संघर्ष के माध्यम से किया जा सकता है। आगे चलकर स्वतंत्रता और स्वशासन के विचारों ने विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक आंदोलनों को प्रभावित किया।

8.7 आर्थिक परिवर्तन

स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद अमेरिका को अपनी आर्थिक व्यवस्था विकसित करने का अवसर मिला। व्यापार, कृषि, भूमि विस्तार और घरेलू उद्योग के विकास के लिए नई संभावनाएँ खुलीं।

हालाँकि स्वतंत्रता के बाद भी अमेरिका को युद्ध ऋण, मुद्रा, व्यापार और राज्यों के बीच आर्थिक समन्वय जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा। कमजोर केंद्रीय सरकार के कारण परिसंघ की व्यवस्था में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, जिनके समाधान के लिए नया संविधान बनाया गया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इस प्रकार, स्वतंत्रता ने आर्थिक विकास के अवसर प्रदान किए, लेकिन स्थिर आर्थिक व्यवस्था बनाने के लिए संस्थागत सुधार आवश्यक थे।

8.8 दासप्रथा और समानता की समस्या

अमेरिकी क्रांति का एक बड़ा विरोधाभास यह था कि स्वतंत्रता और समानता के आदर्शों की घोषणा के बावजूद दासप्रथा समाप्त नहीं हुई।

दक्षिणी राज्यों की अर्थव्यवस्था में दास श्रम का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसलिए स्वतंत्रता संग्राम के बाद भी लाखों अफ्रीकी मूल के लोग दासता में रहे। महिलाओं को भी समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हुए।

मूल अमेरिकी समुदायों की भूमि और स्वायत्तता पर भी अमेरिकी विस्तार का नकारात्मक प्रभाव पड़ा। इस प्रकार, क्रांति के आदर्श और सामाजिक वास्तविकताओं के बीच गंभीर अंतर बना रहा।

दासप्रथा के उन्मूलन, महिलाओं के अधिकारों और नस्लीय समानता के लिए आगे चलकर अनेक आंदोलन हुए। अमेरिकी क्रांति ने अधिकारों की भाषा और राजनीतिक सिद्धांत प्रदान किए, लेकिन इन सिद्धांतों को व्यापक रूप से लागू करने का संघर्ष लंबे समय तक जारी रहा।

8.9 महिलाओं की भूमिका और अधिकारों का प्रश्न

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने बहिष्कार आंदोलनों, घरेलू उत्पादन, सैनिकों की सहायता, धन-संग्रह और राजनीतिक संवाद में भाग लिया। फिर भी उन्हें स्वतंत्रता के बाद तत्काल समान राजनीतिक अधिकार नहीं मिले।

अबिगेल एडम्स ने 1776 में अपने पति जॉन एडम्स को लिखे पत्र में नए कानून बनाते समय महिलाओं के हितों की उपेक्षा न करने की बात कही थी। इससे स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता और समानता के प्रश्न पर महिलाओं की राजनीतिक चेतना भी विकसित हो रही थी।

हालाँकि महिलाओं को राष्ट्रीय स्तर पर मतदान का अधिकार बहुत बाद में मिला, लेकिन क्रांति ने अधिकारों और नागरिकता पर होने वाली बहसों को प्रभावित किया।

8.10 अंतरराष्ट्रीय प्रभाव

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने विश्व इतिहास में औपनिवेशिक शासन, संप्रभुता और राजनीतिक स्वतंत्रता के प्रश्नों को नई दिशा दी।

इसने यह प्रदर्शित किया कि उपनिवेश राजनीतिक एकता स्थापित करके एक स्वतंत्र राज्य का निर्माण कर सकते हैं। स्वतंत्रता की घोषणा और अमेरिकी संविधान ने आगे की राजनीतिक व्यवस्थाओं को प्रभावित किया।

फिर भी अमेरिकी क्रांति का प्रभाव अलग-अलग देशों में अलग-अलग रूप में दिखाई दिया। इसे आधुनिक विश्व में गणतंत्रवाद और संवैधानिक शासन के विकास की महत्त्वपूर्ण घटना माना जाता है।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

9. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम की सीमाएँ और आलोचनात्मक मूल्यांकन

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम को केवल स्वतंत्रता और लोकतंत्र की विजय के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। इसके परिणामों का आलोचनात्मक अध्ययन भी आवश्यक है।

पहली सीमा यह थी कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त होने के बावजूद समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार नहीं मिले। दासप्रथा जारी रही और महिलाओं की राजनीतिक स्थिति सीमित रही।

दूसरी सीमा यह थी कि मूल अमेरिकी समुदायों के अधिकारों और भूमि की रक्षा स्वतंत्रता की घोषणा के आदर्शों के अनुरूप नहीं हुई। पश्चिम की ओर अमेरिकी विस्तार ने इन समुदायों पर गंभीर दबाव डाला।

तीसरी सीमा यह थी कि स्वतंत्रता संग्राम के बाद आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता तुरंत स्थापित नहीं हुई। परिसंघ की कमजोर व्यवस्था ने यह स्पष्ट कर दिया कि स्वतंत्रता प्राप्त करना और प्रभावी शासन स्थापित करना दो अलग-अलग चुनौतियाँ हैं।

इसके बावजूद अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का महत्त्व इस बात में है कि उसने राजनीतिक सत्ता की वैधता, नागरिक अधिकारों और जनसहमति पर आधारित शासन के प्रश्नों को विश्व राजनीति के केंद्र में ला दिया।

10. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और फ्रांसीसी क्रांतिः संक्षिप्त तुलना

आधार	अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम	फ्रांसीसी क्रांति
प्रमुख काल	1775–1783	1789 से प्रारंभ
मुख्य संदर्भ	ब्रिटिश उपनिवेशों की स्वतंत्रता	फ्रांस की राजसत्ता और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन
प्रमुख कारण	कराधान, प्रतिनिधित्व का अभाव, औपनिवेशिक नियंत्रण	सामाजिक असमानता, वित्तीय संकट, निरंकुश राजतंत्र और प्रबोधन विचार
प्रमुख दस्तावेज	स्वतंत्रता की घोषणा, 1776	मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा, 1789
प्रमुख परिणाम	संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता	फ्रांसीसी राजसत्ता और सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन
ऐतिहासिक प्रभाव	गणतंत्रवाद, स्वशासन और संवैधानिक शासन को बल	स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों का व्यापक प्रसार

दोनों क्रांतियों ने आधुनिक राजनीतिक इतिहास को प्रभावित किया, लेकिन उनके तत्काल उद्देश्य और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ अलग थीं। अमेरिकी क्रांति का मुख्य लक्ष्य ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करना

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

था, जबकि फ्रांसीसी क्रांति ने अपने देश की राजसत्ता, सामाजिक विशेषाधिकारों और राजनीतिक संस्थाओं को चुनौती दी।

11. निष्कर्ष

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम आधुनिक विश्व इतिहास की एक निर्णायक घटना थी। इसके पीछे ब्रिटिश आर्थिक नियंत्रण, कराधान, राजनीतिक प्रतिनिधित्व का अभाव, उपनिवेशों में विकसित स्वशासन की परंपरा और प्रबोधन विचारधारा जैसे अनेक कारण थे। शुगर एक्ट, स्टाम्प एक्ट, टाउनशेंड एक्ट, बोस्टन नरसंहार, बोस्टन टी पार्टी और असहनीय कानूनों ने ब्रिटिश सरकार तथा उपनिवेशों के बीच संघर्ष को तीव्र किया।

1775 में लेक्सिंगटन और कॉनकॉर्ड की घटनाओं से सशस्त्र संघर्ष शुरू हुआ। 4 जुलाई 1776 को स्वतंत्रता की घोषणा ने उपनिवेशों को एक स्पष्ट राजनीतिक लक्ष्य दिया। जॉर्ज वाशिंगटन के नेतृत्व, साराटोगा की विजय, फ्रांस की सहायता और 1781 के यॉर्कटाउन युद्ध ने अमेरिकी पक्ष की सफलता में योगदान दिया। अंततः 1783 की पेरिस संधि ने संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता को मान्यता दी।

इस क्रांति ने गणतांत्रिक शासन, जनसहमति, प्राकृतिक अधिकारों और संवैधानिक व्यवस्था के विकास को प्रभावित किया। इसके बावजूद दासप्रथा, महिलाओं के अधिकारों की सीमाएँ और मूल अमेरिकी समुदायों के साथ असमान व्यवहार यह दर्शाते हैं कि स्वतंत्रता की घोषणा के आदर्शों को तत्काल पूर्ण रूप से लागू नहीं किया गया था।

समग्र रूप से अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने आधुनिक राजनीतिक चिंतन को नई दिशा दी और स्वतंत्रता, अधिकारों तथा जनसहमति पर आधारित शासन की अवधारणाओं को विश्वव्यापी महत्त्व प्रदान किया। इसी कारण इसे आधुनिक युग की प्रमुख क्रांतियों में गिना जाता है।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

फ्रांसीसी क्रांति (1789): कारण, दार्शनिकों की भूमिका तथा अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक प्रभाव

1. प्रस्तावना

फ्रांसीसी क्रांति (French Revolution) आधुनिक विश्व इतिहास की उन घटनाओं में से है, जिसने यूरोप की राजनीतिक, सामाजिक और वैचारिक व्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया। इसका आरंभ 1789 ई. में हुआ और क्रांतिकारी परिवर्तन 1790 के दशक के अंत तक विभिन्न रूपों में जारी रहे। इस क्रांति ने फ्रांस की निरंकुश राजसत्ता, सामंती विशेषाधिकारों और जन्म पर आधारित सामाजिक विषमता को चुनौती दी।

क्रांति का प्रमुख नारा था— **स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व (Liberty, Equality and Fraternity)**। इन आदर्शों ने नागरिक अधिकारों, कानून के समक्ष समानता, राष्ट्रीय संप्रभुता और जनसहभागिता की अवधारणाओं को लोकप्रिय बनाया। क्रांति के दौरान राजतंत्र कमजोर हुआ, सामंती अधिकारों को समाप्त करने की प्रक्रिया आरंभ हुई और अंततः फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना हुई।

फ्रांसीसी क्रांति को केवल जनता के विद्रोह के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह राजनीतिक निरंकुशता, सामाजिक विशेषाधिकार, आर्थिक संकट और प्रबोधनकालीन विचारों के परस्पर प्रभाव का परिणाम थी। इतिहासकार इसके कारणों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से करते हैं, लेकिन सामान्यतः इन सभी कारकों को क्रांति की पृष्ठभूमि में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। [स्रोतः ब्रिटानिका; स्वानसी विश्वविद्यालय के इतिहास अध्ययन-संसाधन]

2. फ्रांसीसी क्रांति की पृष्ठभूमि

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस यूरोप की प्रमुख शक्तियों में से एक था। उसकी जनसंख्या, कृषि, व्यापार, संस्कृति और बौद्धिक जीवन विकसित थे। फ्रांसीसी भाषा और साहित्य का यूरोप के शिक्षित वर्ग पर व्यापक प्रभाव था। इसके बावजूद फ्रांसीसी राज्य गंभीर वित्तीय संकट से जूझ रहा था और उसकी राजनीतिक संस्थाएँ समाज में उभर रही नई आकांक्षाओं के अनुरूप परिवर्तन करने में असफल हो रही थीं।

फ्रांस में लुई सोलहवें का शासन था। राजा के पास व्यापक अधिकार थे, जबकि शासन में आम जनता की भागीदारी सीमित थी। समाज तीन वर्गों या एस्टेट्स में विभाजित था—पादरी वर्ग, कुलीन वर्ग और तृतीय वर्ग। पहले दो वर्गों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि तृतीय वर्ग पर करों का बड़ा बोझ पड़ता था।

इस व्यवस्था में व्यापारी, वकील, शिक्षित पेशेवर, कारीगर और किसान शामिल थे। इन सभी की आर्थिक स्थिति समान नहीं थी, लेकिन राजनीतिक विशेषाधिकारों के प्रश्न पर उनमें असंतोष के अनेक साझा आधार थे। वित्तीय संकट, महँगाई और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की समस्या ने इस असंतोष को क्रांतिकारी आंदोलन में बदलने में सहायता की।

3. फ्रांसीसी क्रांति के राजनीतिक कारण

3.1 निरंकुश राजतंत्र

Dr RAkesh Mohan Nautiyal

क्रांति से पहले फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र प्रचलित था। राजा को शासन, प्रशासन और विदेश नीति के क्षेत्र में व्यापक अधिकार प्राप्त थे। फ्रांस में प्रतिनिधिक संस्थाओं की भूमिका सीमित थी और राष्ट्रीय स्तर पर एस्टेट्स जनरल की बैठक 1614 के बाद लंबे समय तक नहीं हुई थी, जब तक कि इसे 1789 में पुनः नहीं बुलाया गया।

लुई सोलहवें के शासनकाल में प्रशासनिक सुधारों की आवश्यकता स्पष्ट थी, लेकिन राजसत्ता और विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के बीच टकराव के कारण व्यापक सुधार लागू नहीं हो सके। इससे राजतंत्र की विश्वसनीयता कमजोर हुई।

3.2 राजा लुई सोलहवें की कमजोरियाँ

लुई सोलहवें के सामने वित्तीय संकट और प्रशासनिक सुधारों की बड़ी चुनौतियाँ थीं। वह विभिन्न वर्गों के हितों में संतुलन स्थापित करने और आवश्यक कर-सुधार लागू करने में सफल नहीं हो पाया।

वित्तमंत्रियों ने राजस्व बढ़ाने और कर-व्यवस्था में सुधार करने के अनेक प्रयास किए, लेकिन विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के विरोध ने उन्हें बाधित किया। इससे राजतंत्र की निर्णय लेने की क्षमता पर प्रश्न उठने लगे।

हालाँकि क्रांति का कारण केवल राजा का व्यक्तिगत नेतृत्व नहीं था। राज्य की वित्तीय संरचना, सामाजिक विषमता और राजनीतिक संस्थाओं की कमजोरियाँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण थीं।

3.3 एस्टेट्स जनरल का आह्वान

वित्तीय संकट के समाधान के लिए लुई सोलहवें ने 1789 में एस्टेट्स जनरल (Estates-General) की बैठक बुलाई। इसमें तीनों वर्गों के प्रतिनिधि शामिल हुए—

1. प्रथम एस्टेट—पादरी वर्ग।
2. द्वितीय एस्टेट—कुलीन वर्ग।
3. तृतीय एस्टेट—सामान्य जनता के प्रतिनिधि।

विवाद इस बात पर उत्पन्न हुआ कि मतदान प्रत्येक वर्ग के आधार पर होगा या प्रत्येक प्रतिनिधि के आधार पर। यदि प्रत्येक वर्ग को एक मत मिलता, तो प्रथम और द्वितीय एस्टेट मिलकर तृतीय एस्टेट के प्रस्तावों को रोक सकते थे।

तृतीय एस्टेट के प्रतिनिधियों ने अपनी संख्या और जनता के व्यापक प्रतिनिधित्व के आधार पर अधिक प्रभावी राजनीतिक भूमिका की माँग की। 17 जून 1789 को उन्होंने स्वयं को राष्ट्रीय सभा घोषित कर दिया। इस घटना ने राजसत्ता की पारंपरिक वैधता को चुनौती दी।

3.4 टेनिस कोर्ट शपथ

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

20 जून 1789 को राष्ट्रीय सभा के प्रतिनिधियों ने टेनिस कोर्ट शपथ (Tennis Court Oath) ली। उन्होंने संकल्प किया कि जब तक फ्रांस के लिए संविधान तैयार नहीं हो जाता, वे अलग नहीं होंगे।

इस घटना ने यह सिद्धांत स्थापित करने की दिशा में कदम बढ़ाया कि राज्य की राजनीतिक व्यवस्था केवल राजा की इच्छा से नहीं, बल्कि राष्ट्र के प्रतिनिधियों की भागीदारी से भी निर्धारित होनी चाहिए।

3.5 बास्तील का पतन

14 जुलाई 1789 को पेरिस की जनता ने बास्तील के किले और कारागार पर आक्रमण किया। बास्तील राजकीय निरंकुशता का प्रतीक बन चुका था। जनता को आशंका थी कि राजा क्रांतिकारी प्रतिनिधियों के विरुद्ध सेना का प्रयोग कर सकता है और हथियारों की आवश्यकता भी महसूस की जा रही थी।

बास्तील के पतन ने क्रांति को जनआंदोलन का व्यापक स्वरूप प्रदान किया। आज 14 जुलाई फ्रांस का राष्ट्रीय दिवस है। यह घटना राजसत्ता के विरुद्ध जनप्रतिरोध का प्रतीक बन गई।

4. फ्रांसीसी क्रांति के सामाजिक कारण

4.1 तीन वर्गों में विभाजित समाज

क्रांति से पहले फ्रांसीसी समाज में जन्म और सामाजिक स्थिति के आधार पर असमानता विद्यमान थी। समाज के तीन एस्टेट्स के अधिकार और दायित्व समान नहीं थे।

प्रथम एस्टेट—पादरी वर्ग: चर्च धार्मिक जीवन के साथ-साथ शिक्षा, सामाजिक सहायता और भूमि-स्वामित्व में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। चर्च को कुछ करों से छूट प्राप्त थी और वह किसानों से दशमांश (Tithe) वसूलता था।

द्वितीय एस्टेट—कुलीन वर्ग: कुलीनों को भूमि, सामाजिक प्रतिष्ठा और अनेक पारंपरिक विशेषाधिकार प्राप्त थे। उनमें से कई को प्रमुख करों से छूट मिलती थी और वे प्रशासन तथा सेना में प्रभावशाली पदों पर रहते थे।

तृतीय एस्टेट—सामान्य जनता: इसमें किसान, मजदूर, कारीगर, व्यापारी, वकील और अन्य पेशेवर शामिल थे। इस वर्ग की आर्थिक स्थिति एक जैसी नहीं थी, लेकिन इसे विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की तुलना में अधिक करों और सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता था।

इस असमान व्यवस्था ने समाज में व्यापक असंतोष उत्पन्न किया।

4.2 सामंती व्यवस्था और किसानों की स्थिति

फ्रांसीसी किसानों को विभिन्न प्रकार के करों, सामंती देयों और चर्च के दशमांश का भुगतान करना पड़ता था। कुछ क्षेत्रों में किसानों पर श्रम-संबंधी दायित्व भी लागू थे।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

खराब फसल, महँगाई और करों के बोझ ने उनकी स्थिति को कठिन बना दिया। किसान सामंती देयों और विशेषाधिकारों को समाप्त करना चाहते थे। 1789 में ग्रामीण क्षेत्रों में फैले विद्रोहों ने सामंती व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन को मजबूत किया।

4 अगस्त 1789 को राष्ट्रीय संविधान सभा ने सामंती विशेषाधिकारों को समाप्त करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए। इन निर्णयों ने फ्रांस की पारंपरिक सामाजिक संरचना को बदलने की प्रक्रिया आरंभ की।

4.3 मध्यवर्ग का उदय

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस में व्यापारी, उद्योगपति, वकील, चिकित्सक और शिक्षित पेशेवरों का एक प्रभावशाली मध्यवर्ग विकसित हुआ। इसे सामान्यतः बुर्जुआ वर्ग (Bourgeoisie) कहा जाता है।

इस वर्ग के पास आर्थिक संसाधन और शिक्षा तो थी, लेकिन उच्च प्रशासनिक पदों और राजनीतिक निर्णयों में उसकी भागीदारी सीमित थी। अनेक मध्यवर्गीय लोग जन्म पर आधारित विशेषाधिकारों के बजाय योग्यता और कानून के समक्ष समानता चाहते थे।

मध्यवर्ग ने प्रबोधनकालीन विचारों को अपनाया और राजनीतिक सुधारों की माँग की। उसने क्रांति के वैचारिक और संगठनात्मक विकास में भूमिका निभाई।

4.4 महिलाओं की स्थिति

फ्रांसीसी समाज में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सीमित थी। उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर समान मतदान अधिकार प्राप्त नहीं थे और कानूनी तथा सामाजिक जीवन में भी अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता था।

अक्टूबर 1789 में पेरिस की महिलाओं ने रोटी की कमी और बढ़ती कीमतों के विरोध में वर्साय तक मार्च किया। इस आंदोलन ने खाद्य संकट को राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में ला दिया और शाही परिवार को पेरिस स्थानांतरित करने में भूमिका निभाई।

क्रांति ने महिलाओं की नागरिकता और राजनीतिक अधिकारों पर बहस को प्रोत्साहित किया, लेकिन उन्हें तत्काल समान राजनीतिक अधिकार नहीं मिले। ओलांप द गूज ने 1791 में *महिला और महिला नागरिक के अधिकारों की घोषणा* प्रस्तुत कर इस असमानता को चुनौती दी।

5. फ्रांसीसी क्रांति के आर्थिक कारण

5.1 राजकोषीय संकट

फ्रांस की सरकार पर लंबे समय से भारी ऋण था। अनेक यूरोपीय युद्धों, शाही खर्च और अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में फ्रांसीसी सहायता ने सरकारी वित्त पर दबाव बढ़ाया।

सरकार को ऋण चुकाने और प्रशासन चलाने के लिए अधिक राजस्व की आवश्यकता थी। लेकिन कर-व्यवस्था असमान थी और विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों पर प्रभावी कर लगाना कठिन था।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

जब वित्तीय सुधारों के प्रयासों का विरोध हुआ, तो राजसत्ता की आर्थिक समस्या राजनीतिक संकट में बदल गई।

5.2 असमान कर-व्यवस्था

फ्रांस में करों का भार मुख्यतः तृतीय एस्टेट पर पड़ता था। किसानों को भूमि-संबंधी करों, सामंती देयों और चर्च के दशमांश का भुगतान करना पड़ सकता था। इसके विपरीत, पादरी और कुलीन वर्ग को अनेक करों से छूट या विशेष रियायतें प्राप्त थीं।

इस व्यवस्था से यह भावना मजबूत हुई कि राज्य के आर्थिक दायित्वों का वितरण न्यायसंगत नहीं है। कर-सुधार की माँग इसलिए क्रांति के प्रमुख कारणों में शामिल थी।

5.3 महँगाई और खाद्य संकट

1788 में खराब फसल और प्रतिकूल मौसम ने कृषि उत्पादन को प्रभावित किया। रोटी फ्रांस के सामान्य लोगों के भोजन का प्रमुख हिस्सा थी, इसलिए गेहूँ की कमी और रोटी की बढ़ती कीमतों का व्यापक प्रभाव पड़ा।

शहरी मजदूरों और गरीब परिवारों के लिए भोजन खरीदना कठिन हो गया। बेरोजगारी, महँगाई और खाद्य संकट ने जनता के असंतोष को बढ़ाया।

इस प्रकार, आर्थिक संकट ने राजनीतिक विरोध को जनआंदोलन में बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5.4 अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव

फ्रांस ने ब्रिटेन के विरुद्ध अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में सैनिक, नौसैनिक और आर्थिक सहायता दी। इससे फ्रांस को ब्रिटेन को चुनौती देने का अवसर मिला, लेकिन युद्ध में हुए व्यय ने पहले से मौजूद वित्तीय संकट को गंभीर बनाया।

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने फ्रांसीसी जनता और शिक्षित वर्ग के सामने स्वतंत्रता, प्रतिनिधित्व तथा गणतांत्रिक शासन के विचारों का व्यावहारिक उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

इस प्रकार, अमेरिकी क्रांति का प्रभाव दो स्तरों पर था—एक ओर उसने फ्रांस के वित्तीय संकट में योगदान दिया, दूसरी ओर उसने राजनीतिक स्वतंत्रता के विचारों को प्रेरणा प्रदान की।

6. दार्शनिकों की भूमिका

फ्रांसीसी क्रांति के वैचारिक विकास में प्रबोधनकालीन दार्शनिकों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने निरंकुश सत्ता, सामाजिक विशेषाधिकार और परंपरागत संस्थाओं की आलोचना की। उनके विचारों ने स्वतंत्रता, समानता, प्राकृतिक अधिकार, जनसहमति और विवेकपूर्ण शासन की अवधारणाओं को लोकप्रिय बनाया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि दार्शनिकों के विचारों ने अकेले क्रांति उत्पन्न नहीं की। आर्थिक और राजनीतिक संकटों ने उन विचारों को जनसमर्थन और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की परिस्थितियाँ प्रदान कीं।

6.1 जॉन लॉक

जॉन लॉक अंग्रेज दार्शनिक थे, फ्रांसीसी दार्शनिक नहीं; फिर भी उनके विचारों का फ्रांसीसी प्रबोधन पर प्रभाव पड़ा।

लॉक ने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति को प्राकृतिक अधिकारों के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार सरकार का उद्देश्य इन अधिकारों की रक्षा करना है। यदि सरकार जनता के अधिकारों का उल्लंघन करती है, तो उसे बदलने का अधिकार जनता को है।

इन विचारों ने निरंकुश राजसत्ता की वैधता पर प्रश्न उठाने और जनसहमति पर आधारित शासन की अवधारणा को बल दिया।

6.2 मॉन्टेस्क्यू

मॉन्टेस्क्यू की प्रसिद्ध पुस्तक *द स्पिरिट ऑफ लॉज़* (The Spirit of the Laws, 1748) में शासन की संरचना और राजनीतिक स्वतंत्रता का विश्लेषण किया गया।

उन्होंने विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों को अलग रखने की अवधारणा का समर्थन किया। उनके विचार में सत्ता का केंद्रीकरण निरंकुशता का खतरा पैदा करता है, जबकि शक्तियों का विभाजन राजनीतिक स्वतंत्रता की रक्षा में सहायक होता है।

मॉन्टेस्क्यू के विचारों ने संवैधानिक शासन और संस्थागत नियंत्रण की बहस को प्रभावित किया।

6.3 वोल्तेयर

वोल्तेयर ने धार्मिक असहिष्णुता, अंधविश्वास, सेंसरशिप और संस्थागत दमन की आलोचना की। उन्होंने विवेक, विचार की स्वतंत्रता और धार्मिक सहिष्णुता का समर्थन किया।

उनकी रचनाओं ने फ्रांसीसी समाज में स्थापित धार्मिक और राजनीतिक संस्थाओं पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया। उन्होंने निरंकुशता और असहिष्णुता के विरुद्ध बौद्धिक वातावरण तैयार करने में भूमिका निभाई।

हालाँकि वोल्तेयर को आधुनिक सार्वभौमिक लोकतंत्र का पूर्ण समर्थक मानना उचित नहीं होगा; उनकी राजनीतिक प्राथमिकताएँ अन्य प्रबोधन विचारकों से कुछ अलग थीं।

6.4 जाँ-जाक रूसो

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

जाँ-जाक रूसो फ्रांसीसी क्रांति के वैचारिक इतिहास में विशेष महत्त्व रखते हैं। उनकी पुस्तक *द सोशल कॉन्ट्रैक्ट* (The Social Contract, 1762) में जनसत्ता और सामान्य इच्छा (General Will) की अवधारणा प्रस्तुत की गई।

रूसो के अनुसार वैध राजनीतिक व्यवस्था का आधार जनता की सामूहिक संप्रभुता होना चाहिए। सत्ता का वास्तविक स्रोत जनता है, न कि राजा का वंश या दैवी अधिकार।

उनका प्रसिद्ध विचार "मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है, लेकिन हर जगह जंजीरों में जकड़ा है" सामाजिक और राजनीतिक असमानता की आलोचना के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

रूसो के विचारों ने जनसत्ता, नागरिक समानता और गणतांत्रिक राजनीति के विकास को प्रभावित किया।

6.5 दिदरो और विश्वकोश आंदोलन

देनिस दिदरो ने जाँ ले रों द'आलेम्बेयर सहित अन्य विद्वानों के सहयोग से *एन्साइक्लोपीडी* (Encyclopédie) के प्रकाशन में प्रमुख भूमिका निभाई। इस परियोजना का उद्देश्य ज्ञान की विभिन्न शाखाओं को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना था।

विश्वकोश आंदोलन ने विज्ञान, तर्क, तकनीक और सामाजिक संस्थाओं पर आलोचनात्मक विचारों के प्रसार में योगदान दिया। इसने ज्ञान को केवल पारंपरिक धार्मिक या राजकीय प्राधिकार तक सीमित न रखने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया।

6.6 दार्शनिकों के विचारों का संयुक्त प्रभाव

इन विचारकों के योगदान को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

- लॉक ने प्राकृतिक अधिकारों और जनसहमति पर आधारित शासन को वैचारिक आधार दिया।
- मॉन्टेस्क्यू ने शक्तियों के विभाजन और संवैधानिक नियंत्रण पर बल दिया।
- वोल्तेयर ने धार्मिक सहिष्णुता तथा विचार की स्वतंत्रता की वकालत की।
- रूसो ने जनसत्ता और सामान्य इच्छा की अवधारणा को विकसित किया।
- दिदरो और विश्वकोश आंदोलन ने ज्ञान, तर्क और संस्थागत आलोचना के प्रसार में सहायता की।

इन विचारों ने क्रांति के दौरान राजनीतिक परिवर्तन की भाषा उपलब्ध कराई। फिर भी क्रांति के अलग-अलग चरणों में इन विचारों की व्याख्या और उनका उपयोग भिन्न-भिन्न रहा।

7. फ्रांसीसी क्रांति की प्रमुख घटनाएँ

क्रांति के कारणों को समझने के साथ उसकी प्रमुख घटनाओं को क्रमबद्ध रूप से जानना आवश्यक है।

7.1 एस्टेट्स जनरल और राष्ट्रीय सभा, 1789

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

5 मई 1789 को एस्टेट्स जनरल की बैठक हुई। मतदान के प्रश्न पर विवाद के बाद तृतीय एस्टेट ने 17 जून को स्वयं को राष्ट्रीय सभा घोषित किया। 20 जून को टेनिस कोर्ट शपथ ली गई।

इन घटनाओं ने प्रतिनिधित्व और राष्ट्रीय संप्रभुता के सिद्धांत को बल दिया।

7.2 बास्तील का पतन, 14 जुलाई 1789

पेरिस की जनता ने बास्तील पर आक्रमण कर राजसत्ता के प्रतीक को चुनौती दी। इस घटना ने क्रांति को जनआंदोलन का रूप दिया और राजतंत्र की राजनीतिक स्थिति कमजोर कर दी।

7.3 सामंती विशेषाधिकारों का उन्मूलन

4 अगस्त 1789 को राष्ट्रीय संविधान सभा ने सामंती विशेषाधिकारों को समाप्त करने की दिशा में निर्णय लिए। इसके बाद सामंती व्यवस्था को कानूनी रूप से बदलने की प्रक्रिया आगे बढ़ी।

7.4 मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा

26 अगस्त 1789 को मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा (Declaration of the Rights of Man and of the Citizen) को स्वीकार किया गया। इसमें स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा, उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध, कानून के समक्ष समानता और राष्ट्रीय संप्रभुता जैसे सिद्धांत प्रस्तुत किए गए।

इस घोषणा ने क्रांति को एक स्पष्ट वैचारिक और संवैधानिक आधार प्रदान किया। [स्रोत: फ्रांसीसी राष्ट्रीय सभा; फ्रांस के राष्ट्रपति का आधिकारिक संस्थागत इतिहास]

7.5 राजतंत्र का अंत और गणतंत्र की स्थापना

1791 में फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र स्थापित हुआ, लेकिन राजा और क्रांतिकारी शक्तियों के बीच तनाव बना रहा। 1792 में राजतंत्र निलंबित हुआ और सितंबर 1792 में राष्ट्रीय सम्मेलन ने गणतंत्र की स्थापना की घोषणा की।

जनवरी 1793 में लुई सोलहवें को मृत्युदंड दिया गया। इसके बाद क्रांति अधिक उग्र चरण में पहुँची और आंतरिक संघर्षों तथा विदेशी युद्धों ने राजनीतिक स्थिति को जटिल बना दिया।

7.6 आतंक का शासन और नेपोलियन का उदय

1793–1794 के दौरान आतंक के शासन (Reign of Terror) में क्रांतिकारी सरकार ने विरोधियों के विरुद्ध कठोर दमनकारी उपाय अपनाए। रोबेस्पियर और जैकोबिन समूह इस चरण में प्रभावशाली थे। जुलाई 1794 में रोबेस्पियर के पतन के बाद आतंक का प्रमुख चरण समाप्त हुआ।

1795 में डायरेक्टरी शासन स्थापित हुआ, लेकिन राजनीतिक अस्थिरता बनी रही। 9 नवंबर 1799 (18 ब्रूमेयर) को नेपोलियन बोनापार्ट के तख्तापलट ने डायरेक्टरी का अंत कर दिया। इसे प्रायः फ्रांसीसी क्रांति के पारंपरिक कालखंड का समापन माना जाता है।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

8. फ्रांसीसी क्रांति के अल्पकालिक प्रभाव

अल्पकालिक प्रभाव वे परिवर्तन हैं जो क्रांति के आरंभिक वर्षों और लगभग एक दशक के भीतर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दिए।

8.1 निरंकुश राजतंत्र का अंत

क्रांति ने लुई सोलहवें की निरंकुश सत्ता को चुनौती दी। 1791 में संवैधानिक राजतंत्र स्थापित हुआ, लेकिन यह व्यवस्था अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकी। 1792 में राजतंत्र का अंत हुआ और गणतंत्र स्थापित हुआ।

यह परिवर्तन फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था में एक बड़ा मोड़ था।

8.2 सामंती व्यवस्था पर प्रहार

अगस्त 1789 में सामंती विशेषाधिकारों के उन्मूलन से जन्म पर आधारित कई पारंपरिक अधिकारों को चुनौती मिली। किसानों पर सामंती देयों और दायित्वों की व्यवस्था बदलने की प्रक्रिया आरंभ हुई।

इससे कानूनी समानता और नागरिक अधिकारों की दिशा में परिवर्तन हुआ, यद्यपि ग्रामीण संपत्ति और आर्थिक संबंधों में बदलाव तत्काल और सर्वत्र समान नहीं था।

8.3 अधिकारों की घोषणा और नागरिकता

1789 की अधिकारों की घोषणा ने स्वतंत्रता, समानता और राष्ट्रीय संप्रभुता को राजनीतिक व्यवस्था के केंद्रीय सिद्धांतों के रूप में प्रस्तुत किया।

इसने नागरिकों के अधिकारों तथा सरकार की वैधता के प्रश्न को नई दिशा दी। कानून के समक्ष समानता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे सिद्धांत आगे के संवैधानिक विकास में प्रभावशाली रहे।

8.4 चर्च और राज्य के संबंधों में परिवर्तन

क्रांतिकारी सरकार ने चर्च की संपत्तियों और उसकी संस्थागत स्थिति में व्यापक परिवर्तन किए। 1790 के नागरिक पादरी संविधान (Civil Constitution of the Clergy) ने चर्च के संगठन को राज्य के नियंत्रण में लाने का प्रयास किया।

इससे धार्मिक संस्थाओं और क्रांतिकारी राज्य के बीच गंभीर संघर्ष उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप धार्मिक जीवन और राजनीति के संबंधों में गहरा परिवर्तन आया।

8.5 राजनीतिक अस्थिरता और हिंसा

क्रांति के दौरान विभिन्न राजनीतिक गुटों के बीच संघर्ष, विदेशी युद्ध और आंतरिक विद्रोह हुए। आतंक के शासन में हजारों लोगों को मृत्युदंड दिया गया और व्यापक दमनकारी कार्रवाई हुई।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

इससे स्पष्ट हुआ कि स्वतंत्रता और समानता की स्थापना की प्रक्रिया राजनीतिक हिंसा तथा सत्ता-संघर्ष से भी प्रभावित हुई।

8.6 प्रशासनिक और कानूनी परिवर्तन

क्रांतिकारी सरकार ने प्रशासनिक संरचना, स्थानीय शासन और कानूनों में परिवर्तन किए। पुराने प्रांतीय विशेषाधिकारों के स्थान पर अधिक समान प्रशासनिक व्यवस्था विकसित करने का प्रयास हुआ।

इन सुधारों का उद्देश्य राज्य को अधिक एकीकृत बनाना और कानूनों तथा संस्थाओं को नए राजनीतिक सिद्धांतों के अनुरूप ढालना था।

9. फ्रांसीसी क्रांति के दीर्घकालिक प्रभाव

दीर्घकालिक प्रभाव वे परिवर्तन हैं जो फ्रांस, यूरोप और विश्व के राजनीतिक तथा सामाजिक विकास पर लंबे समय तक दिखाई दिए।

9.1 आधुनिक नागरिकता और समानता का विचार

फ्रांसीसी क्रांति ने नागरिकता को जन्म, वंश और सामंती विशेषाधिकारों के बजाय कानून तथा राष्ट्र से जोड़ने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत आगे चलकर अनेक संवैधानिक व्यवस्थाओं का आधार बना। हालांकि सामाजिक और आर्थिक समानता स्वतः स्थापित नहीं हुई, फिर भी समान नागरिक अधिकारों का विचार अधिक व्यापक हुआ।

9.2 राष्ट्रवाद का विकास

क्रांति ने राष्ट्रीय संप्रभुता की अवधारणा को बल दिया। राष्ट्र को केवल राजा की संपत्ति मानने के बजाय जनता के राजनीतिक समुदाय के रूप में देखने की प्रवृत्ति मजबूत हुई।

क्रांतिकारी युद्धों और नेपोलियन के अभियानों के दौरान राष्ट्रवाद यूरोप के अनेक क्षेत्रों में फैला। विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रभाव अलग-अलग रहा—कहीं इसने राष्ट्रीय एकता को प्रेरित किया, तो कहीं विदेशी प्रभुत्व के विरुद्ध प्रतिरोध को बढ़ावा दिया।

9.3 उदारवाद और संवैधानिक शासन

क्रांति ने स्वतंत्रता, कानून के समक्ष समानता, नागरिक अधिकारों और प्रतिनिधिक शासन की अवधारणाओं को व्यापक प्रभाव प्रदान किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के अनेक उदारवादी आंदोलनों ने इन सिद्धांतों से प्रेरणा ली। संविधान, नागरिक स्वतंत्रता और राजनीतिक भागीदारी की माँगों में फ्रांसीसी क्रांति की विरासत दिखाई देती है।

9.4 सामंतवाद और विशेषाधिकारों का क्षरण

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

क्रांति ने फ्रांस में सामंती विशेषाधिकारों के उन्मूलन की प्रक्रिया को गति दी। नेपोलियन काल में कानूनों के एकीकरण और नागरिक कानून के संहिताकरण ने इन परिवर्तनों को संस्थागत रूप देने में भूमिका निभाई।

नेपोलियन की विधिक व्यवस्था ने संपत्ति और नागरिक कानून से संबंधित अनेक सिद्धांतों को व्यवस्थित किया। हालांकि उसका शासन राजनीतिक रूप से निरंकुश भी था और उसने महिलाओं के कानूनी अधिकारों को सीमित रखा। इसलिए नेपोलियन के सुधारों को क्रांति के आदर्शों की निरंतरता और उनकी सीमाओं—दोनों के संदर्भ में समझना चाहिए।

9.5 यूरोप के राजनीतिक मानचित्र पर प्रभाव

फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन के युद्धों ने यूरोप की राजनीतिक सीमाओं, प्रशासनिक व्यवस्थाओं और राजवंशीय सत्ता को प्रभावित किया। अनेक पुराने राजनीतिक ढाँचे कमजोर हुए और यूरोप में नई राष्ट्रीय तथा संवैधानिक आकांक्षाएँ विकसित हुईं।

1815 की वियना कांग्रेस ने क्रांतिकारी और नेपोलियनकालीन परिवर्तनों के बाद यूरोप में राजवंशीय व्यवस्था तथा शक्ति-संतुलन को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। इसके बावजूद स्वतंत्रता, राष्ट्रवाद और उदारवाद के विचार पूरी तरह समाप्त नहीं हुए।

9.6 विश्व के स्वतंत्रता आंदोलनों पर प्रभाव

फ्रांसीसी क्रांति के विचारों ने यूरोप और लैटिन अमेरिका सहित अनेक क्षेत्रों के राजनीतिक आंदोलनों को प्रभावित किया। स्वतंत्रता, नागरिक समानता और राष्ट्रीय संप्रभुता की अवधारणाएँ विभिन्न देशों में अलग-अलग रूपों में अपनाई गईं।

हालाँकि प्रत्येक आंदोलन की अपनी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ थीं, फिर भी फ्रांसीसी क्रांति ने आधुनिक राजनीतिक परिवर्तन की भाषा और प्रतीक प्रदान किए।

9.7 लोकतंत्र और मानवाधिकारों की अवधारणा

क्रांति ने अधिकारों की घोषणा और नागरिक स्वतंत्रताओं को राजनीतिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाया। 1789 की घोषणा ने बाद के मानवाधिकार दस्तावेजों और संवैधानिक विचारों को प्रभावित किया।

फिर भी उस समय महिलाओं को समान राजनीतिक अधिकार नहीं मिले और दासप्रथा का प्रश्न जटिल बना रहा। फ्रांसीसी उपनिवेशों में दासप्रथा के उन्मूलन की प्रक्रिया क्रांति से जुड़ी, लेकिन उसमें अनेक उतार-चढ़ाव आए; 1794 में राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रांसीसी उपनिवेशों में दासप्रथा समाप्त करने का निर्णय लिया, जबकि नेपोलियन के शासन में 1802 में कई उपनिवेशों में इसे फिर से लागू किया गया।

इससे स्पष्ट होता है कि अधिकारों के सार्वभौमिक आदर्श और उनके वास्तविक कार्यान्वयन के बीच गहरा अंतर बना रहा।

10. फ्रांसीसी क्रांति का आलोचनात्मक मूल्यांकन

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

फ्रांसीसी क्रांति का मूल्यांकन करते समय उसकी उपलब्धियों और सीमाओं दोनों पर ध्यान देना चाहिए।

उपलब्धियाँ:

- निरंकुश राजतंत्र और सामंती विशेषाधिकारों को चुनौती मिली।
- कानून के समक्ष समानता तथा नागरिक अधिकारों की अवधारणा मजबूत हुई।
- राष्ट्रीय संप्रभुता और जनसत्ता के विचारों का प्रसार हुआ।
- आधुनिक राष्ट्रवाद, उदारवाद और संवैधानिक शासन के विकास को प्रेरणा मिली।
- यूरोप में राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तेज हुई।

सीमाएँ:

- क्रांति के दौरान व्यापक राजनीतिक हिंसा और दमन हुआ।
- राजनीतिक गुटों के बीच संघर्ष ने स्थिर शासन की स्थापना कठिन बनाई।
- महिलाओं को तत्काल समान राजनीतिक अधिकार नहीं मिले।
- दासप्रथा और औपनिवेशिक असमानताओं का प्रश्न लंबे समय तक बना रहा।
- क्रांति के बाद नेपोलियन के शासन में सत्ता का केंद्रीकरण हुआ और साम्राज्यवादी युद्ध जारी रहे।

इस प्रकार, फ्रांसीसी क्रांति को न तो केवल आदर्शों की विजय के रूप में और न ही केवल हिंसक उथल-पुथल के रूप में समझना चाहिए। यह एक जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जिसमें स्वतंत्रता और समानता की आकांक्षाओं के साथ सत्ता-संघर्ष, युद्ध और सामाजिक सीमाएँ भी मौजूद थीं।

11. निष्कर्ष

फ्रांसीसी क्रांति 1789 आधुनिक इतिहास की ऐसी घटना थी जिसने यूरोप की पारंपरिक राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी। इसके राजनीतिक कारणों में निरंकुश राजतंत्र और प्रतिनिधित्व का अभाव, सामाजिक कारणों में तीन एस्टेट्स की असमानता और सामंती विशेषाधिकार, तथा आर्थिक कारणों में राजकोषीय संकट, असमान कर-व्यवस्था और खाद्य संकट प्रमुख थे। प्रबोधनकालीन दार्शनिकों ने इन समस्याओं की आलोचना के लिए वैचारिक आधार उपलब्ध कराया।

1789 की अधिकारों की घोषणा, सामंती विशेषाधिकारों के उन्मूलन और राजतंत्र के अंत ने फ्रांस की राजनीतिक संरचना को बदल दिया। अल्पकाल में क्रांति ने राजसत्ता के पतन, गणतंत्र की स्थापना और प्रशासनिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया, लेकिन इसके साथ राजनीतिक हिंसा और अस्थिरता भी आई।

दीर्घकाल में इस क्रांति ने राष्ट्रवाद, उदारवाद, नागरिक समानता, संवैधानिक शासन और मानवाधिकारों की अवधारणाओं को प्रभावित किया। इसके आदर्शों को व्यवहार में लागू करने की प्रक्रिया लंबी और विवादपूर्ण

Dr Rakesh Mohan Nautiyal

रही, लेकिन आधुनिक विश्व की राजनीतिक शब्दावली और संस्थागत विकास में इसका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

Dr. RAkesh Mohan NautiyaL

नेपोलियन बोनापार्ट: प्रारम्भिक जीवन, सैन्य विजय, प्रथम कॉन्सुल के रूप में उपलब्धियाँ, कॉन्टिनेंटल सिस्टम तथा पतन के कारण

1. प्रस्तावना

नेपोलियन बोनापार्ट (1769–1821) फ्रांस का प्रसिद्ध सेनापति, कुशल प्रशासक तथा सम्राट था। फ्रांसीसी क्रांति (1789) के बाद फ्रांस में उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता ने उसके उत्थान के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान कीं। उसने अपनी सैन्य प्रतिभा और राजनीतिक कौशल के बल पर 1799 में सत्ता प्राप्त की। 1799 से 1804 तक वह फ्रांस का प्रथम कॉन्सुल रहा और 1804 में स्वयं को फ्रांस का सम्राट घोषित किया।

नेपोलियन ने फ्रांस में प्रशासनिक केंद्रीकरण, कानूनी सुधार, शिक्षा व्यवस्था के पुनर्गठन तथा आर्थिक स्थिरता की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। दूसरी ओर, यूरोप में साम्राज्य विस्तार की उसकी नीति, ब्रिटेन के विरुद्ध कॉन्टिनेंटल सिस्टम और रूस पर आक्रमण ने उसके साम्राज्य को संकट में डाल दिया। 1815 में वाटरलू की पराजय के बाद उसका राजनीतिक जीवन समाप्त हो गया।

2. नेपोलियन का प्रारम्भिक जीवन

(क) जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि

नेपोलियन का जन्म 15 अगस्त 1769 को भूमध्यसागर में स्थित कोर्सिका द्वीप के अजाचियो नगर में हुआ था। उसके पिता कार्लो बोनापार्ट और माता लेतीजिया रामोलिनो थीं। उसका परिवार स्थानीय कुलीन वर्ग से संबंधित था, लेकिन अत्यधिक संपन्न नहीं था। 1768 में कोर्सिका फ्रांस के नियंत्रण में आ गया था, इसलिए नेपोलियन का जन्म ऐसे समय हुआ जब द्वीप की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हो रहा था।

(ख) शिक्षा और सैन्य प्रशिक्षण

नेपोलियन ने फ्रांस में शिक्षा प्राप्त की। उसने ब्रिएन के सैन्य विद्यालय तथा पेरिस के École Militaire में अध्ययन किया। 1785 में उसने तोपखाना अधिकारी के रूप में अपना सैन्य जीवन प्रारम्भ किया। गणित, भूगोल और सैन्य रणनीति में उसकी विशेष रुचि थी। तोपखाने के तकनीकी ज्ञान ने आगे चलकर उसकी सैन्य सफलताओं में योगदान दिया।

(ग) फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव

1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने फ्रांस की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था को बदल दिया। राजतंत्र की शक्ति कमजोर हुई तथा सेना में प्रतिभा और योग्यता के आधार पर उन्नति के अवसर बढ़े। नेपोलियन ने क्रांति के दौरान अपनी सैन्य क्षमताओं का प्रदर्शन किया और तेजी से उच्च पदों पर पहुँचा।

1793 में टूलॉन की घेराबंदी के दौरान उसने तोपखाने के प्रभावी उपयोग से फ्रांसीसी क्रांतिकारी सेना को सफलता दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके बाद उसे ब्रिगेडियर जनरल के पद पर पदोन्नति मिली। 1795 में पेरिस में राजतंत्र समर्थक विद्रोह को दबाने के बाद उसकी राजनीतिक और सैन्य प्रतिष्ठा बढ़ गई।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

3. नेपोलियन की प्रमुख सैन्य विजयें

नेपोलियन की सैन्य सफलताओं ने उसे फ्रांस में लोकप्रियता और राजनीतिक प्रभाव प्रदान किया।

(क) इटली अभियान (1796–1797)

1796 में फ्रांसीसी सरकार ने नेपोलियन को इटली की सेना का सेनापति नियुक्त किया। उसने ऑस्ट्रिया और उसके सहयोगियों के विरुद्ध अभियान चलाया।

प्रमुख उपलब्धियाँ:

- मोंटेनोटे और लोदी की लड़ाइयों में सफलता।
- आर्कोल के युद्ध में प्रभावशाली सैन्य प्रदर्शन।
- रिवोली के युद्ध में ऑस्ट्रियाई सेना को पराजित करना।
- 1797 में कैम्पो फॉर्मियो की संधि के माध्यम से ऑस्ट्रिया के साथ समझौता।

इस अभियान से फ्रांस का प्रभाव उत्तरी इटली में बढ़ा। नेपोलियन ने अपनी प्रतिष्ठा एक सफल सेनापति के रूप में स्थापित की।

(ख) मिस्र अभियान (1798–1799)

नेपोलियन ने 1798 में मिस्र पर अभियान चलाया। उसका उद्देश्य ब्रिटेन के पूर्वी व्यापार, विशेषकर भारत से जुड़े मार्गों, को प्रभावित करना था।

उसने पिरामिडों के युद्ध में मामलुक सेना को पराजित किया, लेकिन नील नदी के युद्ध में ब्रिटिश एडमिरल होरेशियो नेल्सन ने फ्रांसीसी नौसेना को भारी नुकसान पहुँचाया। परिणामस्वरूप फ्रांसीसी सेना की स्थिति कमजोर हुई। यद्यपि मिस्र अभियान अपने व्यापक रणनीतिक उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सका, फिर भी नेपोलियन ने फ्रांस की राजनीतिक परिस्थितियों का लाभ उठाने के लिए 1799 में फ्रांस लौटने का निर्णय लिया।

(ग) सत्ता प्राप्ति और 18 ब्रूमेयर का तख्तापलट (1799)

फ्रांस में डायरेक्टरी शासन भ्रष्टाचार, आर्थिक कठिनाइयों और राजनीतिक अस्थिरता से जूझ रहा था। नेपोलियन ने अब्बे सिएयेस सहित कुछ राजनीतिक नेताओं के सहयोग से 9–10 नवम्बर 1799 को 18 ब्रूमेयर का तख्तापलट किया।

डायरेक्टरी शासन समाप्त हुआ और कॉन्सुलेट व्यवस्था स्थापित की गई। इसमें तीन कॉन्सुल थे, लेकिन वास्तविक शक्ति नेपोलियन के हाथों में केंद्रित हो गई। इस प्रकार वह फ्रांस का प्रथम कॉन्सुल बना।

(घ) मारेंगो का युद्ध (1800)

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

प्रथम कॉन्सुल बनने के बाद नेपोलियन ने इटली में ऑस्ट्रिया के विरुद्ध अभियान चलाया। जून 1800 में मारेंगो के युद्ध में फ्रांसीसी सेना को सफलता मिली। इस विजय ने नेपोलियन की राजनीतिक स्थिति मजबूत की और ऑस्ट्रिया के साथ लुनेविल की संधि (1801) का मार्ग प्रशस्त किया।

(ङ) ऑस्टरलिट्ज का युद्ध (1805)

सम्राट बनने के बाद नेपोलियन ने 2 दिसम्बर 1805 को ऑस्टरलिट्ज के युद्ध में ऑस्ट्रिया और रूस की संयुक्त सेनाओं को पराजित किया। इसे उसके सबसे महत्त्वपूर्ण सैन्य विजय अभियानों में गिना जाता है। इस विजय के बाद मध्य यूरोप में फ्रांस का प्रभाव बढ़ा और 1806 में पवित्र रोमन साम्राज्य का अंत हो गया।

(च) अन्य प्रमुख विजय और पराजय

- **उल्म (1805):** ऑस्ट्रियाई सेना के विरुद्ध फ्रांस को महत्त्वपूर्ण सफलता मिली।
- **फ्रीडलैंड (1807):** रूस के विरुद्ध विजय के बाद टिलसिट की संधियों का मार्ग खुला।
- **वाग्राम (1809):** ऑस्ट्रिया पर फ्रांसीसी विजय ने नेपोलियन की स्थिति को कुछ समय के लिए मजबूत किया।
- **ट्राफलगर (1805):** ब्रिटिश नौसेना ने फ्रांस और स्पेन की संयुक्त नौसेना को पराजित किया। इससे ब्रिटेन पर सीधे समुद्री आक्रमण की नेपोलियन की संभावना कमजोर हुई।

इन विजयों ने नेपोलियन के साम्राज्य का विस्तार किया, लेकिन निरंतर युद्धों ने फ्रांस के आर्थिक और मानवीय संसाधनों पर भारी दबाव भी डाला।

4. प्रथम कॉन्सुल के रूप में नेपोलियन की उपलब्धियाँ (1799–1804)

नेपोलियन की घरेलू नीतियों का प्रमुख उद्देश्य फ्रांस में स्थिरता स्थापित करना, प्रशासन को प्रभावी बनाना और क्रांति के बाद उत्पन्न अराजकता को नियंत्रित करना था।

(क) प्रशासनिक सुधार

नेपोलियन ने प्रशासन का केंद्रीकरण किया। फ्रांस को विभागों में बाँटकर उनके प्रशासन के लिए प्रीफेक्ट नियुक्त किए। प्रीफेक्ट केंद्र सरकार के प्रतिनिधि थे और स्थानीय प्रशासन पर केंद्र का नियंत्रण सुनिश्चित करते थे।

इन सुधारों से प्रशासनिक निर्णयों को लागू करना आसान हुआ, लेकिन स्थानीय स्वायत्तता सीमित हो गई।

(ख) नेपोलियन की विधि संहिता (Code Napoléon, 1804)

नेपोलियन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक 1804 की नागरिक विधि संहिता थी, जिसे नेपोलियन संहिता कहा जाता है।

इसके प्रमुख प्रावधान थे:

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

1. कानून के समक्ष पुरुष नागरिकों की समानता को मान्यता।
2. सामंती विशेषाधिकारों और जन्म-आधारित कानूनी भेदों का अंत।
3. निजी संपत्ति के अधिकार की रक्षा।
4. नागरिक मामलों में एकरूपता और स्पष्टता।
5. अनुबंधों तथा संपत्ति संबंधी अधिकारों को कानूनी आधार।

हालाँकि, इस संहिता ने महिलाओं को पुरुषों के समान नागरिक अधिकार नहीं दिए। परिवार में पुरुष की प्रधानता को कानूनी मान्यता मिली। इसलिए इसके समानता संबंधी सिद्धांतों की सीमाएँ भी थीं।

(ग) आर्थिक सुधार

क्रांति के बाद फ्रांस में वित्तीय अव्यवस्था और मुद्रा संबंधी समस्याएँ थीं। नेपोलियन ने आर्थिक स्थिरता स्थापित करने के लिए कई कदम उठाए।

- 1800 में बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना।
- कर संग्रह की व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाना।
- सरकारी वित्त पर नियंत्रण मजबूत करना।
- मुद्रा और ऋण व्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास।
- व्यापार और उद्योग को प्रोत्साहन।

इन उपायों से सरकार की वित्तीय क्षमता और व्यापारिक गतिविधियों को सहारा मिला।

(घ) शिक्षा सुधार

नेपोलियन ने शिक्षा को राज्य की आवश्यकताओं और प्रशासनिक व्यवस्था से जोड़ा। उसने माध्यमिक शिक्षा के लिए लाइसी (Lycées) स्थापित किए तथा योग्य अधिकारियों और सैन्य कर्मियों के प्रशिक्षण पर ध्यान दिया।

शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य केवल ज्ञान का प्रसार नहीं था, बल्कि राज्य के प्रति निष्ठावान और प्रशिक्षित नागरिक तथा अधिकारी तैयार करना भी था। इससे आधुनिक फ्रांसीसी शिक्षा व्यवस्था के विकास को प्रोत्साहन मिला।

(ङ) धार्मिक नीति और कॉनकॉर्डेट (1801)

फ्रांसीसी क्रांति के दौरान कैथोलिक चर्च और राज्य के संबंध तनावपूर्ण हो गए थे। नेपोलियन ने 1801 में पोप पायस सप्तम के साथ कॉनकॉर्डेट समझौता किया।

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

इसके प्रमुख उद्देश्य थे:

- कैथोलिक चर्च और राज्य के बीच तनाव कम करना।
- धार्मिक जीवन में स्थिरता लाना।
- क्रांति के बाद उत्पन्न सामाजिक विभाजन को कम करना।

कैथोलिक धर्म को फ्रांस के अधिकांश नागरिकों का धर्म स्वीकार किया गया, लेकिन उसे राज्य का आधिकारिक धर्म नहीं बनाया गया। राज्य ने चर्च पर पर्याप्त नियंत्रण बनाए रखा।

(च) राजनीतिक स्थिरता और जनमत

नेपोलियन ने शक्तिशाली केंद्रीय सरकार स्थापित की और जनमत-संग्रहों के माध्यम से अपने शासन को वैधता प्रदान करने का प्रयास किया। 1802 में उसे आजीवन प्रथम कॉन्सुल बनाया गया। इससे उसकी व्यक्तिगत सत्ता और मजबूत हुई।

हालाँकि, प्रेस पर नियंत्रण, राजनीतिक विरोधियों की निगरानी और सीमित राजनीतिक स्वतंत्रता के कारण उसका शासन लोकतांत्रिक सिद्धांतों से दूर होता गया।

(छ) एमियन्स की संधि (1802)

1802 में ब्रिटेन और फ्रांस के बीच एमियन्स की संधि हुई। इससे दोनों देशों के बीच युद्ध कुछ समय के लिए समाप्त हुआ। फ्रांस को अपनी आंतरिक व्यवस्था सुधारने का अवसर मिला, लेकिन औपनिवेशिक हितों और यूरोप में प्रभाव को लेकर दोनों शक्तियों के बीच मतभेद बने रहे। 1803 में युद्ध फिर शुरू हो गया।

मूल्यांकन: प्रथम कॉन्सुल के रूप में नेपोलियन ने प्रशासन, कानून, शिक्षा, वित्त और धर्म के क्षेत्रों में स्थायी प्रभाव वाले सुधार किए। लेकिन सत्ता का केंद्रीकरण और राजनीतिक स्वतंत्रताओं पर प्रतिबंध उसके शासन की प्रमुख सीमाएँ थीं।

5. कॉन्टिनेंटल सिस्टम (महाद्वीपीय व्यवस्था)

(क) अर्थ और पृष्ठभूमि

कॉन्टिनेंटल सिस्टम नेपोलियन की वह आर्थिक नीति थी जिसका उद्देश्य ब्रिटेन के व्यापार को यूरोपीय महाद्वीप से अलग करके उसकी अर्थव्यवस्था को कमजोर करना था। ब्रिटेन की नौसैनिक शक्ति के कारण नेपोलियन उसे समुद्र में निर्णायक रूप से पराजित नहीं कर सका। 1805 के ट्राफलगर युद्ध के बाद उसने आर्थिक नाकेबंदी को ब्रिटेन के विरुद्ध प्रमुख हथियार बनाया।

(ख) बर्लिन डिक्री, 1806

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

21 नवम्बर 1806 को नेपोलियन ने बर्लिन डिक्री जारी की। इसके अंतर्गत ब्रिटिश द्वीपों को नाकाबंदी की स्थिति में घोषित किया गया तथा फ्रांसीसी प्रभाव वाले यूरोपीय क्षेत्रों में ब्रिटिश वस्तुओं के व्यापार और आयात पर प्रतिबंध लगाने का प्रयास किया गया।

(ग) मिलान डिक्री, 1807

1807 में मिलान डिक्री के माध्यम से नाकाबंदी को और कठोर बनाया गया। ब्रिटेन के साथ व्यापार करने वाले तटस्थ जहाजों पर भी कार्रवाई की जा सकती थी, विशेषकर यदि वे ब्रिटिश नियमों के अधीन होकर व्यापार करते पाए जाते थे।

(घ) कॉन्टिनेंटल सिस्टम के उद्देश्य

1. ब्रिटेन के निर्यात और व्यापार को नुकसान पहुँचाना।
2. ब्रिटिश उद्योगों तथा व्यापारियों पर आर्थिक दबाव बढ़ाना।
3. ब्रिटेन को फ्रांस के साथ शांति समझौते के लिए विवश करना।
4. यूरोपीय बाजारों में फ्रांसीसी प्रभाव बढ़ाना।
5. ब्रिटेन की आर्थिक शक्ति को कमजोर करके फ्रांस की महाद्वीपीय प्रधानता स्थापित करना।

(ङ) कॉन्टिनेंटल सिस्टम की असफलता के कारण

1. ब्रिटेन की नौसैनिक शक्ति: ब्रिटेन के पास शक्तिशाली नौसेना और व्यापक समुद्री व्यापार नेटवर्क था। वह यूरोप के बाहर अपने व्यापारिक संबंध बनाए रखने में सक्षम रहा।

2. यूरोपीय देशों की आर्थिक निर्भरता: अनेक यूरोपीय देश ब्रिटिश वस्तुओं, औपनिवेशिक उत्पादों और समुद्री व्यापार पर निर्भर थे। प्रतिबंधों से उनके व्यापारियों तथा उपभोक्ताओं को भी नुकसान हुआ।

3. तस्करी का विस्तार: प्रतिबंधों के बावजूद ब्रिटिश वस्तुओं की तस्करी जारी रही। लंबी तटरेखा और सीमित निगरानी के कारण नाकाबंदी को पूरी तरह लागू करना कठिन था।

4. फ्रांस और उसके सहयोगियों को नुकसान: ब्रिटिश वस्तुओं और बाजारों से कटने के कारण यूरोपीय व्यापार तथा उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस कारण कई क्षेत्रों में नेपोलियन की नीति के प्रति असंतोष बढ़ा।

5. रूस से संघर्ष: रूस कॉन्टिनेंटल सिस्टम से होने वाले आर्थिक नुकसान और अन्य राजनीतिक मतभेदों के कारण इससे दूर होने लगा। नेपोलियन ने इसे अपनी यूरोपीय व्यवस्था के लिए चुनौती माना और 1812 में रूस पर आक्रमण कर दिया।

6. अत्यधिक नियंत्रण की समस्या: नेपोलियन को अपने अधीन तथा सहयोगी राज्यों में प्रतिबंध लागू करवाने के लिए राजनीतिक और सैन्य दबाव का सहारा लेना पड़ा। इससे स्थानीय विरोध और राष्ट्रीय भावना को बल मिला।

Dr. RAKESH Mohan NautiyaL

(च) कॉन्टिनेंटल सिस्टम का प्रभाव

इस नीति ने ब्रिटेन को कुछ आर्थिक कठिनाइयाँ अवश्य पहुँचाईं, लेकिन वह निर्णायक रूप से पराजित नहीं हुआ। दूसरी ओर, यूरोपीय महाद्वीप के व्यापार, उद्योग और उपभोग पर दबाव बढ़ा। इस प्रकार कॉन्टिनेंटल सिस्टम ने नेपोलियन के साम्राज्य को मजबूत करने के बजाय अनेक सहयोगी देशों के साथ उसके संबंध कमजोर करने में योगदान दिया।

6. नेपोलियन के पतन के प्रमुख कारण

नेपोलियन का पतन किसी एक घटना का परिणाम नहीं था। इसके पीछे सैन्य पराजय, आर्थिक समस्याएँ, साम्राज्यवादी विस्तार, राष्ट्रीय प्रतिरोध और कूटनीतिक असफलताएँ थीं।

(क) साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा

नेपोलियन ने यूरोप के विशाल क्षेत्र पर फ्रांस का नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। उसने कई राज्यों को फ्रांस के अधीन किया या उनमें अपने परिवार के सदस्यों को शासक बनाया। इससे यूरोपीय शक्तियों में असंतोष बढ़ा और फ्रांस के विरुद्ध गठबंधन बनने लगे।

(ख) ब्रिटेन से संघर्ष

ब्रिटेन की नौसैनिक शक्ति ने नेपोलियन की योजनाओं को सीमित कर दिया। ट्राफलगर की पराजय के बाद ब्रिटेन पर सीधे आक्रमण की संभावना बहुत कम हो गई। ब्रिटेन ने आर्थिक संसाधनों, नौसेना और गठबंधन-नीति के माध्यम से फ्रांस के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा।

(ग) स्पेन का युद्ध (1808–1814)

1808 में नेपोलियन ने स्पेन के राजवंश को हटाकर अपने भाई जोसेफ बोनापार्ट को वहाँ का शासक बनाया। इसके विरुद्ध स्पेन में व्यापक जनविद्रोह हुआ। ब्रिटेन ने भी स्पेन और पुर्तगाल में फ्रांसीसी सेनाओं के विरुद्ध अभियान चलाया।

स्पेन के युद्ध में फ्रांस को लंबे समय तक सैनिक, धन और संसाधन लगाने पड़े। स्थानीय प्रतिरोध तथा गुरिल्ला युद्ध ने फ्रांसीसी सेना को कमजोर किया। इस संघर्ष को नेपोलियन के साम्राज्य की महत्त्वपूर्ण कमजोरियों में गिना जाता है।

(घ) रूस पर आक्रमण (1812)

नेपोलियन के पतन का सबसे निर्णायक मोड़ 1812 का रूस अभियान था। फ्रांस और रूस के बीच कॉन्टिनेंटल सिस्टम, व्यापारिक हितों और यूरोपीय राजनीति को लेकर मतभेद बढ़ गए थे।

जून 1812 में नेपोलियन विशाल सेना के साथ रूस में प्रवेश कर गया। रूसी सेना पीछे हटती गई और संसाधनों को फ्रांसीसी सेना के हाथ लगने से बचाने की नीति अपनाई। सितम्बर में नेपोलियन ने मॉस्को पर कब्जा किया, लेकिन रूस ने शांति समझौता नहीं किया।

Dr. RAkesh Mohan Nautiyal

आपूर्ति की कमी, कठोर मौसम, बीमारी, भूख और रूसी प्रतिरोध के कारण फ्रांसीसी सेना की स्थिति बिगड़ गई। पीछे हटते समय सेना को भारी क्षति पहुँची। रूस अभियान ने नेपोलियन की सैन्य शक्ति को गंभीर रूप से कमजोर कर दिया।

(ङ) यूरोपीय गठबंधन और लाइपजिग की पराजय (1813)

रूस अभियान की विफलता के बाद ब्रिटेन, रूस, प्रशा और ऑस्ट्रिया जैसी शक्तियाँ फ्रांस के विरुद्ध संगठित हुईं। अक्टूबर 1813 में लाइपजिग के युद्ध, जिसे 'राष्ट्रों का युद्ध' भी कहा जाता है, में नेपोलियन पराजित हुआ।

इस हार के बाद मध्य यूरोप में फ्रांसीसी प्रभुत्व टूटने लगा और मित्र राष्ट्रों ने फ्रांस की ओर बढ़ना शुरू कर दिया।

(च) फ्रांस पर आक्रमण और पहला त्यागपत्र (1814)

1814 में मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ फ्रांस में प्रवेश कर गईं और मार्च में पेरिस पर उनका नियंत्रण स्थापित हो गया। नेपोलियन को अप्रैल 1814 में सत्ता छोड़नी पड़ी। उसे भूमध्यसागर के एल्बा द्वीप पर निर्वासित कर दिया गया।

(छ) सौ दिन का शासन और वाटरलू की पराजय (1815)

मार्च 1815 में नेपोलियन एल्बा से भागकर फ्रांस लौट आया और पुनः सत्ता प्राप्त कर ली। उसका यह शासन 'सौ दिन' के नाम से प्रसिद्ध है।

18 जून 1815 को बेल्जियम के निकट वाटरलू के युद्ध में ब्रिटिश सेनापति ड्यूक ऑफ वेलिंगटन और प्रशियाई सेनापति गेबहार्ड लेबेरेक्ट फॉन ब्लूखर की सेनाओं ने नेपोलियन को पराजित किया। इसके बाद उसने दूसरी बार त्यागपत्र दिया और उसे दक्षिण अटलांटिक महासागर के सेंट हेलेना द्वीप पर निर्वासित कर दिया गया। वहीं 1821 में उसकी मृत्यु हुई।

(ज) पतन के कारणों का सार

कारण	**प्रभाव**
साम्राज्यवादी विस्तार	यूरोपीय देशों में फ्रांस के विरुद्ध गठबंधन बने
ब्रिटेन की नौसैनिक शक्ति	समुद्री प्रभुत्व स्थापित करने की योजना विफल रही
कॉन्टिनेंटल सिस्टम	यूरोप के व्यापार में बाधा और सहयोगी देशों में असंतोष
स्पेन का युद्ध	दीर्घकालीन सैनिक एवं आर्थिक क्षति
रूस अभियान, 1812	सेना और सैन्य संसाधनों का भारी नुकसान
लाइपजिग की पराजय, 1813	मध्य यूरोप में फ्रांसीसी प्रभुत्व का अंत

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

वाटरलू की पराजय, 1815	नेपोलियन के शासन का अंतिम अंत

7. नेपोलियन की ऐतिहासिक विरासत

नेपोलियन की विरासत बहुआयामी थी। उसके शासन ने फ्रांस में प्रशासनिक केंद्रीकरण, कानूनों की एकरूपता, संपत्ति संबंधी अधिकारों और आधुनिक राज्य संस्थाओं के विकास को प्रोत्साहित किया। नेपोलियन संहिता का प्रभाव फ्रांस के बाहर भी अनेक कानूनी व्यवस्थाओं पर पड़ा।

दूसरी ओर, उसकी निरंतर युद्ध-नीति ने यूरोप में भारी जनहानि और आर्थिक संकट पैदा किए। उसने क्रांति के कुछ सिद्धांतों—विशेषकर कानूनी समानता और योग्यता के आधार पर उन्नति—को आगे बढ़ाया, लेकिन राजनीतिक स्वतंत्रता को सीमित किया और महिलाओं को समान नागरिक अधिकार नहीं दिए।

इसलिए नेपोलियन को केवल क्रांति के आदर्शों का प्रसारक या केवल साम्राज्यवादी शासक मानना उसके ऐतिहासिक महत्त्व को अधूरा समझना होगा। उसके शासन में आधुनिक राज्य-निर्माण और व्यक्तिगत सत्ता के केंद्रीकरण, दोनों प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं।

8. निष्कर्ष

नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन फ्रांसीसी क्रांति के बाद यूरोप में हुए राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। प्रारम्भिक सैन्य सफलताओं ने उसे सत्ता तक पहुँचाया और प्रथम कॉन्सुल के रूप में उसने फ्रांस की प्रशासनिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा कानूनी व्यवस्था में व्यापक सुधार किए। लेकिन सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण, यूरोप में निरंतर युद्ध, स्पेन में प्रतिरोध, कॉन्टिनेंटल सिस्टम की सीमाएँ और रूस अभियान की विफलता ने उसके साम्राज्य को कमजोर कर दिया।

1815 में वाटरलू की पराजय के साथ उसका राजनीतिक प्रभुत्व समाप्त हो गया, किंतु उसके कानूनी और प्रशासनिक सुधारों का प्रभाव यूरोपीय इतिहास में लंबे समय तक बना रहा। इस प्रकार नेपोलियन का युग आधुनिक यूरोप के निर्माण, राष्ट्रवाद के विकास और शक्ति-संतुलन की राजनीति को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

9. प्रमुख घटनाओं की समयरेखा

वर्ष	**घटना**
1769	कोर्सिका के अजाचियो में जन्म
1785	तोपखाना अधिकारी के रूप में सैन्य जीवन का प्रारम्भ
1793	टूलॉन अभियान में सफलता
1796–1797	प्रथम इटली अभियान
1798–1799	मिस्र अभियान

Dr. Rakesh Mohan Nautiyal

1799	18 ब्रूमेयर का तख्तापलट; प्रथम कॉन्सुल बना
1800	मारेंगो का युद्ध; बैंक ऑफ फ्रांस की स्थापना
1801	कॉनकॉर्डेट समझौता
1802	आजीवन प्रथम कॉन्सुल
1804	नेपोलियन संहिता; सम्राट बना
1805	ट्राफलगर की नौसैनिक पराजय और ऑस्टरलिट्ज की विजय
1806	बर्लिन डिक्री; कॉन्टिनेंटल सिस्टम
1808	स्पेन में विद्रोह और युद्ध का विस्तार
1812	रूस पर आक्रमण
1813	लाइपजिग के युद्ध में पराजय
1814	पहला त्यागपत्र; एल्बा द्वीप पर निर्वासन
1815	सौ दिन का शासन; वाटरलू की पराजय
1821	सेंट हेलेना द्वीप पर मृत्यु

Dr. RAkesh Mohan NautiyaL